रामायणी कथा।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के "बङ्गभाषा और बङ्ग साहित्य" के व्याख्याता श्रीयुक्त दीनेश-चन्द्र सेन प्रणीत "रामायणी कथा" नामक बँगला पुस्तक का हिन्दी अनुवाद।

अनुवादकर्ता

बा० भगवानदास हालना।

साहित्योपाध्याय प० बदरीनाथ शर्मा वैद्य।

—:o:—

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणी कथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

—:o:—

प्रकाशक,

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

द्वितीय बार १५००

मूल्य सादी पुस्तक का १)
जिल्ददार का १।)

रामभरोस मालवीय के प्रबन्ध से अभ्युदय प्रेस,
प्रयाग में छपकर प्रकाशित ।

सम्पादकीय भूमिका।

निबन्धावली के तीसरे अङ्क "कर्मवीर" में हमने यह प्रकाशित किया था कि "रामायणी कथा" शीघ्र ही प्रकाशित होगी। यह प्रायः ५, ६, वर्ष की बात है किन्तु खेद की बात है कि आज के पहिले हम इस अनुवाद को पाठकों की सेवा में उपस्थित न कर सके। ऐसा क्यों हुआ पाठकों को यह बतला देना हम आवश्यक समझते हैं। "कर्मवीर" का अनुवाद कर चुकने पर हमने "रामायणी कथा" हाथ में ली। दशरथ और राम का अनुवाद भी हमने कर डाला। कुछ अंशों का अनुवाद पं० बदरीनाथ जी कर रहे थे इस लिए "दशरथ और राम" का अनुवादित अंश भी उन्हींके पास भेज दिया गया। अनेक कारणों से वैद्य जी को अनुवाद करने का अवकाश न मिला, भेजा हुआ अनुवादित अंश भी उनके पास से अधिकतर खो गया। प्रायः एक वर्ष बाद उन्होंने अनुवाद करना फिर आरंभ किया। फिर आरंभ से काम शुरू हुआ किन्तु "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" काम फिर भी न हुआ। प्रायः दो वर्ष से अधिक इसमें बीत गया।

इधर हमारे पास काम हमारी शक्ति से बाहर होगया। अनुवाद के लिए समय निकालना हमारे लिए कठिन होगया किन्तु "रामायणी कथा" को हिन्दी में देखने का लोभ ज्यों का त्यों बना रहा। अन्त में हमने बा० भगवान्दास जी हालना से अनुवाद कर देने की प्रार्थना की। हालना जी ने कृपाकर

अनुवाद करने का भार अपने ऊपर ले लिया और वह
वाद आज पाठकों की सेवा में उपस्थित है। अनुवाद
है इस संबन्ध में हम कुछ कहना उचित नहीं समझते
पुस्तक के संबन्ध की प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दि
के बराबर है। दीनेश बाबू भक्त पुरुष हैं, साथ ही स
पूर्ण विद्वान भी हैं। अपनी विद्वता के लिए आज वे
मे पूज्य हैं। उनकी पुस्तक (मूल में) कैसी है इसका
इस नकल से लगाना उचित न होगा किन्तु इससे
कम से कम यह देख लेंगे की पुस्तक में है क्या ?

दीनेश बाबू ने बड़ी कृपाकर इस पुस्तक के अ
करने की आज्ञा हमें दी इसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।
संभव हुआ तो दीनेश बाबू की अन्य कृतियों को भी
पाठकों के सामने उपस्थित करेंगे। यदि "रामायणी
से पाठकों को रामायण के जटिल चरित्रों को समझ
तनिक भी सहायता मिली तो हम अपने परिश्रम को
समझेंगे।

पाठकों का अधिक समय अब हम न लेंगे और
भगवानदास जी हालना तथा पं० बद्रीनाथ जी वैद
उनकी कृपा के लिए धन्यवाद देकर हम इस पुस्त
अपने पाठकों के हाथ में रखते हैं।

प्रयाग
१६ जनवरी १६५५ } कृष्णकान्त मालवी

दूसरे संस्करण की भूमिका।

हिन्दी-जगत में "रामायणी कथा" का आदर कैसा हुआ यह अन्यत्र छपी हुई विद्वानों की सम्मतियों से साफ प्रकट होता है हम अपनी ओर से इतना ही कहना चाहते हैं कि प्रथम संस्करण हाथो हाथ बहुत दिन हुए बिक गया था। माँग बराबर बनी हुई थी फिर भी अनेक झंझटों में फँसे रहने के कारण हम दूसरा संस्करण जल्दी न निकाल सके, इसका हमको खेद है। पहिले संस्करण में कुछ त्रुटियाँ रह गई थीं यथा शक्ति वे इस संस्करण से दूर कर दी गई हैं।

प्रायः एक वर्ष हुआ हालना जी ने एक शुद्ध संशोधित प्रति हमारे पास भेज दी थी। उन्होंने प्रूफ पास करने का भार भी कृपा कर अपने ऊपर ले लिया था। काम शुरू हुआ ही था कि प्रयाग में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में वे गिरफ़ार कर लिये गये। हालना जी के जेल जाने के कुछ ही दिनों बाद हम भी जेल के निवासी हो गये। प्रकाशन का काम इस तरह रुक गया। जेल से आते ही काम फिर शुरू किया गया और पुस्तक अब छप कर तैयार है। हालना जी की अनुपस्थिति में पुस्तक का प्रूफ नहीं देखा जा सका, इस कारण जो त्रुटियाँ रह गई हों उनके लिए पाठक हमको क्षमा करें।

प्रयाग
१२ नवम्बर २२ } कृष्णाकान्त मालवीय

पूज्यपाद पं० मदनमोहन जी मालवीय का मत है कि "यदि अच्छी हिन्दी लिखना चाहते हो तो उसमें लम्बी २ समासों का प्रयोग मत करो।" इस पुस्तक के अनुवाद करने में यथाशक्ति इस मत का आदर किया गया है और अनुवाद की भाषा सरल करते हुए भी इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि भाषा का सौन्दर्य नष्ट न होने पावे। इस कार्य में हम कहां तक कृतकार्य हुए हैं, इसका रसज्ञ पाठक स्वयं विचार करेंगे। इस अनुवाद को हमारे प्रिय और विद्वान् मित्र पं० कृष्णकान्त जी मालवीय बी० ए०, साहित्योपाध्याय पण्डित बदरीनाथ जी शर्मा वैद्य और यह सेवक, इन तीन आदमियों ने मिल कर किया है। किन्तु इस अनुवाद में जो कुछ त्रुटियां और अशुद्धियां दिखलाई पड़ें उनके लिए यह सेवक ही उत्तरदाता है क्योंकि उसी को इसका अधिक कार्य करना और प्रूफ देखना पड़ा है।

श्रीयुक्त दीनेशचन्द्र सेन महाशय ने "रामायणी कथा" के २६ वें पृष्ठ पर तुलसीदास जी के सम्बन्ध में इस प्रकार अपना मत प्रगट किया है कि:—

"वाल्मीकि ने रामचन्द्र का एक बड़ा ही विशाल चित्र अङ्कित किया है। तुलसीदास और कृत्तिवास ने रामचन्द्र की श्यामसुन्दर और पल्लवस्निग्ध मूर्ति की रक्षा करके उनके वीरत्व और वैराग्य की महिमा घटा दी है।"

कृत्तिवास से हमारा विशेष संबन्ध और परिचय नहीं है, इसलिए हम उनके अङ्कित रामचरित्र के विषय में कुछ नहीं कहना चाहते। किन्तु हम यह किसी तरह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि तुलसीदास जी ने रामचन्द्र के वीरत्व और वैराग्य की महिमा को घटा दिया है, यह दूसरी बात

है कि उन्होंने उनके वीरत्व और वैराग्य की महिमा दिखाते हुए उनकी श्यामसुन्दर और पल्लवस्निग्धमूर्ति की भी रक्षा की हो। हम वाल्मीकि द्वारा अङ्कित रामचन्द्र के मुख से निस्सृत कुछ उक्तियों को यहां उद्धृत करते हैं:—

(१) जो रामचन्द्र भरत को प्राणों से भी प्यारे समझते थे उन्हीं के विषय में रामचन्द्र ने सीता से कहा था कि, "तुम भरत के सामने हमारी प्रशंसा मत करना, क्योंकि ऐश्वर्यशाली पुरुष दूसरे की प्रशंसा नहीं सह सकते।" (रा० क० पृ० १००)

(२) वन में अत्यन्त कष्ट पाकर रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा था कि "लक्ष्मण, कहीं यह भी देखा है कि प्रमदा के वश में होकर किसी पिता ने हमारे समान आज्ञाकारी पुत्र को परित्याग किया हो? निश्चय ही महाराज कष्ट भोग रहे हैं किन्तु जो धर्म त्याग कर काम की सेवा करते हैं, उन्हें राजा दशरथ के समान कष्ट होना अवश्यम्भावी है" (रा०क०पृ०६०)

(३) भरद्वाज ऋषि के आश्रम से हनूमान को भरत के पास भेजते समय रामचन्द्र ने कहा था कि, "हमारे आने का समाचार सुन कर भरत के मुख पर कोई विकार होता है या नहीं यह अच्छी तरह देखना।" (रा० क० पृ० १०१)

हम अपने पाठकों से निवेदन करना चाहते हैं कि श्रीयुक्त सेन महाशय ने ऊपर उद्धृत युक्तियों को रामचन्द्र के हृदय को दुर्बलतासूचक बतलाया और इसके लिये उन्हें दोषी ठहराया है और यह मत प्रकाश किया है कि ये उक्तियां किसी प्रकार मार्जनीय नहीं हो सकतीं। अब सेन महाशय इस बात का स्वयं निर्णय करें कि इन उक्तियों के रामचन्द्र के मुख से निकलने से रामचन्द्र की वीरत्व और वैराग्य की महिमा

अधिक बढ़ी है अथवा जिस व्यक्ति ने जान बूझ कर सकारण रामचन्द्र के मुख से इन उक्तियों को निकलवाना उचित नहीं समझा उसने उनके "वीरत्व और वैराग्य" की महिमा को घटाया है अथवा बढ़ाया ? जिस आदर्श को लेकर सेन महाशय ने रामायण के प्रधान प्रधान व्यक्तियों का चरित्र चित्रण किया है, उसी आदर्श को सामने रख कर वे कृपा कर बतलावें कि वाल्मीकि के रामचन्द्र अधिक वैराग्यकठोर हैं अथवा तुलसीदास के ? हम एक स्वतंत्र लेख द्वारा तुलसीदास के चरित्रचित्रण के विशेषत्व पर विशद रूप से अपने विचार प्रगट करेंगे । अन्त में पाठकों से प्रार्थना है कि इस पुस्तक के साथ जो शुद्धिपत्र दिया गया है उसके अनुसार वे इस पुस्तक को शुद्ध करके और इसके अतिरिक्त अक्षरों की मात्राओं के टूटने और अन्य प्रकार की जो अशुद्धियाँ और दोष रह गये हों उन्हें सुधार कर पढ़ें और यह जान कर कि मनुष्य से प्रमाद होना स्वाभाविक है इसके लिए लेखकों को क्षमापात्र समझें ।

इस निवेदन के समाप्त करने के पूर्व यह प्रगट करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं कि अभ्युदय प्रेस ने इस पुस्तक को प्रकाशित किया है और इसके प्रकाश करने का श्रेय मित्रवर पं० कृष्णकान्त जी मालवीय को है, क्योंकि उन्होंने सन् १९०९ ई० में ग्रन्थकर्ता से इसके अनुवाद करने की आज्ञा ली और उन्होंने पहले पहल इसके अनुवाद में हाथ लगाया । इस पुस्तक के प्रकाश करने का यदि उन्हें विशेष प्रेम और आग्रह न होता तो अब भी इसके प्रकाशित होने में सन्देह ही था ।

हाथरस,   विनीत प्रार्थी,
ता० ६ अगस्त, १९१४ ।   भगवानदास हालना ।

॥ श्रीः ॥

भूमिका ।

[जगत्प्रसिद्ध कविवर डाकृर रवीन्द्रनाथ ठाकुर लिखित]

जब तक रामायण और महाभारत संसार के अन्यान्य काव्यों के साथ तुलना कर के श्रेणीबद्ध नहीं किये गये तब तक उनका नाम था इतिहास। इस समय विदेशी साहित्य भाण्डार में उनकी जचाई होने पर उन्हें 'एपिक' (Epic) नाम दिया गया है। हम ने 'एपिक' शब्द का बंगला अनुवाद किया है 'महाकाव्य'। इस समय हम रामायण और महाभारत को महाकाव्य ही के नाम से पुकार सकते हैं।

महाकाव्य नाम ठीक ही हुआ है और इस शब्द के द्वारा उनका अच्छी तरह परिचय हो जाता है। इस समय यदि हम इसे किसी विदेशी शब्द का अनुवाद समझ कर स्वीकार न करें तो कोई क्षति नहीं होगी। और अनुवाद स्वीकार कर लेने पर विदेशी अलङ्कारशास्त्र के 'एपिक' शब्द के लक्षण के साथ उसका पूर्ण रूप से समन्वय न होने पर महाकाव्य नाम रखने वाले को कैफियत देनी पड़ेगी। हम ऐसी जवाबदेही में पड़ना आवश्यक नहीं समझते।

महाकाव्य कहने से क्या अभिप्राय है इसकी आलोचना करने को हम तैयार हैं किन्तु 'एपिक' के साथ उसका पूर्ण रूप से समन्वय कर देंगे, इस प्रकार की प्रतिज्ञा हम नहीं कर सकते और करें भी कैसे ? लोग 'पैराडाइज़ लास्ट' (paradise Lost) को भी एपिक कहते हैं, यदि यह बात है

तो रामायण और महाभारत एपिक नहीं हैं और ये दोनों एक श्रेणी में स्थान नहीं पा सकते।

मोटी तरह से काव्य के दो भाग किये जा सकते हैं। एक तो वे काव्य जिनमें केवल कवियों की कथाएँ होती हैं और दूसरे वे काव्य जिनमें बड़े २ सम्प्रदायों की कथाएँ होती हैं।

केवल कवियों की कथाएँ कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि वे किसी और आदमी की समझ ही में न आवे, ऐसा होने पर तो उसे पागलपन कहेंगे। उसका अर्थ यही है कि कवि में ऐसी शक्ति है कि जिससे उसके निज के सुख-दुःख, निज की कल्पना और जीवन में निज के अनुभव द्वारा संसार के लोगों के चिरन्तन हृदयावेग और जीवन की मर्मपूर्ण बातें अपने आप प्रकाशित होने लगती हैं।

जैसे ये एक प्रकार के कवि हुए वैसे ही एक और दूसरी तरह के कवि होते हैं। इनमें ऐसी शक्ति होती है कि उनके रचित ग्रन्थों में सारे देश और समग्र युग का ज्ञान और अनुभव स्वयं आकर प्रगट होता है और संसार के सब लोग उससे सदा के लिए लाभ उठाते हैं।

इसी दूसरी श्रेणी के कवियों को महाकवि कहते हैं। सारे देश और सारी जातियों की सरस्वती आकर इनका आश्रय लेती है और ये जो रचना करते हैं उसे किसी व्यक्ति विशेष का रचना कहने को जी नहीं चाहता। मन में यही होता है कि उनके काव्य बड़े वृक्षों के समान पृथ्वी के पेट से उत्पन्न होकर उसी पृथ्वी रूपी देश को आश्रय रूपी छाया दान करते हैं। 'शकुन्तला' और 'कुमार सम्भव' में हमें विशेष रूप से कालिदास के हस्तकौशल का परिचय मिलता है किन्तु देखते हैं कि रामायण और महाभारत, भागीरथी और

हिमालय के समान सारे भारतवर्ष में पूजनीय हो रहे हैं, और व्यास और वाल्मीकि केवल उपलक्ष मात्र हैं।

वस्तुतः व्यास और वाल्मीकि तो किसी का नाम था नहीं। यह तो एक उद्देश्य से नाम रख लिया गया। ये दोनों इतने बड़े ग्रन्थ हैं और इन दोनों काव्यों का भारतवर्ष में इतना देशव्यापी प्रभाव है कि इनके मूल रचयिता कवियों के नाम बिलकुल लापता हो गये हैं और इस तरह ये कवि अपने काव्यों के भीतर छिप गये हैं।

हमारे देश में जैसे रामायण और महाभारत हैं वैसे ही प्राचीन ग्रीस और रोम में 'इलियड' और 'एनिड' नामक ग्रन्थ थे। वे समस्त ग्रीस और रोम के हृदयपद्म से उत्पन्न हुए और उन्होंने उनके हृदयपद्म में स्थान पाया। कवि होमर और वर्जिल ने अपने अपने समय में अपने देश के लोगों को अपनी भाषा द्वारा प्राण दान दिया। जैसे मेलों और उत्सवों में लोग दूर दूर से एकत्र होकर उस देश को जगमगा देते हैं, उसी प्रकार होमर और वर्जिल के वाक्यों ने अपने अपने देशों में एक छोर से दूसरी छोर तक फैल कर वहाँ के लोगों को सदा के लिये आनन्द में डुबो दिया है।

किसी आधुनिक काव्य में इतनी व्यापकता नहीं देखी जाती। मिल्टन के 'पैराडाइज़ लास्ट' में भाषा का गाम्भीर्य, छन्द का माहात्म्य और रस की गम्भीरता चाहे कितनी भी क्यों न हो तथापि वह देश का धन नहीं है, वह केवल पुस्तकालयों की शोभा बढ़ानेवाला है।

अतएव ऐसे कई एक प्राचीन काव्यों को एक श्रेणी में रख कर उनका एक नाम निर्दिष्ट करने पर हम उन्हें महाकाव्य छोड़ कर और क्या नाम दे सकते हैं। ये प्राचीनकाल

के देव और दानवों के समान महाकाय थे पर इस समय इनकी जाति लुप्त हो गई है।

प्राचीन आर्यसभ्यता की एक धारा यूरोप में और दूसरी धारा भारतवर्ष में प्रवाहित हो रही है। यूरोप की धारा तो इन दोनों महाकाव्यों में है और भारत की धारा इन महाकाव्यों द्वारा देश की प्राचीन कथा और सङ्गीत की रक्षा कर रही है।

हम विदेशी हैं इसलिए हम निश्चय नहीं कह सकते कि ग्रीस और रोम अपनी सारी प्रकृति को अपने दो काव्यों में व्यक्त कर सका है या नहीं किन्तु यह निश्चय है कि रामायण और महाभारत में भारतवर्ष को और किसी बात की कमी नहीं रह गई है।

इसी लिए शताब्दियों पर शताब्दियाँ चली जा रही हैं किन्तु रामायण और महाभारत का स्रोत भारतवर्ष में लेशमात्र भी शुष्क नहीं होता। प्रति दिन गाँव गाँव और घर घर में उनका पाठ होता है और बनिये की दूकान से लेकर राजा के महल तक में सर्वत्र ही उनका समान समादर है। धन्य है उन युगल कवियों को जिनके नाम काल के महाकोटर में लुप्त हो गये किन्तु उनकी वाणी करोड़ों नर-नारियों के द्वार द्वार पर आज भी निरन्तर शक्ति और शान्ति धारण कर रही है और सैकड़ों प्राचीन शताब्दियों का पुरानी सुन्दर मृत्तिका को नित्य २ लाकर वह भारतवासियों के हृदय रूपी भूमि को आज भी उर्वरा बना रही है।

ऐसी अवस्था में रामायण और महाभारत को केवलमात्र महाकाव्य कहने से काम नहीं चलेगा। ये इतिहास भी हैं किन्तु घटनाओं के इतिहास नहीं हैं क्योंकि घटनाओं के इतिहास सौमय

विशेष का अवलम्बन करते हैं और रामायण और महाभारत भारतवर्ष के चिरकाल के इतिहास हैं। और इतिहास तो समय समय पर बदलते रहते हैं किन्तु इन इतिहासों का परिवर्तन नहीं होता। भारतवर्ष की जो साधना, जो आराधना और संकल्प हैं उनका ही इतिहास इन दो महाकाव्य रूपी राजप्रासादों में चिरकाल रूपी सिंहासन पर विराजमान है।

इस कारण, रामायण महाभारत की समालोचना का आदर्श अन्य काव्यों की समालोचना के आदर्श से भिन्न है। रामचन्द्र का चरित्र उच्च है या नीच, लक्ष्मण का चरित्र हमें अच्छा लगता है या बुरा इतनी ही समालोचना यथेष्ट नहीं है। शान्त होकर श्रद्धा सहित यह विचार करना होगा कि समस्त भारतवर्ष हजारों वर्ष से इन्हें किस भाव से ग्रहण करता आ रहा है। हम कितने ही बड़े समालोचक क्यों न हों पर यदि एक समग्र प्राचीन देश के इतिहास-प्रवाहित समस्त काल के विचारों के निकट हमारा सिर नहीं झुकता तो वह धृष्टता लज्जा ही का विषय है।

रामायण में भारतवर्ष क्या कहता है, रामायण में भारतवर्ष ने किस आदर्श को महान् समझ कर स्वीकार किया है, यही इस समय हमारे लिए सविनय विचार करने का विषय है।

साधारण लोगों की यह धारणा है कि वीररस प्रधान काव्य को ही 'एपिक' कहते हैं, इस कारण जिस देश में जिस समय वीररस के गौरव को प्रधानता मिली है उस देश और उस काल में स्वभावतः ही 'एपिक' वीररस-प्रधान हो गई है। रामायण में भी युद्ध की कमी नहीं है और रामचन्द्र का

बाहुबल भी साधारण नहीं था किन्तु फिर भी रामायण में सब रसों की अपेक्षा जिस रस ने प्रधानता लाभ की है वह वीररस नहीं है। उससे बाहुबल का गौरव घोषित नहीं होता और युद्ध-घटना ही उसके मुख्य वर्णन का विषय नहीं है।

देवताओं की अवतार लीला को लेकर ही इस काव्य की रचना हुई हो, यह बात भी नहीं है। कवि वाल्मीकि के लिये रामचन्द्र अवतार नहीं किन्तु मनुष्य ही थे, इस बात को पण्डित लोग स्वीकार करेंगे। इस भूमिका में पंडिताई दिखाने का प्रयोजन नहीं है किन्तु इस जगह हम संक्षेप में केवल इतना ही कहते हैं कि यदि रामायण में नरचरित्र का वर्णन न कर देवचरित्र का वर्णन किया जाता तो उससे रामायण का गौरव कम हो जाता और इस कारण काव्य की दृष्टि से उसमें फीकापन आ जाता।

आदि काण्ड के प्रथम सर्ग में वाल्मीकि ने अपने काव्य के उपयुक्त नायक का सन्धान करके जब बहुत से गुणों का उल्लेख कर नारद से जिज्ञासा की कि—

"समग्रा रूपिणी लक्ष्मीः कमेकं संश्रिता नरं।"

'किस एक मात्र नर को आश्रय कर के समग्र लक्ष्मी रूप ने ग्रहण किया है?'—उस समय नारद ने कहा—

"देवेष्वपि न पश्यामि कश्चिदेभिर्गुणैर्युतं।
श्रूयतां तु गुणैरेभिर्यो युक्तो नरचन्द्रमाः।"

"इतने गुणों से विशिष्ट पुरुष तो हम देवताओं में भी नहीं देखते, पर जिस नरचन्द्रमा में ये सब गुण हैं उसकी कथा सुनो।"

रामायण इसी नरचन्द्रमा की कथा है, देवता की कथा नहीं है। रामायण में देवताओं ने अपने को खर्व करके मनुष्य नहीं बनाया किन्तु मनुष्य ही अपने गुणों से देवता हो गये।

मनुष्य के पूर्ण आदर्श को स्थापन करने के लिए ही भारत के कवि ने इस महाकाव्य की रचना की है। और उस दिन से लेकर आज पर्यन्त भारत की पाठकमण्डली मनुष्य के इस आदर्श चरित्र वर्णन को परम आग्रह-पूर्वक पाठ करती आ रही है।

रामायण में एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें घर की बातों ही को बहुत बड़ा करके दिखाया है। पिता पुत्र में, भाई भाई में, पति पत्नी में जो धर्म का बन्धन और प्रीति और भक्ति का सम्बन्ध है, रामायण ने उसे इतना महत्व दिया है कि वह बड़े सहज ही में महाकाव्य के उपयुक्त हो गया है। प्रायः देशजय, शत्रुविनाश और दो प्रबल विरोधी पक्षों के प्रचण्ड आघात-संघात साधारणतः महाकाव्य के बीच में आन्दोलन और उद्दीपना का संचार करते हैं। किन्तु रामायण की महिमा ने राम-रावण के युद्ध का आश्रय नहीं लिया है किन्तु इसमें वर्णित युद्धघटना रामचन्द्र और सीता के दाम्पत्य प्रेम को ही उज्ज्वल करके दिखाने का उपलक्ष मात्र है। पुत्र के लिए पिता का आज्ञापालन, भाई के लिए भाई का आत्मत्याग, पत्नी का पतिव्रत, पति का पत्नीव्रत और प्रजा के प्रति राजा का कर्तव्य कहाँ तक हो सकता है रामायण ने यही दिखाया है। इस प्रकार व्यक्तिविशेष के घर की बातों का इतना विशद वर्णन करना किसी देश के महाकाव्य में उचित नहीं समझा गया। इससे केवल कवि का नहीं किन्तु सारे भारतवर्ष का परिचय होता है। गृह और

गृहधर्म भारतवर्ष में कितने और कैसे उच्च थे वे इससे जाने जायँगे। हमारे देश में गृहस्थाश्रम का भी अत्यन्त उच्चस्थान था, यह काव्य इस बात को प्रमाणित करता है। गृहस्थाश्रम हमारे निज के सुख और आराम के लिए नहीं था किन्तु गृहस्थाश्रम सारे समाज को धारण करता था और मनुष्य को यथार्थ रूप से मनुष्य बनाता था। गृहस्थाश्रम को भारतवर्षीय आर्यसमाज की नींव समझना चाहिये और रामायण उसी गृहस्थाश्रम का काव्य है। इसी गृहस्थाश्रम धर्म को रामायण ने सङ्कट के समय में भी डाल कर वनवास के दुःख में उसे विशेष गौरव प्रदान किया है। केकई और मन्थरा के कुचक्रों की कठिन चोटों से अयोध्या के राजगृह के नष्ट हो जाने पर भी इस गृहस्थ धर्म की दुर्भेद्य दृढ़ता को रामायण घोषित कर रही है। रामायण ने बाहुबल, विजय की अभिलाषा और राष्ट्रगौरव इन सब को परित्याग कर केवल शान्तरसास्पद गृहधर्म को ही करुणा के अश्रुजलों से अभिषिक्त कर उसे सर्वोच्च सिंहासन पर विराजमान किया है।

श्रद्धाहीन पाठक कहेंगे कि इस प्रकार का चरित्रवर्णन अतिशयोक्ति में परिणत हो जाता है। इस कथन से इस बात की मीमांसा नहीं हो सकती कि किस जगह यथार्थ सीमा का और किस जगह कल्पना की सीमा का लंघन करने से काव्यकला अतिशयोक्ति-पूर्ण हो जाती है। जिन विदेशी समालोचकों ने कहा है कि रामायण में चरित्रवर्णन अतिप्राकृत हो गया है, उनसे हम यही कहेंगे कि प्रकृति के भेद से एक के लिए जो अतिप्राकृत है, दूसरे के लिए वही प्राकृत है।

जिस जगह जो आदर्श प्रचलित है उसे यदि अतिमात्रा में अङ्कित किया जाय तो उसे वहां के लोग ग्रहण ही नहीं

करेंगे। हम अपने कानों में कितने शब्दों को ठीक ठीक सुन सकते हैं इसकी सीमा है, यह नहीं कि बराबर कोई कहता चला जाय और हम सुनते ही जायँ। हमारे सुनने की सीमा के बाहर कोई चिल्लाकर हमारे कान ही क्यों न फोड़ डाले किन्तु निर्दिष्ट सीमा के बाहर हमारे कान उसके शब्दों को कभी ग्रहण ही न करेंगे। काव्य में चरित्र और भाव के उद्भावन के सम्बन्ध में भी यह बात घटती है।

यदि यह बात सत्य है तो यह बात हज़ारों वर्ष से मानी जा रही है कि रामायण की कथा भारतवर्ष के निकट किसी अंश में अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं हुई है। इस रामायण से भारतवर्ष के आबाल-वृद्ध-वनिता और ऊँच-नीच सब लोगों ने केवल शिक्षा ही नहीं पाई है किन्तु आनन्द भी प्राप्त किया है, इसे केवल उन्होंने शिरोधार्य ही किया हो सो नहीं है किन्तु इसे उन्होंने हृदय में भी स्थान दिया है। यह केवल उनका धर्मशास्त्र ही नहीं, काव्य भी है।

रामचन्द्र जो एक ही काल में हमारे निकट देवता और मनुष्य हैं, रामायण जो एक ही काल में हमारी भक्ति और प्रीति-भाजन हुई है, यह कभी सम्भव न होता यदि इस महाग्रन्थ की कविता भारतवर्ष की दृष्टि में केवल कवियों की कपोल-कल्पना ही होती और वह हमारे लोक-व्यवहार के कार्य में न आ सकती।

इस प्रकार के ग्रन्थ को यदि विदेशी समालोचक अपने काव्यों के विचार के आदर्श के अनुसार अप्राकृत कहें तो उनके देश के सहित तुलना करने में भारतवर्ष की एक और भी विशेषता प्रगट होती है। रामायण में भारतवर्ष ने जो चाहा वही पाया है।

रामायण और महाभारत दोनों को हम विशेषतः इसी भाव से देखते हैं। इनके सरल अनुष्टुप छन्दों में भारतवर्ष का सहस्रों वर्ष का हृदय सजीव रूप से धड़क रहा है।

सुहृद्वर श्रीयुक्त दीनेशचन्द्र सेन महाशय ने जिस समय अपनी इस रामायण-चरित्र-समालोचना की एक भूमिका लिख देने के लिए हम से अनुरोध किया, उस समय हमारा स्वास्थ्य ठीक न होने और अवकाश न रहने पर भी हम उनकी बात अस्वीकार नहीं कर सकते थे। कविकथा को भक्त की भाषा में दुहरा कर उन्होंने अपनी भक्ति की चरितार्थता सिद्ध की है। इस प्रकार की पूजा की आवेग-मिश्रित व्याख्या ही हमारे मत में प्रकृत समालोचना है, इस उपाय से ही एक हृदय की भक्ति दूसरे हृदय में सञ्चारित होती है। अथवा जिस समय पाठक के हृदय में भी भक्ति हो उस समय पुजारी की भक्ति हृदय को विगलित कर देती है। हमारी आजकल की समालोचना बाज़ार में भाव जचाई करने के समान है, क्योंकि आजकल साहित्य बाज़ार की चीज़ है। कहीं पीछे से धोखा न हो इसलिए सब लोग चतुर परीक्षकों का आश्रय लेने के लिए उत्सुक होते हैं। इस प्रकार की जचाई कराने से लाभ अवश्य होता है किन्तु हम फिर भी यही कहेंगे कि यथार्थ समालोचना पूजा ही है और समालोचक पुजारी है। वह अपनी अथवा सर्वसाधारण के भक्ति-विगलित विस्मय को केवल प्रगट करता है।

भक्त दीनेशचन्द्र ने उसी पूजा-मन्दिर के जगमोहन में खड़े होकर आरती आरम्भ कर दी है। हमें उन्होंने यकायक घंटा बजाने का भार दे दिया। एक कोने में खड़े होकर हम इस कार्य में प्रवृत्त हुए हैं। हम अधिक आडम्बर करके उनकी पूजा को

छिपाना नहीं चाहते। हम केवल इतना ही कह देना चाहते हैं कि पाठकगण वाल्मीकि के रामचरित्र को केवल मात्र कवि का काव्य ही न समझें किन्तु उसको भारतवर्ष की रामायण समझें। इस प्रकार वे रामायण के द्वारा भारतवर्ष को और भारतवर्ष के द्वारा रामायण को यथार्थ रूप से जान सकेंगे। साथ ही वे यह स्मरण रक्खें कि यह कोई ऐतिहासिक गौरवकथा नहीं है, किन्तु भारतवर्ष परिपूर्ण मानव के आदर्श चरित्र को सुनना चाहता था और आज पर्यन्त उसे अश्रान्त आनन्द सहित सुनता आ रहा है। भारतवर्ष यह नहीं कहता कि इसमें अतिशयोक्ति है, यह भी नहीं कहता कि यह केवल काव्यकथा मात्र है। भारतवासियों के लिए उनके घर के लोग इतने सच्चे नहीं हैं जितने कि राम, लक्ष्मण और सीता उनके लिए सच्चे हैं।

मानवचरित्र की परिपूर्णता पर भारतवासियों की बड़ी श्रद्धा है। उन्होंने उसे यथार्थ सत्य के विपरीत समझ कर कभी उसकी अवज्ञा और अविश्वास नहीं किया। किन्तु इसी को उन्होंने पूर्ण सत्य समझकर स्वीकार किया है और इसी से उन्होंने आनन्द प्राप्त किया है। इसी परिपूर्णता की आकांक्षा को उद्बोधित और तृप्त करके वाल्मीकि ने रामायण को रच कर भारतवर्ष के भक्तों के हृदय को सदा के लिए मोल ले लिया है।

जो जाति आंशिक सत्य को प्रधानता देती है, जो यथार्थ सत्य का अनुसरण करने से मुंह नहीं मोड़ती, जो काव्य को प्रकृति का दर्पण मात्र समझती है, उसने संसार में अनेक कार्य किये हैं और वह विशेष रूप से धन्य हुई है और मानव-जाति उसके निकट ऋणी है। किन्तु दूसरी ओर जिन्होंने

कहा है कि "भूमैव सुखं। भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः" अर्थात् "उस परब्रह्म ही में सुख है और उसी परब्रह्म परमात्मा को विशेष रूप से जानना चाहिये।" और जिन्होंने मानवचरित्र की परिपूर्णता को बनाये रखने के लिए उसके सब अङ्ग-प्रत्यङ्गों के सौन्दर्य की यथेष्ट रूप से रक्षा करने और सब विरोधों को शान्त करने के लिए विशेष रूप से यत्न किया है, उनका ऋण भी किसी समय दूर होने वाला नहीं है। अतएव जिस प्रकार धूल और धुवें से भरे हुए कल-कारखानों में खिड़कियाँ बन्दकर देने से हवा जाने का रास्ता रुक जाने पर लोग दम घुट कर मर जाते हैं, उसी प्रकार यदि हम अपने हृदय रूपी गृहों में उक्त मानवजातियों के स्वरूपज्ञान और उनके उपदेश रूपी खिड़कियों को बंद कर देंगे अर्थात् उन्हें भूल जाँयगे तो मानवसभ्यता दम घुटने के समान पल पल में पीड़ित और क्षीण हो कर सदा के लिए इस संसार से बिदा हो जायगी। रामायण उन्हीं अखण्ड अमृतपिपासुओं का चिरकाल से परिचय करा रही है। इसमें जो सौभ्रात्र, सत्य-परता, पातिव्रत्य और प्रभु-भक्ति वर्णित हुए हैं, उनके प्रति यदि हम सरल श्रद्धा और आन्तरिक भक्ति की रक्षा कर सकें तो हमारे हृदय रूपी कारखाने और घरों में महासमुद्र की निर्मल वायु प्रवेश कर हमें सदा के लिए सुखी करेगी।

ब्रह्मचर्याश्रम, बोलपुर।
सन् १९०४ ई० } श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर।

ग्रन्थकारकृत प्रथम संस्करण की भूमिका ।

"रामचन्द्र" शीर्षक प्रबन्ध अन्य प्रबन्धों के सदृश ठीक चरित्रचित्रण नहीं है। रामायण और महाभारत की कथा आजकल के बङ्गीय पाठकों को अच्छी तरह विदित नहीं है, इसी लिए "रामचन्द्र" शीर्षक प्रबन्ध में रामायण की आख्यायिका अनेक अंशों में जोड़ दी गई है, ठीक रामचरित्र की आलोचना समझ कर इसे जो पढ़ेंगे वे बहुत स्थानों में इसे व्यर्थ समझेंगे। रामायण से अनभिज्ञ पाठकगण धैर्यपूर्वक इस आख्यायिका के पाठ करने पर रामायण के मूल वृत्तान्त से अवगत होंगे और कृत्तिवासी रामायण के साथ जो मूल में कहीं कहीं पर अनैक्य है उसका भी उन्हें कुछ कुछ आभास मिलेगा।

इन प्रबन्धों में कहीं कहीं एक ही कथा का पुनरुल्लेख मिलेगा। दो व्यक्तियों के उत्तर प्रत्युत्तर से उन दोनों का चरित्र अनेक समय दोनों ओर से फूट पड़ा है, इस लिए प्रत्येक के चरित्र का विकाश दिखाने के लिए एक ही कथा का पुनरुल्लेख करना अपरिहार्य बोध हुआ है।

इस पुस्तक में जो सब श्लोकों का अनुवाद दिया हुआ है वह कहीं कहीं ठीक आक्षरिक न होने पर भी सर्वत्र मूलानुयायी है, कहीं भी मूल के अभिप्राय का विरोधी नहीं है। अनेक स्थलों में हमने गोरोशियो के संस्करण का अवलम्बन करके अनुवाद किया है, वह प्रचलित वाल्मीकीय रामायण के बंगला या बम्बई के संस्करणों में नहीं मिलेगा।

प्रबन्धों में दशरथ और रामचन्द्र का अधिकांश "बंग-भाषा" में और अन्य प्रबन्ध "बङ्गदर्शन" में प्रकाशित हुए थे, इस समय अनेक प्रबन्ध पूरी तरह परिशोधित और परिवर्द्धित हुए हैं।

भक्तिभाजन सुहृद्वर श्रीयुक्त रवीन्द्रनाथ ठाकुर महाशय ने स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी हमारे अनुरोध से भूमिका लिख दी है; इस सुन्दर भूमिका में थोड़े ही से में महाकाव्य का सूक्ष्म तात्पर्य और सार बातें लिखी हुई हैं। पुस्तक के इस प्रकार गौरवजनक आभूषण धारण कर के प्रकाशित होने से हमारी समझ में इसकी सब प्रकार की कमी दूर हो गई है। इस जगह हम कृतज्ञता सहित उल्लेख करते हैं कि श्रद्धास्पद सुहृद् कविवर श्रीयुक्त बरदाचरण मित्र सी० एस० महोदय का अविरल उत्साह न पाने पर यह पुस्तक प्रकाशित होती या नहीं, इसमें सन्देह है।

अन्त में हम कृतज्ञतापूर्वक प्रगट करते हैं कि कटक के प्रसिद्ध वकील श्रीयुक्त राय हरिवल्लभ वसु बहादुर ने इस पुस्तक की छपाई के व्यय में सहायता देकर हमें विशेष रूप से उपकृत किया है।

कलकत्ता
सन् १९०४ ई०

श्रीदीनेशचन्द्र सेन।

ग्रन्थकारकृत तृतीय संस्करण की भूमिका ।

तीसरे संस्करण में यह पुस्तक आमूल परिशोधित हुई है। प्रायः २० वर्ष तक वाल्मीकि का महाकाव्य पढ़ कर हमने यह पुस्तक लिखी है। प्रसन्नता की बात है कि इस पुस्तक को सर्वसाधारण ने पसन्द किया है। कलकत्ता विश्वविद्यालय की इंटरमीडियेट परीक्षा में यह पाठ्य-पुस्तकों में निर्द्धारित हुई है। सुविख्यात बंगला विश्वकोश नामक महाग्रन्थ में "रामायणी कथा" से "रामचन्द्र" और "लक्ष्मण" ये दो प्रबन्ध परिगृहीत हुए हैं। प्रयागनिवासी श्रीयुक्त कृष्णकान्त जी मालवीय महाशय इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद कर रहे हैं, उन्होंने "रामायणी कथा" के सम्बन्ध में हमको लिखा है कि,—

To me the 'Ramayani Katha' possesses the world's literature in itself—I have requested many friends of mine to read Bengali only for the sake of reading the "Ramayani Katha".

अर्थात् मेरी समझ में "रामायणी कथा" में संसार का साहित्य कूट कूट कर भरा हुआ है और मैं अपने अनेक मित्रों से केवल रामायणी कथा के निमित्त ही बंगभाषा पढ़ने का अनुरोध किया है।"

इस संस्करण में कैकेयी शीर्षक एक नूतन प्रबन्ध सन्निवेशित हुआ है। विषय सूची पहले तैयार हो गई थी, उसमें उस समय "कैकेयी" प्रबन्ध न था किन्तु तीसरा संस्करण उसके बाद प्रकाशित हुआ अतएव उसमें "कैकेयी" प्रबन्ध भी रख दिया गया।

१५ फरवरी सन् १९१० ई०,
१६ नं० कांटापुकुर लेन,
बागबाजार, कलकत्ता।

श्रीदीनेशचन्द्र सेन।

रामायणी कथा।

दशरथ।

वाल्मीकि ने लिखा है कि महाराज दशरथ जगत्प्रसिद्ध महर्षियों के सदृश उज्ज्वल चरित्रवान् थेः—

"न द्वेष्टा विद्यते तस्य स तु द्वेष्टि न कञ्चन।"

'इस संसार में कोई उनका शत्रु नहीं था और वे भी किसी के शत्रु नहीं थे।'

वे इतने अधिक पराक्रमी थे कि इन्द्र उनसे असुरों से युद्ध करने के समय सहायता माँगता था। वे जितेन्द्रिय तथा प्रजावत्सल थे और प्रजा उन्हें साक्षात्--"पितामह इवापरः"—दूसरा प्रजापति (ब्रह्मा) ही मानती थी।

अयोध्याकाण्ड में १०७वें सर्ग में रामचन्द्र ने भरत से कहा था किः--

"जातः पुत्रो दशरथात् कैकेय्यां राजसत्तमात्।
पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद्राज्यशुल्कमनुत्तमम्॥

'राजा दशरथ ने कैकेयी से विवाह करते समय तुम्हारे नाना अश्वपति से प्रतिज्ञा की थी कि वे कैकेयी से उत्पन्न हुए पुत्र को राज्य प्रदान करेंगे।"

इसका अर्थ यह नहीं है कि इस प्रतिज्ञा के अनुसार राज्य भरत ही को मिलेगा। कौशल्या पटरानी थी इस लिए उनके सन्तान ही राज्य के एकमात्र उत्तराधिकारी थे। कैकेयी हीन विवाह की रानी थी किन्तु उक्त प्रतिज्ञा के अनुसार उसके सन्तानों को भी राज्य का अधिकार मिला। अन्य रानियों के गर्भ से उत्पन्न हुए पुत्रों का सिंहासन पर कोई दावा नहीं था। कैकेयी के पुत्रों का भी सिंहासन पर अधिकार माना जायगा यह प्रतिज्ञा करके उन्होंने उसका पाणि-ग्रहण किया था।

किन्तु इस प्रतिज्ञा का यह अर्थ नहीं है कि वे बड़ी रानी के ज्येष्ठ पुत्र के अधिकार को छीन कर कैकेयी के पुत्र को राजसिंहासन पर अभिषिक्त करेंगे। इसका यही अर्थ है कि बड़ी रानी के पुत्र न होने पर अथवा कैकेयी का पुत्र ज्येष्ठ होने पर उसका सिंहासन पर बैठने का दावा अस्वीकार न किया जायगा।

दशरथ ने ऐसी प्रतिज्ञा क्यों की? कैकेयी सुन्दरी और नवयुवती थी। तो क्या उसके रूप से मोहित हो कर ही दशरथ ने यह प्रतिज्ञा की थी? वाल्मीकि ने लिखा है कि दशरथ 'जितेन्द्रिय' थे, उनका यह कथन अत्युक्ति या व्यंगोक्ति नहीं है। जान पड़ता है कि पुत्र न होने के कारण ही दशरथ ने यह प्रतिज्ञा की थी। उन्होंने कई विवाह किये थे. ऐसा करना उस समय की राजपद्धति के अनुकूल था किन्तु बहुत करके केवल पुत्र ही की कामना से उनका ऐसा करना सम्भव है। इसी पुत्र-प्राप्ति के लिये उन्होंने "अग्निष्टोम" "अश्वमेध" प्रभृति अनेक यज्ञ किये थे, यह भी हमको विदित है, किन्तु रानी कैकेयी का उनके हृदय पर अधि-

कार हो गया था, इसमें सन्देह नहीं है। भरत ने कहा था कि:—

"राजा भवति भूयिष्ठ मिहाम्बाया निवेशने।"

'राजा अनेक समय माता कैकेयी के महल ही में रहते हैं':—

"स वृद्धस्तरुणीं भार्य्यां प्राणेभ्योऽपिगरीयसीम्।"

"वृद्ध राजा तरुणी भार्या को प्राणों से भी ज्यादा चाहते थे।"

यह उक्ति भी वाल्मीकि ही ने दशरथ के प्रति प्रयोग की है; अतएव वृद्ध राजा तरुणी कैकेयी में आवश्यकता से कुछ अधिक आसक्त हो गये थे, इसमें सन्देह नहीं है और कैकेयी भी स्वामी की सेवा में जिस जी जान से लगी हुई थी वह भी हम से छिपा नहीं है। देवासुर संग्राम में जब महाराज दशरथ बाणों की चोट से घायल और विकल हुए थे उस समय उसने उनकी बड़ी सेवा-सुश्रूषा कर उनसे दो वरदान पाये : ये दो वरदान दशरथ ने उसे स्वयं अपनी इच्छा से दिये थे। कैकेयी ने इन वरों को आगे के लिये रख छोड़ा कि जब ज़रूरत होगी माँग लूंगी। वह पति की सेवा के बदले कोई पुरस्कार नहीं चाहती थी और वह इस वरदान की बात बिलकुल भूल गई थी। यदि मन्थरा का षड़यन्त्र न रचा जाता और वह उसे पूरी तरह स्मरण न कराती तो कैकेयी इस वरदान की बात कभी ध्यान में भी लाती कि नहीं इसमें भी सन्देह है। ऐसी गुणवती रमणी से अनुराग होना कितना स्वाभाविक है और इसके लिये हम दशरथ को जितना दोषी ठहराते हैं वे उतने दोषी हैं या नहीं यह भी विचार करने के योग्य है।

किन्तु इस अनुराग के वशीभूत हो उन्होंने कौशल्या की मान-मर्य्यादा में कुछ कमी की हो यह नहीं दिखाई पड़ता। यह स्वाभाविक है कि बहुत स्त्रियाँ होने पर किसी एक पर कुछ अधिक प्रेम हो किन्तु इस बात का पता नहीं लगता कि उन्होंने कैकेयी के वश में होकर अपनी पटरानी महारानी कौशल्या का ऊपर से कुछ तिरस्कार किया हो। यज्ञ के चरु को बाँटते समय हम देखते हैं कि कौशल्या को उन्होंने चरु का आधा भाग दिया और आधे में से दोनों रानियों को बाँटा। बड़ी रानी को अधिक मिलना चाहिये वे इस बात को नहीं भूले। वन जाते समय रामचन्द्र लक्ष्मण को कौशल्या की रक्षा और उनकी देखभाल करने के लिये छोड़ जाना चाहते थे जिसके उत्तर में लक्ष्मण ने कहा था कि "कौशल्या ने अपने अधीन व्यक्तियों को हजारों गाँव दान दिये हैं, वे हम जैसे सहस्रों पुरुषों का भरण-पोषण स्वयं कर सकती हैं, वे अपने या माता सुमित्रा के उदर-भरण के निमित्त और किसी से प्रार्थना नहीं करेंगी। उनके भार ग्रहण करने की हमें कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।" अतएव कौशल्या के स्वामी के चित्त पर एकाधिपत्य स्थापित न करने पर भी उसे पटरानी के अनुरूप सब बाहरी सम्पत्ति आदि चीजें और मान-मर्य्यादा प्राप्त थीं इसमें सन्देह नहीं।

दशरथ कैकेयी में अनुरक्त थे और कैकेयी ने भी अभी तक प्रकाश्य रूप से पारिवारिक शान्ति-भंग करने की कोई चेष्टा नहीं की। कौशल्या से कैकेयी जब तब बुरा व्यवहार करती थी किन्तु उसे धर्मभीरु देवीभावापन्न कौशल्या स्वामी के कानों में न डालती, अतएव दशरथ का कैकेयी पर जो विशेष अनुराग था उसमें किसी प्रकार का विक्षेप न पड़ा।

कैकेयी पर दशरथ का जैसे एक प्रकार से स्वाभाविक अनुराग था वैसे ही पुत्रों में रामचन्द्र पर भी उनके अधिक स्नेह होने का परिचय मिलता है।

"तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः।"

'उनमें (पुत्रों में) राम ही राजा के विशेष प्रीतिभाजन थे।'

जिस समय विश्वामित्र ने दशरथ से रामचन्द्र को ताड़क बध के लिये माँगा और अपने साथ ले जाना चाहा उस समय—

"ऊनषोड़शवर्षो मे रामो राजीवलोचनः॥"

"अर्थात् मेरे कमल-नयन रामचन्द्र की अवस्था अभी पंद्रह वर्ष की है।" कह कर राजा ने नितान्त उद्विग्न होकर असम्मति प्रगट की और राक्षसों के के बध लिये स्वयं चलने की मुनि से आज्ञा माँगी। किन्तु विश्वामित्र के निकट वे सत्यबद्ध थे और सत्य की कथाएं स्मरण कर अन्त में उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की। सत्यसन्ध महाराज दशरथ सत्य के लिये अपने प्राणप्रिय काकपक्षधारी दोनों पुत्रों को राक्षसों से भीषण-युद्ध करने के लिये भेजने को राजी हो गये। इसी सत्य के पालन के लिये उन्होंने अपने प्राण विसर्जन कर दिये यह सब पर अच्छी तरह विदित है।

दशरथ का रामचन्द्र को युवराज बनाने का विशेष आग्रह बहुत अंशों में विस्मयजनक बोध होता है। ऐसा आभास होता है कि रामचन्द्र के अभिषेक होने के पहले ही उन्हें अपनी मृत्यु सामने खड़ी हुई दिखाई पड़ती थी; उनका शरीर जीर्ण हो गया था और कितने ही असगुन उनके अन्तःकरण में भय का सञ्चार कर रहे थे, इस लिये ज्येष्ठ-

पुत्र को सिंहासन पर बैठाने के लिए उन्हें इतना आग्रह होना स्वाभाविक ही है।

"विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः।
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम॥"

'भरत के अयोध्या से दूर रहते रहते ही तुम्हारा अभिषेक हो जाय यही हमारा अभिप्राय है।'

इस बात के समर्थन में राजा ने कहा था कि—"यद्यपि भरत धर्मशील, जितेन्द्रिय और सर्वदा बड़ों की आज्ञानुसार चलने वाले हैं, तथापि धर्मनिष्ठ साधु व्यक्ति का भी चित्त विचलित होना सम्भव है" इस प्रकार की आशङ्का दशरथ को कैसे हुई इसका कारण विशद रूप से समझ में नहीं आता। उस समय भरत और शत्रुघ्न अपने मामा के यहाँ थे। वहाँ अपने मामा युधाजित के पुत्रतुल्य स्नेह से लालन-पालन किये जाने और अनेक प्रकार के भोग-विलासों में मग्न और सुखी रहने पर भीः—

"तत्रापि निवसन्तौ तौ तर्प्यमाणौ च कामतः।
भ्रातरौ स्मरतां धीरौ वृद्धं दशरथं नृपम्॥"

वे सदा दोनों भाइयों और वृद्ध पिता को स्मरण करते थे। पितृवत्सल और भ्रातृवत्सल भरत पर राजा की आशङ्का होने का कोई कारण समझ में नहीं आता। दूसरे उन्होंने महाराज जनक और अश्वपति को अभिषेकोत्सव में निमन्त्रण नहीं दिया और यही कहा कि इस मङ्गल अनुष्ठान को हुआ जान कर वे प्रसन्न होंगे। वे ऐसी उतावली और शङ्कित चित्त से इस अभिषेक के कार्य में प्रवृत्त हुए कि मानो किसी अमङ्गल की छाया उनपर पड़ी हो; भावी अनर्थ के पूर्वाभास ने मानो अलक्षित भाव से उनके मन पर अधिकार कर लिया हो

और किसी अशुभ ग्रह के फल से मानो वे स्वयं रामचन्द्र के अभिषेक के समय अचिन्तित-पूर्व विघ्नों को आशङ्का द्वारा खींच लाये हों। भरत के आने और अपने सम्बन्धियों के बुलाने पर, इस कार्य में प्रवृत्त होने से इस प्रकार के अनर्थ की सम्भावना नहीं थी; क्योंकि भरत के उपस्थित रहने पर कैकेयी का षड्यन्त्र व्यर्थ जाता।

कैकेयी ऐसा अनर्थ करेगी, दशरथ ने यह स्वप्न में भी न सोचा था। कैकेयी ने दशरथ से बारम्बार कहा था कि भरत और राम उसे एक समान प्यारे हैं। * कैकेयी ने राजा से रामचन्द्र की धर्मशीलता की बहुत प्रशंसा की थी। †मन्थरा ने जब कैकेयी को उत्तेजित करने के लिये क्रुद्धस्वर से उसे रामचन्द्र के अभिषेक का संवाद सुनाया तब कैकेयी ने प्रफुल्लित मन से अपने गले में पड़े हुए बहुमूल्य हार को उतार कर मन्थरा को दे दिया और मन्थरा के क्रोध और आशङ्का का कुछ भी कारण न जान कर कहाः—

"रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये ।
यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः ॥
कौशल्यातोऽतिरिक्तं च मम सुश्रूषते बहु ।
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा ॥"

"राम और भरत में हम कुछ भी भेद नहीं समझतीं, भरत और राम दोनों हमारे लिये बराबर हैं; राम हमारी कौशल्या से भी अधिक सेवा करते हैं। यदि राज्य राम को मिला तब भी तो वह भरत ही को मिला।"

*अयोध्या काण्ड, १२वां अध्याय, १७वां श्लोक ।

†अयोध्या काण्ड, १२वां अध्याय, २१वां श्लोक ।

जो राजा के सामने और उनके पीछे रामचन्द्र से ऐसे सरल और शुद्ध हृदय से प्रेम करती थी उस पर राजा कैसे सन्देह करते! इस देवभावापन्न सुख-शान्ति-मय परिवार में एक कुबड़ी दासी के कुटिल हृदय में विष ने प्रवेश कर सारे अनर्थ को उत्पन्न किया।

भरत और अश्वपति से राजा सम्भवतः भय उत्पन्न होने की कल्पना करते थे। हम लोग प्रायः जिस ओर से अनिष्ट होने की आशङ्का करते हैं, अनिष्ट उस ओर से न आकर दूसरी ही ओर से आ उपस्थित होता है।

रामचन्द्र के अभिषेक के लिये सब तैयारियां करके राजा कैकेयी के महल में गये। उस समय सन्ध्या हुआ चाहती थी और कैकेयी के महल के बगल में विचित्र लताभवन और चित्रशाला के चारों ओर दीवारों पर छाई, पुष्पों से लदी हुई लताओं के ऊपर अस्ताचल को जाते हुए सूर्य की किरणें आ आ कर पड़ती थीं। कैकेयी—"प्रियार्हा" प्रिय बातें कहने के योग्य थी, अतएव—"प्रियमाख्यातु"—उसे रामचन्द्र के अभिषेक का प्रियसंवाद सुनाने के लिये राजा आग्रहान्वित हुए।

कैकेयी कोप-भवन में चली गई थी। राजा उसे शयन-गृह में न पा कर और उसे क्रोध होने का समाचार सुन कर बड़े उद्विग्न हुए। कोपभवन में जा कर उन्होंने जो दृश्य देखा, उससे उनके प्राणों पर आ बनी। कैकेयी ने अपने सब आभूषण उतार कर फेंक दिये थे, चित्रों को अपने अपने स्थान से हटा दिया था और फूल की मालाओं को सुन्दर हाथी दांत के पलंग के पास तोड़ कर बिखेर दिया था। अपने बालों को खोल और बिखेर कर मानिनी कैकेयी भूमि पर

लता के समान लोटी हुई थी। राजा ने बड़े आदरपूर्वक उसके केशों को स्पर्श करके कहा—'क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया है? यदि तुम्हारा शरीर अस्वस्थ हो तो अभी राजवैद्य आ कर तुम्हारी चिकित्सा करें? क्या किसी दरिद्र व्यक्ति को धनी बनाना होगा?—

"अहञ्च हि मदीयाश्च सर्वे तव वशानुगाः।"

हम और हमारे पास जो कुछ है सब तुम्हारा है; तुम्हारी जो इच्छा हो कहो, हम अभी तुम्हें वही दे कर प्रसन्न करें:—

"यावदावर्तते चक्रं तावती मे वसुन्धरा।"

"सूर्यनारायण इस पृथ्वी-मण्डल में जहाँ तक अपना प्रकाश फैलाते हैं वहां तक सब हमारा राज्य है"—इस लिये संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो तुम्हें न मिल सके।"

अवसर देख कर कैकेयी ने पुराने दोनों बरों को माँगा। राजा ने बर देने की इस प्रकार प्रतिज्ञा की कि-"हमें जगत में राम से बढ़ कर कोई प्यारा नहीं है, उन्हीं राम की शपथ खा कर हम प्रतिज्ञा करते हैं कि तुम जो माँगोगी वही देंगे।"

कैकेयी माँगेगी क्या? या तो हीरे मोतियों का चन्द्रहार या कोई और बहुमूल्य अलङ्कार क्योंकि रमणियाँ इन्हें लेकर फूली नहीं समातीं और आज ऐसे मङ्गल-समय में उसे ये आभूषण देना कोई बड़ी बात न होगी। राजा ने सीधे सच्चे मन से बिना कुछ आगा पीछा सोचे उससे प्रतिज्ञा कर ली।

इस प्रकार जब राजा कैकेयी के जाल में फँस गये तब उसने पत्थर का हृदय कर के राजा से धीरे धीरे हृदय विदीर्ण करने वाले ये दो बर माँगे कि भरत को राज्य मिले और रामचन्द्र चौदह वर्ष तक वन में वास करें।

राजा कुछ देर तक कैकेयी की बात नहीं समझे और विचार करने लगे कि क्या यह दिन में स्वप्न देखते हैं या चित्त को भ्रम हो गया है। जिस सुन्दरी के केशपाशों को हाथ में लेकर वे कितनी ही प्रेम भरी बातें कहते थे उसके वे ही सुन्दर बाल उन्हें काल-फाँसी के समान समझ पड़े। रूपवती कैकेयी उन्हें भयङ्करी प्रतीत होने लगी। व्यथित और विह्वल दृष्टि से कैकेयी की ओर देख कर वे भयभीत हो गये—

"व्याघ्रीं दृष्ट्वा यथा मृगः"

"जैसे मृग बाघिन को देख कर भय से काँपता है वैसे ही राजा कैकेयी की ओर देख कर भयभीत हुए।"

"अरी हत्यारिन! जिन रामचन्द्र ने सदा तुझ पर जननी के समान स्नेह किया और सदा तेरी सेवा-शुश्रूषा की है, तू उनका ऐसा बुरा क्यों चाहती है? हम कौशल्या, सुमित्रा, यहाँ तक कि अयोध्या की सारी राजलक्ष्मी को भी छोड़ सकते हैं किन्तु राम के बिना हम किसी तरह नहीं जी सकते।—

"तिष्ठेल्लोको विना सूर्यं शस्यं वा सलिलं विना"

'सूर्य के बिना जगत और जल के बिना खेती चाहे रह जाय'—किन्तु राम के बिना हमारे प्राण नहीं रह सकते।" ये सब बातें कह कर कभी राजा क्रुद्ध होकर कैकेयी को डाटते थे, कभी हाथ जोड़ कर उसके पैरों में गिरते थे। किन्तु कैकेयी का हृदय जरा भी न पिघला और क्रुद्ध स्वर से उसने कहा कि 'महाराज शिवि ने सत्य की रक्षा के लिये श्येन पक्षी को अपना मांस दे दिया था, अलर्क ने सत्यबद्ध होकर अपनी आंख बाहर निकाल डाली थी, समुद्र सत्यबद्ध होकर अपने किनारे से बाहर जाकर अपनी मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं करता।

यदि तुम सत्य की रक्षा न करोगे तो मैं अभी विष खा कर प्राण दे दूंगी।" थोड़ी ही देर में महाराज दशरथ बड़े विह्वल हुए और सोचने लगे कि अभिषेकोत्सव में जो अनेक देशों के राजा महाराजा बुलाये गये हैं और अनेक वृद्ध, गुणी और सज्जन व्यक्ति एकत्र हुए हैं उन सब की कल जो बड़ी भारी सभा होगी उसमें हम कैसे उपस्थित होंगे? संसार में वे अब किसी को मुख नहीं दिखा सकेंगे;—मानी पुरुष का अपमान होना मृत्यु के समान है; महामान्य महाराज दशरथ का जो सन्मान पर्वत के समान उच्च और अटूट था, वह आज धूल में मिल जायगा। एक ओर यह घोर लज्जा और दूसरी ओर अत्यन्त प्रेम-परायण, सेवक के समान आज्ञा-पालक और प्रियतम ज्येष्ठपुत्र का नीले कमल के समान सुन्दर मुख मन में बिध कर दशरथ के हृदय को विदीर्ण करने लगा। नक्षत्र-मालिनी रजनी चन्द्रिका से चर्चित हो कर जगमगा रही थी; राजा ने आँसू भरे नेत्रों से आकाश की ओर देख हाथ जोड़ कर कहाः—

"न प्रभातं त्वयेच्छामि निशे नक्षत्रभूषिते।"

"हे नक्षत्रमयि रात्रि हम तुम्हारा प्रभात नहीं चाहते।"

सजल नेत्रों से वृद्ध महाराज दशरथ कातर हो कर यही प्रार्थना कर रहे थे कि प्रभात इस लज्जा और शोक के दृश्य को संसार के सामने प्रगट न करे। कभी वे पुण्य के क्षय होने पर स्वर्ग से पतित ययाति के समान कैकेयी के पैरों में पड़ते थे; सङ्गीत के शब्द से मोहित हो कर हरिण जैसे मृत्यु के मुख में आ गिरता है आज दशरथ की ठीक वैसी ही दशा थी। जिन्हें सदा बड़े चतुर रसोइये उत्तमोत्तम पदार्थ भोजन कराते थे वे कसैले, कड़वे और तीते वन-फल खा कर वन वन

में कैसे विचरेंगे! राजकुमार की अभिषेकोज्ज्वल श्याम-सुन्दर मूर्ति को कल्पना के नेत्रों से भिक्षुक के रूप में देख कर महाराज दशरथ मूर्च्छित हो गये और उनके हृदय में काँटा चुभ गया।

इस प्रकार प्रलाप और विलाप करते करते रात्रि बीत गई और प्रभात हो गया। वन्दीजन बड़े मधुर गीत गाने लगे किन्तु जैसे मुमूर्षु व्यक्ति के कानों में मधुर संगीत पहुंच कर भी नहीं पहुंचता आज हतभाग्य दशरथ की ठीक वैसी ही दशा थी।

उस समय वशिष्ठ जी अभिषेक के लिये सब सामग्री प्रस्तुत कर द्वार पर खड़े हुए थे। रामचन्द्र के अभिषेक के हर्ष में अयोध्यावासियों की आंखें जल्दी ही खुल गई थीं और राजमहल से बड़ा भारी चहल-पहल सुनाई पड़ता था। वशिष्ठ के आदेश से सुमन्त्र महाराज दशरथ को राजसभा में आह्वान करने के लिए उनके पास आये; उस समय संज्ञाहीन राजा ने अश्रुधाराकुल चक्षुओं से कैकेयी की ओर देख कर कहा कि:—

"धर्मबन्धेन बद्धोऽस्मि नष्टा च मम चेतना।
ज्येष्ठं पुत्रं प्रियं रामं द्रष्टुमिच्छामि धार्म्मिकम्॥"

"हम धर्मबन्धन में बंधे हुए हैं, हमारी चेतना नष्ट हो गई है, हम अपने धर्मवत्सल प्रिय ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र को एक बार देखना चाहते हैं।"

इस समय सुमन्त्र ने आ कर कहा कि "भगवान् वशिष्ठ, सुयज्ञ, जाबालि प्रभृति ऋषियों सहित उपस्थित हैं, रामचन्द्र के लिये महाराज आदेश प्रदान करें।" राजा का मुख सूख गया और वे नीचे नयनों से सुमन्त्र की ओर देखने ही

रह गये। दशरथ की इस करुणमूर्ति को देख कर सुमन्त्र हाथ जोड़ कर बड़े दीन भाव से उनकी आज्ञा जानने के लिये खड़े रहे, उस समय कैकेयी बोलीः—

"सुमन्त्र राजा रजनीं रामहर्षसमुत्सुकः।
प्रजागरपरिश्रान्तो निद्रावशमुपागतः॥"

'हे सुमन्त्र! राजा, रामचन्द्र के अभिषेक के हर्ष के मारे कल रात्रि भर नहीं सोये इस लिये बड़े निद्रातुर और परिश्रान्त होकर पड़ गये हैं।'—"तुम राम को शीघ्र लिवा लाओ।"

सुमन्त्र ने हाथ जोड़ कर कहा—

"अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि।"

"हे रानी, मैं राजा का अभिप्राय जाने बिना कैसे जाऊँ?"

तब दशरथ ने कहा—"सुमन्त्र, हम सुन्दर रामचन्द्र को देखना चाहते हैं, तुम उन्हें शीघ्र लिवा लाओ।"

इसके बाद फिर महाराज दशरथ का शोकोच्छ्वास वाणी द्वारा प्रकाशित नहीं हुआ, चुपचाप अश्रुजल से स्नान कर कभी वे संज्ञाशून्य होकर गिर पड़ते थे और कभी अर्थशून्य दृष्टि से चारों ओर देखते थे। जब रामचन्द्र प्रणाम करके खड़े हो गये तब राजा केवल 'राम' शब्द मात्र उच्चारण कर दीन भाव से नीचा मुंह करके रोने लगे और कोई बात कह नहीं सके। जब राम वन जाने के लिये प्रतिज्ञा करके कैकेयी को आश्वासन देते थे उस समय दशरथ मौन और विमूढ़भाव से सब बातें सुनते थे। रामचन्द्र ने दशरथ की ओर देख कर कैकेयी से कहा, "देवि, आप महाराज को आश्वासन दीजिये, वे नीचा मुख किये क्यों अश्रु विसर्जन कर रहे हैं।" जब रामचन्द्र ने यह कहा कि 'पिता प्रत्यक्ष देवता

हैं, हमें उनकी आज्ञा से विष खा सकते हैं और समुद्र में डूब सकते हैं,"तब इस विषमिश्रित 'अमृततुल्य, स्नेहमधुर और मर्मच्छेदी वाक्य को सुन कर शोकातुर राजा अचेत हो गये। रामचन्द्र को शीघ्र वन भेजने के लिये कैकेयी बोली, "राम, तुम, जब तक इनसे अत्यन्त शीघ्र विदा ले कर वन न चले जाओगे तब तक ये स्नान, भोजन कुछ भी न करेंगे।" यह सुन कर महाराज जोर से रोते रोते पलंग पर से पृथ्वी पर गिर कर मुच्छित हो गये। उन्हें रानियों का आर्तनाद सुनाई पड़ता था जब वे चिल्ला कर यह कहती थीं कि:

"अनाथस्य जनस्यास्य दुर्बलस्य तपस्विनः।
यो गतिः शरणं चासीत् स नाथः क्वनुगच्छति॥"

"अनाथ और दुर्बल व्यक्तियों के एक मात्र आश्रय और गति रामचन्द्र आज कहाँ जाते हैं" तब उस—"क गच्छति"-स्वर की प्रतिध्वनि राजा के हृदय रूपी सितार से उठती थी। जब राजा को "बुद्धिशून्य" समझ कर वे विलाप करती थीं तब दशरथ का मुखमण्डल अश्रुओं से तर हो रहा था।

रामचन्द्र माता से विदा ले आये; सीता और लक्ष्मण उनके साथ हुए। तब वे पिता के पास बिदा लेने आये। सुमन्त्र ने राजा से उनके आने का समाचार कहा। तब:—

"स सत्यवाक्यो धर्मात्मा गाम्भीर्यात् सागरोपमः।
आकाश इव निष्पङ्को नरेन्द्रः प्रत्युवाच तम्॥"

"सत्यवादी, धर्मात्मा, समुद्र के समान गम्भीर और आकाश के समान निष्कलङ्क राजा ने सुमन्त्र से कहा":—

"हमारी सब रानियों को लिवा लाओ। हम उन सब के साथ रामचन्द्र का दर्शन करेंगे।" सब रानियाँ आ उपस्थित हुई। जब रामचन्द्र ने महल में प्रवेश किया तब उनको दूर से

हाथ जोड़े हुए आते देख कर दशरथ शोक के आवेग में अपने आसन से उठ कर उन्हें आलिङ्गन करने के लिये दौड़े और मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उस समय रानियाँ राजा को घेर कर खड़ी हो गईं और रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता को वन जाने के लिये उद्यत देख कर शोकार्त होकर रोने लगीं। भूषणों की ध्वनि में मिले हुए "हा राम! हा राम! इस शब्द से महल गूंज उठा। रानियाँ, राम, लक्ष्मण और सीता को गले लगा कर विना बछड़े की गाय की तरह विलाप करने लगीं। राजा के होश में आने पर अश्रुचक्षु रामचन्द्र ने सीता और लक्ष्मण सहित वन जाने की आज्ञा माँगी। राजा ने रोते रोते रामचन्द्र से कहा, "राख में छिपी हुई अग्नि के समान मायावी स्त्री के कहे में आकर मैं अशक्त हो गया हूं और वरदान से मोहित हो गया हूं। तुम मुझे जीत कर राज्य छीन लो।"

जब रामचन्द्र ने वन जाने का दृढ़ सङ्कल्प प्रगट किया तब राजा ने फिर कहा, "वत्स तुम वन को जाओ शीघ्र लौट आना, हम तुमको सत्यभ्रष्ट नहीं करना चाहते—तुम्हारा मार्ग भयशून्य हो। हमारी एक यह प्रार्थना है कि तुम आज भर अयोध्या में रह जाओ, हम और तुम्हारी माता एक दिन यह चन्द्रमुख अच्छी तरह देख लेंगे और तुम्हारे संग एकत्र बैठ कर भोजन कर लेंगे।"

रामचन्द्र ने प्रतिज्ञा की थी कि आज ही वन को जायँगे, इस लिये उन्होंने राजा के अनुरोध की रक्षा नहीं की। कैकेयी ने जो यह कहा था कि—"हे राम, तुम्हारे शीघ्र वन न जाने पर राजा स्नान, भोजन न करेंगे।" सम्भवतः राजा ने इसी मृत्युतुल्य दारुण कथा से मन में अत्यन्त कष्ट पा कर रामचन्द्र के साथ एकत्र भोजन करने की व्यग्रता दिखाई थी। राम-

चन्द्र ने यह स्वीकार नहीं किया । वृद्ध राजा केवल सात दिन और जीवित रहे, इस बीच में उन्होंने कुछ आहार किया हो यह नहीं विदित होता ।

इसके बाद रामचन्द्र ने कैकेयी के दिये हुये वल्कल वस्त्रों को धारण कर भिक्षुक का वेश बनाया । राजा भिक्षुक पुत्र को आलिङ्गन करके रोते रोते मूर्च्छित होकर गिर पड़े । वृद्ध मन्त्री लोग और अधिक सह नहीं सके । वे तीव्रभाषा में कैकेयी को धिक्कार देने लगे । सुमन्त्र ने हाथ पर हाथ पटक कर, ओठों को दाँतों से पीस कर और सिर को इधर उधर फिरा कर कैकेयी को पतिघातिनी और कुलनाशिनी सम्बोधन कर के गाली दी और कहा "जो महाराज पर्वत के समान अटल थे वे बालकों के समान बिलख रहे हैं । हे देवि, क्या यह देख कर तुम्हें सन्ताप नहीं होता ?"—

"भर्तु रिच्छा हि नारीणं पुत्रकोट्या विशिष्यते ।"

'रमणियों के लिये पति की इच्छा करोड़ पुत्रों से भी अधिक माननीय है " तुम देवतुल्य स्वामी का वध करने के लिये खड़ी हुई हो ?" वशिष्ठ ने कहा:—

"नह्यदत्तां महीं पित्रा भरतः शास्तुमिच्छति ।
त्वयि वा पुत्रवद्वस्तु यदि जातो महीपतेः ॥
यद्यपि त्वं क्षितितलाद्गगनं चोत्पतिष्यसि ।
पितृवंशचरित्रज्ञः सोऽन्यथा न करिष्यति ॥"

"यदि भरत दशरथ से पैदा हुए हैं तो चाहे तुम पृथ्वी पर से आकाश में उड़ जाओ किन्तु पितृवंश के चरित्र को अच्छी तरह जाननेवाले वे कभी राज्य ग्रहण नहीं करेंगे ।"

कैकेयी ने असमञ्ज का उदाहरण देकर राजा दशरथ का तिरस्कार किया इससे राजा उदास होकर अश्रुपात करने

लगे। महाराज की इस दशा से व्यथित होकर महामती सिद्धार्थ ने कैकेयी के दिये हुए असमञ्ज वाले उदाहरण के भ्रम को अच्छी तरह दिखला दिया। इस वितण्डावाद से राजमहल व्याकुल हो उठा। किन्तु रामचन्द्र उन सब सुहृदों और आत्मीय जनों के प्रयत्न से अपने प्रण से ज़रा भी विचलित नहीं हुए और बारंबार राजा से बिदा माँगने लगे। जब भ्राता और स्त्री के संग रथ पर चढ़कर उन्होंने वन का रास्ता लिया तब अयोध्यावासी उनके आगे और पीछे उचक उचक कर व्यग्रता प्रगट करते और अश्रु गिराते हुए उनके रथ के साथ साथ जाने लगे। इस शोकाकुल जनसमूह के बीच में उन्मत्त की तरह नंगे पैरों महाराज दशरथ दौड़े हुये आये। उनके साथ कौशल्या भी जिसके वस्त्रों में भूमि पर लटकने से धूल लग रही थी रोती चिल्लाती हुई आई। जिनके मार्ग में चलने पर रथ, पालकी, हाथी, घोड़ों और फौज का जमघट होता था उन्हीं चक्रवर्ती महाराज दशरथ को व्यथित प्रजा पास खड़ी हुई इस उन्मत्त अवस्था में देख रही थी किन्तु उसे उनको रोकने की हिम्मत न हुई। बछड़े के लिये जैसे गाय छूट जाती है वैसे ही राजा और रानी दौड़ते फिरते थे; 'हा! राम!!' 'हा! राम!!' कहते हुए अश्रुधाराकुल नेत्रों से वे मार्ग में कंकरों के ऊपर होकर चलने लगे। रामचन्द्र का आलिङ्गन करने के लिए राजा भुजा उठाकर "रथ रोको" "रथ रोको" कहने लगे। रामचन्द्र ने सुमन्त्र से कहा, "हम इस दृश्य को नहीं देख सकते, हे सुमन्त्र, तुम इस रथ को शीघ्र ले चलो"।

अब रथ दिखाई नहीं पड़ता था। राजा धूलरूपी शैया पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े और प्रजा हाहाकार करने

लगी। होश में आने पर दशरथ ने देखा कि उनकी दाहिनी तरफ कौशल्या और बाँई तरफ कैकेयी उपस्थित हैं: उन्होंने कैकेयी से कहा, "हमने पवित्र अग्नि को साक्षी करके तुम्हारा पाणिग्रहण किया था, आज तुमको परित्याग किया, अब आज से तुम हमारी स्त्री नहीं।" फिर करुणकण्ठ से बोले. "हे द्वारपालो, हमें शीघ्र रामचन्द्र की माता कौशल्या के महल में पहुंचा दो, हमें अन्यत्र सान्त्वना न मिलेगी।" दो पुत्रों और राजबधू के वियोग से श्मशान-तुल्य महल में जा कर राजा बालकों के समान फूट फूटकर रोने लगे। रात में दशरथ को कुछ नींद आ गई किन्तु आधी रात के समय जागकर कौशल्या से बोले, "हम तुमको देख नहीं सकते. रामचन्द्र के रथ के पीछे हमारी दृष्टि मारी गई और हमें अब भी कुछ नहीं दिखाई पड़ता। तुम अपने हाथों से हमें स्पर्श करो।"

छैः दिन बाद सुमन्त्र सूना रथ लेकर वापस आये। रथ रामचन्द्र को लेकर गया था, रथ में रामचन्द्र को न देखकर अयोध्यावासियों के हृदय विदीर्ण हुए। सुमन्त्र ने देखा कि अयोध्या की हरित और श्यामल वृक्षावली मानो म्लानमुख से खड़ी हुई है; फूल गुच्छों पर लगे ही लगे सूख गये हैं. पत्तों में लगे अंकुर और कलियों का रंग फीका पड़ गया है; पक्षी अपने पंखों को सिकोड़कर चुपचाप घोंसलों में बैठे हैं और मूलबद्ध होने के कारण वृक्ष रामचन्द्र के संग न जा सके किन्तु उनकी शाखाएं और पत्ते मानो उसी मार्ग की ओर मुंह फैलाये हुए हैं। महलों की छतों और खिड़कियों में बैठी हुई अयोध्यावासिनियों के सुन्दर चक्षु, खाली रथ देख-कर बारंबार अश्रुजल से व्याकुल होने लगे। "राम को कहाँ

छोड़ आये हो''—यह कह कर प्रजा सजल चक्षुओं से सुमन्त्र से प्रश्न करने लगी। कुछ भी उत्तर न देते हुए अश्रुपूर्ण नेत्रों से सुमन्त्र राजा के पास आ उपस्थित हुए। राजा उनकी आवाज सुनते ही मूर्च्छित हो गये। रानियाँ रो रोकर कहने लगीं, "तुम्हारे प्रिय पुत्र रामचन्द्र का संवाद लेकर सुमन्त्र आये हैं, तुम उनसे कुछ क्यों नहीं पूछते ?"

कुछ स्वस्थ होकर दशरथ ने रामचन्द्र के सब समाचार सुने और बोले, "हाथी के बच्चे की तरह धूल में लिपटे हुए रामचन्द्र या तो झरने के पास कहीं पड़े होंगे, या काठ अथवा पत्थर के टुकड़े का सिराहना लगाकर रात्रि व्यतीत करते होंगे और प्रातःकाल धूल-धूसरित शरीर से बनफलों की खोज में घूमते होंगे।" राजा और कुछ नहीं बोले, लगातार अश्रु विसर्जन करते हुए उन्होंने सुमन्त्र से कहा, "हमें राम के निकट शीघ्र ले चलो, हम राम के बिना एक घड़ी भी नहीं जी सकते; हमारा काल आ पहुंचा है इससे बढ़कर दुःख क्या होगा कि हम ऐसे बुरे समय में भी रामचन्द्र के इन्दीवर मुख का दर्शन न कर सकें।"

कौशल्या ने रामचन्द्र के लिए अनेक विलाप किये, इस समय उसने हृदय में बड़ा कष्ट पाकर राजा से दो एक कटु-वचन कहे। राजा अपने अपराध को जितना स्वयं जानते थे, उतना और कोई नहीं जानता था। कौशल्या के कटु-वचन सुनकर वे निःसहाय की तरह चारों ओर देखने लगे और रोते हुए हाथ जोड़कर कौशल्या से क्षमा माँगने लगे। तब धर्मप्राण साध्वी कौशल्या उनके चरणों में लोट गई और अपना अपराध क्षमा कराने के लिए बारंबार प्रार्थना करने लगी। आराम मिलने पर महाराज को कुछ नींद आ गई।

उस समय सूर्यनारायण मन्दरश्मि होकर आकाश में छिप गये थे और निशीथिनी (रात्रि) ने निद्रा को अग्रदूती स्वरूप भेज कर अयोध्यापुरी के क्षत-विक्षत हृदय को अपने स्नेहरूपी आँचल से ढक लिया था।

थोड़ी देर बाद दशरथ की नींद खुली; भारी दुःख में पड़ कर ही लोग तत्वज्ञान प्राप्त करते हैं । हृदय में अमावस्या की रात्रि के समान शोक, निराशा या पश्चात्तापरूपी घोर अन्धकार आच्छादित हुए विना वह ज्ञान नहीं आता । शोक-सन्तप्त दशरथ ने आज सात दिन तक उत्कट मृत्यु-यातना सही, आज उनके ज्ञानचक्षु खुल गये; उन्होंने अपने कर्म का फल प्रत्यक्ष देख लिया । इस कष्ट भोगने के लिए वे स्वयं उत्तरदाता हैं, आज किसने इस प्रकार उन्हें चुपचाप समझा दिया? उन्होंने कौशल्या से कहा, "आम का पेड़ काटकर और पलाश की जड़ में जल सींचकर मूर्ख लोग अन्त में फल न पाकर आश्चर्य करते हैं; पलाश के फूल से आम का फल नहीं होता; हमने अपने कर्म द्वारा इस विपत्ति को बुलाया है और आज स्पष्ट देखते हैं कि हमने जैसा पेड़ लगाया था उसीसे यह विषमय फल उत्पन्न हुआ है ।" इसके अनन्तर नेत्रों में जल भरकर राजा गद्गद कण्ठ से धीरे धीरे वही पुरानी बात कहने लगे ।

उस समय वर्षाऋतु थी, गड्ढों और झरनों का जल मार्ग छोड़कर बह रहा था, पक्षी अपने पक्षपुटों से घन घन करते हुए जल की बूंद गिराकर फिर कुछ काल के लिए स्थिर होकर बैठ गये थे; सन्ध्या के समय झिल्लियों की झन-कार और धीरे धीरे जल विन्दुओं के निपात के शब्द से वन-स्थली गूंज रही थी । पहाड़ों के झरनों का जल गेरू के संयोग

से विचित्र वर्ण धारण करता हुआ सर्प के समान वक्रगति से प्रवाहित हो रहा था। सुन्दर मेघमाला आकाश में चारों ओर अपनी छटा दिखा रही थी। ऐसे अत्यन्त सुखदायी वर्षाकाल में एक दिन सन्ध्या के समय अविवाहित युवक दशरथ सरयू के किनारे घने बन में शिकार खेल रहे थे। उस समय एक ऋषि का पुत्र झरने के जल से घड़ा भर रहा था। दशरथ ने मन में उसे हाथी की चिंघाड़ समझकर उसी शब्द का लक्ष्य करके एक तीक्ष्ण बाण छोड़ा। किन्तु एक तड़फड़ाते हुए मनुष्य की आवाज़ सुनकर भयभीत दशरथ ने वहाँ जाकर एक मर्मविदारक दृश्य देखा। कलसे का जल गिर गया है, जटा धूल से लिपट रही है, रुधिर और धूल से सने हुए शरीर में बाण बिधा हुआ दीन बालक जल में पड़ा हुआ है:—

"पांशुशोणितदिग्धाङ्गं शयानं शल्यवेधितम्।
जटाजिनधरं बालं दीनं पतितमम्भसि॥"

यह बालक अन्ध-ऋषि मिथुन के जीवन का आधार था। वे उस बालक की आर्तवाणी और सूखे पत्तों का चरमर शब्द सुनकर चकित रह गये और यही समझा कि वह जल ला रहा है। जब दशरथ उन ऋषि और उनकी पत्नी के पास पहुंचे तो ऋषि ने बड़े प्रेम से कहा:—"हे पुत्र, हम समझते हैं तुम जल में क्रीड़ा करते थे, हम तुम्हारे लिए कितने व्यस्त हो रहे हैं"।

"त्वं गतिस्त्वगतीनाञ्च चक्षुस्त्वं हीनचक्षुषां।"

"तुम गतिहीनों की गति और चक्षुहीनों के चक्षु हो।"

तब भयभीत राजा ने रुके हुए कण्ठ से कहा:—

"क्षत्रियोऽहं दशरथो नाहं पुत्रो महात्मनः"।

"मैं दशरथ नाम का क्षत्रिय हूं । हे महात्मन्, मैं आपका पुत्र नहीं हूं ।"

इसके बाद किस प्रकार बालक की हत्या की थी यह सब आर्तस्वर में वर्णन कर वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये । जब ऋषि के आदेशानुसार राजा उन्हें मृत बालक के समीप ले गये उस समय उन्होंने जो विलाप किया आज दशरथ के रोम रोम से वही विलाप की निदारुण बातें प्रतिध्वनित होती थीं । अन्ध-ऋषि ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से पुत्र का देह स्पर्श करके कहा—"हे पुत्र, तू आज हमारा अभिवादन क्यों नहीं करता ? तू क्या इस समय हम से रूठ गया है ? रात्रि व्यतीत होने पर अब हम किसके प्रिय और मधुर स्वर से शास्त्र की आवृत्ति सुनकर अपना प्राण शीतल करेंगे ? अब कौन सन्ध्यावन्दन के बाद अग्नि जलाकर हमें गरम जल से स्नान करावेगा; और कौन कन्द-मूल-फल लाकर प्रिय अतिथि के तुल्य हमें आहार करावेगा ? यदि हम तुझे बुरे लगते हैं तो अपनी इस धर्मशील जननी की ओर तो तू एक बेर आंख उठाकर देख ।"

मिथुन ऋषि और उनकी पत्नी ने पुत्रशोक में पुत्र के साथ ही अग्नि में प्राण विसर्जन कर दिये । बहुत वर्षों के बाद यह कर्म अनुष्ठित हुआ है, आज पुत्रशोक, नहीं नहीं, यही मालूम पड़ता था कि उसी कर्म का फल दशरथ के सामने आ उपस्थित हुआ ।

थोड़ी देर में दशरथ के हृदय की व्यथा बढ़ चली । वे रोने लगे और कौशल्या से बोले, "हमें स्पर्श करो, हमें नेत्रों से दिखाई नहीं पड़ता ।" इसके अनन्तर प्रलाप के समान वे रामचन्द्र की बात कहने लगे, "एक बार यदि राम आकर

हमें स्पर्श करते, तो उनका वह स्पर्श महौषधि के समान हमें प्राणदान करता।" उन्होंने फिर कहा,—

"ततस्तु किं दुःखतरं यदहं जीवितक्षये।
नाहं पश्यामि धर्मज्ञं रामं सत्यपराक्रमम्॥"

"इससे बढ़कर दुःख और क्या होगा कि मरने के समय भी हम धर्मज्ञ और सत्यसन्ध रामचन्द्र को न देख सकें।" रामचन्द्र चौदह वर्ष में वन से लौटेंगे, जो उन पद्म-पत्र-नेत्र, सुन्दर नासिकावाले और सुन्दर कुण्डल धारण किये हुए हमारे रामचन्द्र का मुखचन्द्र देखेंगे वे देवता हैं, हमारी प्रारब्ध में उन्हें और देखना नहीं बदा है।" आधी रात के समय इस प्रकार विलाप करते करते और "हा पुत्र" "हा राम" कहते कहते महाराज दशरथ ने प्राण त्याग दिये।

रात बीतना ही चाहती थी। उस समय राजपुरी में बीणा और पखावज बजने लगीं और पक्षी भी उस ललित कोलाहल में योग दे रहे थे। सोने के कलसे में चन्दन से सुगन्धित जल राजा के स्नान करने के लिए लाकर यथास्थान रक्खा हुआ था। बन्दीजन राजा की स्तुति में गीत गाने लगे। पर अब राजा कहाँ? वे अयोध्या छोड़कर चल दिये। उनके व्यथित हृदय ने सदा के लिए शान्ति लाभ की।

वरदान के मामले में दशरथ की विशेष स्त्रैणता नहीं दिखाई पड़ती। वे सत्यसन्ध थे, सत्य की रक्षा करने में उन्होंने प्राण त्याग किया। कैकेयी के वर माँगने के साथ ही राजा का उस पर जो प्रेम था वह सब दूर हो गया। उन्होंने उसे परित्याग कर दिया। वे अनायास ही कैकेयी को ताड़ना देकर रामचन्द्र को राज्य दे सकते थे किन्तु उन्होंने धार

स्त्रैणता का अपवाद अपने सिर लेकर वस्तुतः सत्य ही की रक्षा की थी। उन्होंने कैकेयी का "कुलनाशिनी" "नृशंसे" प्रभृति दो एक न्यायसंङ्गत कटुवाक्य कहने पर भी मर्यादा का लंघन कर अन्यायपूर्वक कभी गाली-गलौज का प्रयोग नहीं किया। कैकेयी की माता ने अपने स्वामी अश्वपति को मार डालने की चेष्टा की थी, सुमन्त्र ने प्रसङ्गवश यह बात कहडाली थी किन्तु दशरथ ने अपनी पत्नी के मातृकुल किम्वा अन्य किसी प्रकार से असङ्गत भाषा में उसपर वाक्य-वाणों की वर्षा नहीं की। दशरथ के चरित्र में एक राजोचित मर्यादा दिखाई पड़ती है, अतएव वाल्मीकि ने उनको जो ये कई विशेषण दिये हैं वे हमें बहुत उचित प्रतीत होते हैं।—

"स सत्यवाक्यो धर्मात्मा गाम्भीर्यात् सागरो यथा।
आकाश इव निष्पङ्कः —"

रामचन्द्र।

वाल्मीकि ने रामचन्द्र का एक बड़ा ही विशाल चित्र अङ्कित किया है। तुलसीदास और कृत्तिवास ने रामचन्द्र की श्यामसुन्दर और पल्लव स्निग्ध मूर्ति की रक्षा करके उनके वीरत्व और वैराग्य की महिमा घटा दी है। रामचन्द्र के वनवास के सम्बन्ध में विलाप करते हुए कौशल्या ने कहा था कि:—

"महेन्द्रध्वजसङ्काशः क नु शेते महाभुजः।
भुजं परिघसङ्काश मुपाधाय महाबलः॥"

"इन्द्र की ध्वजा के समान उन्नतदेह रामचन्द्र अपने परिघ* के तुल्य कठिन बाहु का सहारा लेकर किस प्रकार शयन करेंगे?"

कौशल्या ने पुत्र के बाहु को परिघ के समान कहने में कुछ भी सङ्कोच नहीं किया और भरत ने रामचन्द्र की तृणशैया को देखकर कहा था कि "इंगुदी के वृक्ष के नीचे की कठिन भूमि रामचन्द्र की भुजा की रगड़ से मर्दित हो गई है, यह हम पहिचानते हैं।" अतएव जिन लोगों ने "† नवनी जिनिया तनु सुकोमल।" किम्वा—"‡ फूलधनु हाते राम

---

*परिघ=लौह लगुड़ अर्थात् फौलाद के समान।

† "नवनीत के समान अत्यंत कोमल शरीरवाले।"

‡ "फूलों का धनुष हाथ में लिये हुए रामचन्द्र वन वन में घूमते थे।"

वेड़ान कानने" प्रभृति भावों के वर्णन से रामचन्द्र को फूलों का अवतार सिद्ध करना चाहा है उनके चित्र के साथ महर्षिअङ्कित रामचन्द्र का हर जगह मेल नहीं खायगा।

रामचन्द्र का विशाल वक्षस्थल और कन्धों का सन्धिस्थान मांसल था इसलिए कवि ने उन्हें "*गूढ़जत्रु" की उपाधि दी थी, वे "समः समविभक्ताङ्गः" थे, उनकी विशाल भुजाएं गोल और सुडौल थीं और उनमें पंद्रह वर्ष की अवस्था में महादेव जी के धनुष तोड़ने की सामर्थ्य थी। वे जैसे महामूर्ति थे वैसे ही महागुणशाली भी थे। वे अपने और दूसरों के दोषों को जानते थे और आश्रितों के प्रतिपालक थे। स्वजनों और स्वधर्म की रक्षा करते और नित्य संयम से रहते थे। वे पृथ्वी की भाँति क्षमाशील और क्रुद्ध होने पर देवताओं तक को भय देनेवाले थे। इन्हीं असामान्य गुणों पर प्रेम का फुवारा छूटने से उनका चरित्र अत्यन्त मधुर और कमनीय हो गया है। यदि कोई क्रुद्ध होकर उन्हें दुर्वचन कहता तो वे—"नोत्तरं प्रतिपद्यते" उसका उत्तर नहीं देते थे।

"न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया।"

उदार स्वभाव होने के कारण उन्हें दूसरों के सैकड़ों अपकारों की बात भी स्मरण नहीं रहती थी। वे वाग्मी स्पष्टभाषी थे वे शीलवृद्ध, ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध पुरुषों पर सदा पूर्ण रूप से श्रद्धा रखते थे। जब कार्यवश रामचन्द्र नगर के बाहर जाते तो:—

*जत्रु=कण्ठास्थि, गूढ़जत्रु= जिसके कण्ठ की अस्थि छिपी हुई हो।

"—पुनरागत्य कुञ्जरेन रथेन वा।
पौरान् स्वजनवन्नित्यं कुशलं परिपृच्छति॥"

"नगर में फिर लौटने पर वे हाथी या रथ पर चढ़े हुए ही पुरवासियों से स्वजनों की भांति आदरपूर्वक कुशल-मङ्गल पूछते थे।"

इन राजकुमार को महाराज दशरथ ने जब युवराज-पद देने की इच्छा प्रगट की उस समय सारी अयोध्या में चारों ओर हर्ष ही हर्ष की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। सब प्रजा ने एकस्वर से कहा "कि अमित तेजस्वी रामचन्द्र के अभिषेक के समान आनन्द देनेवाली हमारे लिए और कोई वस्तु नहीं है।"

अभिषेक की बात सुनकर रामचन्द्र बड़े ही प्रसन्न हुए। उन्हें एक समय हम प्रफुल्लित बदन से अभिषेक की बात कहते हुए कौशल्या के समीप देखते हैं फिर देखते हैं कि लक्ष्मण को गले लगाकर कहते हैं,—

"जीवितञ्चापि राज्यञ्च त्वदर्थमभिकामये।"
'मैं जीवन और राज्य की तुम्हारे लिए ही इच्छा करता हूं।'

दशरथ ने कैकेयी से कोपभवन में उसका क्रोध शान्त करने के लिए बड़ी व्यग्रता पूर्वक कितनी ही बातों के साथ एक यह भी कही थी कि, "अवध्यो वध्यतां कः?" तुम्हारी प्रसन्नता के लिए किस "अवध्य का वध" करना होगा? इस कथन को हम भावी अनर्थ का पूर्वाभास मान सकते हैं। वास्तव में निर्दोष व्यक्ति को मृत्युतुल्य ही दण्ड मिला—यह शोक पूर्ण कथा रामायण महाकाव्य में अश्रुओं के अक्षरों से लिखी हुई है।

प्रातःकाल सुमन्त्र महाराज की आज्ञा से रामचन्द्र को बुलाकर कैकेयी के महल में ले गये। रामचन्द्र और सीता ने अभिषेक के निमित्त रात्रि को उपवास किया था। रामचन्द्र ने सीता से कहा, "आज हमारा अभिषेक है, माता कैकेयी के संग महाराज हमारे मङ्गल के लिए कोई शुभ अनुष्ठान करेंगे, तुम प्यारी सखियों सहित कुछ काल तक यहीं हमारी प्रतीक्षा करना, हम अभी आते हैं।"

रामचन्द्र शीघ्रगामी चार घोड़ों के व्याघ्रचर्माच्छादित सुन्दर रथ पर बैठ कर चले। मार्ग में रामचन्द्र ने देखा कि स्थान स्थान पर अभिषेक के लिए बड़ी बड़ी तैयारियाँ हो रही हैं और गङ्गा-यमुना के सङ्गम से लाये हुए जल के कलश, समुद्र के मुक्ता, उडम्बर पीठ, चतुर्दन्त सिंह, पांडुर वृष, अनेक तीर्थों के जल, अलङ्कृत वेश्याएं, अनेक प्रकार के पक्षी और मृग और व्याघ्रचर्म प्रभृति विचित्र विचित्र सामग्रियाँ अभिषेक-मण्डप में लाई जा रही हैं। मार्ग में सैकड़ों जाली झरोखों को पार करके अयोध्यावासिनी नारियों की दृष्टि उन्हींपर जा कर पड़ती थी। सड़कों पर जल का छिड़काव हो रहा था और फूल बिखरे हुए थे तथा लोग जहाँ तहाँ आनन्द में उन्मत्त होकर उन्हींका गुणगान करते थे। अनेक ध्वजा-पताकाओं से अपूर्व शोभा को प्राप्त दीपावली और वृक्षावली की सुन्दर माला धारण किये हुए और अनेक शुभ्र देवालयों से देदीप्यमान अयोध्यापुरी आज एक नवीन शोभा धारण करके एक सुचित्रित चित्र के समान अपनी अनुपम छटा दिखा रही थी।

पीताम्बर धारण किये हुए अभिषेक-व्रतोज्ज्वल राज-कुमार आनन्द की साक्षात् मूर्ति बन कर पिता के पास गये

और उन्हें प्रणाम कर के खड़े हो गये। राजा उदास मुख से कैकेयी के पास बैठे थे। वे केवल 'राम' शब्द मात्र उच्चारण करके अधोमुख होकर रुदन करने लगे और उनके रुद्धकण्ठ से और कोई शब्द नहीं निकला। उनके अश्रुपूर्ण लज्जित चक्षुओं को रामचन्द्र की ओर टकटकी लगाकर देखने का साहस नहीं हुआ।

घोर अन्धकाराच्छन्न मार्ग में चलते चलते जैसे सर्प पर पैर पड़ जाने से पथिक चौंक उठता है वैसे ही रामचन्द्र राजा की इस अचिन्तितपूर्व दशा को देखकर सहम गये। राजा का विशाल हृदय बड़े जोर से धड़क रहा था, वे लम्बी लम्बी साँसें छोड़ रहे थे और उनके व्याकुल नैन जलभार से ढक गये थे। रामचन्द्र ने हाथ जोड़कर कैकेयी से कहा कि, "हे देवि, यदि अनजान में हमसे पिता के चरणकमलों में कोई अपराध बन पड़ा हो तो "त्वमेवैनं प्रसादय" तुम महाराज को हमपर प्रसन्न करा दो। पिता का कोपभाजन होकर मैं क्षण भर भी जीना नहीं चाहता। महाराज को कोई कायिक अथवा मानसिक पीड़ा तो नहीं है ? भरत और शत्रुघ्न दूर हैं, उनका अथवा हमारी माताओं में से तो किसी का अशुभ नहीं हुआ है। अथवा हे देवि, आपही ने अभिमान में कोई ऐसी बात तो नहीं कह डाली जिससे महाराज ऐसे तड़फ रहे हैं?"

कैकेयी ने दृढ़ता पूर्वक कहा, "राजा को कोई व्याधि नहीं है और न उन्हें कोई दुःख ही है। हाँ, राजा के मन में एक वासना है किन्तु तुम्हारे भय से उसे वे नहीं कहते, तुम प्रिय हो इससे तुम्हें अप्रिय वचन कहने के लिए उनके मुँह से आवाज नहीं निकलती।

"प्रियं त्वामप्रियं वक्तुं वाणी नास्य प्रवर्तते ।"

चाहे शुभ हो चाहे अशुभ, यदि तुम राजा की आज्ञा पालन करने की प्रतिज्ञा करो तभी वे कहेंगे, नहीं तो नहीं ।" रामचन्द्र दुःखित होकर बोलेः—

"अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः ।
अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके ।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं मज्जेयमपि चार्णवे ॥"

"हे देवि, तुम्हें हमको ऐसी बातें कहना उचित नहीं । मैं राजा की आज्ञा से इसी समय अग्नि में प्राण विसर्जन कर सकता हूं, विष खा सकता हूं और समुद्र में डूब सकता हूं ।"

"हमें महाराज की आज्ञा सुनाओ, हम उसे पालन करेंगे हम प्रतिज्ञा करते हैं. हमारा वचन व्यर्थ नहीं जायगा ।"

अभिषेक के निमित्त उन्हीं उपवासी और पवित्र पीताम्बर-धारी तरुण युवक को निठुर हृदय होकर कैकेयी ने वनवास की आज्ञा इस प्रकार सुनाई, "भरत इस धन-धान्य-शालिनी अयोध्यापुरी के राजा बनेंगे । तुम्हारे अभिषेक के निमित्त आई हुई सब सामग्री से भरत का अभिषेक किया जायगा और तुमको आज ही जटा-चीर धारण कर चौदह वर्ष के लिए वन को जाना होगा । राजा हमें ये ही दो वर देकर अब साधारण व्यक्तियों की भाँति विलाप कर रहे हैं ।"

रामचन्द्र इन मर्मच्छेदी मृत्युतुल्य वचनों को सुनकर एक मुहूर्त मात्र निश्चल खड़े रहे, फिर अविकृत चित्त से बोले,

"एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहं त्वितः ।
जटाचीरधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥"—

"ऐसा ही हो, मैं राजा की आज्ञा पालन करने के लिए वन में वास करूँगा। मैं यह जानना चाहता हूं कि महाराज मेरा पूर्ववत् आदर क्यों नहीं करते ? हे देवि, तुम मुझपर क्रोध मत करो। मैं तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि मैं जटाचीर धारण करके वन में रहूंगा। तुम मुझपर प्रसन्न रहो। मेरे मन में एक यह मिथ्या कष्ट हो रहा है कि पिता ने स्वयं भरत के अभिषेक की बात क्यों न कही; भरत के इच्छा करने ही पर हम राज्य, धन, प्राण, सीता सभी कुछ उन्हें दे सकते हैं! पिता की आज्ञा से हम उन्हें राज्य देंगे, इससे और उत्तम क्या होगा ? हे देवि, आप महाराज को आश्वासन दीजिये, वे क्यों नीचा मुख किये धीरे धीरे अश्रु विसर्जन कर रहे हैं ? तेज घुड़सवारों को इसी समय भेजकर भरत को मामा के यहाँ से बुला लो।" इन बातों से प्रसन्न होकर कैकेयी रामचन्द्र को शीघ्र वन भेजने के लिए चेष्टा करने लगी। वह सोचने लगी कि कहीं पीछे से रामचन्द्र का मन ही बदल जाय अथवा दशरथ के मुख से आज्ञा सुने बिना रामचन्द्र वन को न जायँ, इस आशङ्का से कैकेयी जिस प्रकार चाबुक लगाकर घोड़ों को हाँकते हैं, उसी प्रकार रामचन्द्र को वन भेजने के लिये ताड़ना करने लगी—

"कशयेव हतो वाजी वनं गन्तुं कृतत्वरः।"

"अच्छा रामचन्द्र, सुनो, हम नहीं चाहतीं कि तुम्हारे जाने में विलम्ब हो, लज्जा के मारे स्वयं राजा कुछ कहते नहीं इसलिए मन में तुम कुछ ख्याल मत करना।—

"यावत्त्वं न वनं यातः पुरादस्मादतित्वरन्।
पिता तावन्न ते राम स्नास्यते भोक्ष्यतेऽपि वा॥"

"जब तक तुम महाराज से शीघ्र बिदा लेकर वन को न जाओगे तब तक ये निद्रा, भोजन आदि कुछ भी न करेंगे ।"

इस बात को सुनकर महाराज दशरथ सुनहरी पलग पर से अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । सौम्यमूर्ति और विषयनिस्पृह रामचन्द्र ने उन्हें उठाकर पलंग पर लिटा दिया और कैकेयी को शङ्कित देखकर दुःखित और दृढ़ स्वर से बोले,—

"नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे ।
विद्धि मां ऋषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममाश्रितम्" ॥

"हे देवि, मैं स्वार्थी होकर इस लोक में नहीं रहना चाहता । मुझे ऋषियों के समान विमल धर्म में स्थित समझो" ।

पिता यदि न भी कहें तो मैं तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य कर चौदह वर्ष तक वन में बास करूंगा । माता कौशल्या और सीता से बिदा लेने में जितनी देर लगे उतनी देर तक और ठहरो" ।

यह कह अचेत पिता और कैकेयी के चरणों में वन्दना करके रामचन्द्र धीरे धीरे लौटने लगे । चार घोड़ों का रथ उनके लिए बाहर खड़ा था पर वे उस मार्ग से नहीं गये । उत्कण्ठित अयोध्यावासी आग्रहपूर्वक उनके दर्शन करने की लालसा कर रहे थे किन्तु रामचन्द्र उनके नयन-पथ को छोड़ कर दूसरे मार्ग से जाने लगे । स्वर्ण छत्र और पंखा लिये हुए जो सेवक उनके पीछे पीछे चल रहे थे उन्हें रामचन्द्र ने बिदा किया और अभिषेक मंडप में जो विचित्र विचित्र सामग्रियाँ रक्खी हुई थीं उनकी ओर केवल एक वार दृष्टिपात करके अपने नेत्रों को हटा लिया । सिद्ध पुरुष के समान उनके मुख-मण्डल पर किसी प्रकार की अधीरता नहीं दिखाई पड़ी ।—

"धारयन् मनसा दुःखमिन्द्रियाणि निगृह्य च।"

"इन्द्रियों को निग्रह करके और मन में दुःख को धारण करके धीरे धीरे माता के महल की ओर जाने लगे।"

किन्तु एक हाथ पर चन्दन छिड़कने और दूसरे हाथ में तलवार लगने पर जो दोनों को समान समझते हैं, रामचन्द्र उस प्रकार के योगी नहीं थे। माता के पास पहुँच कर उनके दुःख से रुके हुए हृदय से लम्बी लम्बी साँसें निकलने लगीं और उन्होंने कम्पित स्वर से कहा,—

देवि नूनं न जानीषे महद्भयमुपस्थितं।"—

"हे देवि, तुम नहीं जानती हो कि बड़ा भारी भय उपस्थित हुआ है।"

माता ने आहार के लिए रामचन्द्र को जो उत्तमोत्तम पदार्थ दिये और उनके बैठने के लिए जो बहुमूल्य और सुन्दर आसन बिछाया उसे देखकर रामचन्द्र बोले, "अब हमें मुनियों के समान कसैले कन्द-मूल-फल खाकर जीवन धारण करना होगा, अब इन उत्तमोत्तम पदार्थों की हमें और आवश्यकता नहीं है। अब हमें कुशा के आसन की ज़रूरत है, अब हम इस बहुमूल्य आसन के योग्य नहीं हैं।" कैकेयी से महाराज ने जो प्रतिज्ञा की थी वे सब बातें कहकर रामचन्द्र ने माता से वन जाने की आज्ञा माँगी। उस समय शोकाकुल जननी विलख विलख कर कहने लगी, "स्त्रियों के लिये सब से बड़ा सुख पति का प्रेमपात्र होना है पर हमारे भाग्य में वह नहीं बदा है। कैकेयी के नौकर चाकर हमें सदा तंग करते रहते हैं, यदि कोई दासी हमारे यहाँ आकर रहती है तो कैकेयी के परिजनों को देख कर वह

भयभीत होती रहती है। हे वत्स, तुम्हारा मुख देखकर मैं यह सब सहती रही हूं। यदि तुम वन को चले जाओगे तो मैं कहाँ रहूंगी? देखो, गाय भी अपने बछड़ों के पीछे पीछे वन को चली जाती हैं, इसलिये तुम भी हमें अपने संग ले चलो।" इन मर्मच्छेदी कातर वचनों को सुनकर रामचन्द्र अनेक प्रकार से माता को समझाने लगे और अपने अश्रुओं को रोककर अश्रुमुखी और शोकोन्मादिनी जननी से बारबार वन जाने की आज्ञा माँगने लगे। क्रोध से रक्त नेत्र हुए लक्ष्मण इस अन्यायपूर्ण आदेश के पालन के विरुद्ध अनेक युक्तियों की उद्भावना कर के हाथ में धनुष लिये पागल की तरह—

"हनिष्ये पितरं वृद्धं कैकेयासक्तमानसम्।"—

"कैकेयी में आसक्त वृद्ध पिता का मैं वध करूंगा।" प्रभृति कटुवचन कहने लगे। रामचन्द्र लक्ष्मण का हाथ पकड़कर उनका क्रोध शान्त करने का यत्न करने लगे और बड़े सौम्यभाव और प्रेम भरे मधुरस्वर से बोले:—

"सौमित्रे योऽभिषेकार्थे मम सम्भारसम्भ्रमः।
अभिषेकनिवृत्त्यर्थं सोऽस्तु सम्भारसम्भ्रमः॥"

"हे लक्ष्मण, हमारे अभिषेक के लिए जो सब सामग्री एकत्रित हुई है और जो सब तैयारियाँ हुई हैं वे सब हमारे अभीषेक की निवृत्ति के लिये हों।" इस पितृ-भक्त और विषय-निस्पृह राजकुमार के प्रेमपूर्ण किन्तु अटल संकल्प ने इस महाशोक और क्रोध के अभिनयक्षेत्र* में एक असामान्य

*अर्थात् लक्ष्मण के हृदय में।

वैराग्य और वीरत्व की श्री जागृत कर दी। कौशल्या ने रामचन्द्र से कहा, "राजा जैसे तुम्हारे पूज्य हैं वैसे मैं भी तुम्हारी पूज्य हूं, मैं तुम्हें वन नहीं जाने दूंगी, तुम माता की आज्ञा उल्लंघन कर कैसे वन को जाओगे ?" लक्ष्मण बोले, "कामासक्त पिता की आज्ञा मानना अधर्म है।" रामचन्द्र ने अविचलित भाव से विनीत हो बड़े प्रेम और मधुर स्वर से माता को इस प्रकार उत्तर दिया, "कण्डू ऋषि ने पिता की आज्ञा से गोहत्या की थी, हमारे ही कुल में सगर के पुत्रों ने पिता की आज्ञा पालन करने में अपने प्राण तक दे डाले थे और परशुराम ने पिता की आज्ञा से अपनी माता रेणुका का सिर काट लिया था। पिता प्रत्यक्ष देवता हैं, उन्होंने चाहे क्रोध, चाहे काम के वशीभूत हो, चाहे और किसी कारण वचन दे दिया हो, मैं उसका विचार नहीं करूँगा, मैं उसका विचारक नहीं हूं, मैं निश्चय ही उसका पालन करूँगा।" यह कह कर धर्मभाव से प्रेरित हो रामचन्द्र रुदन करने के लिये उद्यत माता से बारंबार वन जाने की आज्ञा माँगने लगे। रामचन्द्र का आश्चर्यमय सत्सङ्कल्प देखकर कौशल्या को संतोष हुआ और उसने सैकड़ों आशिर्वादात्मक वचनों द्वारा रामचन्द्र की मङ्गलकामना करते हुए अश्रुपूर्ण कण्ठ से प्राणप्रिय पुत्र को वन जाने की आज्ञा दी।

क्षण भर पहले ही जो रामचन्द्र सीता को गले लगा कर उसके कानों में आशा की अमृत बूँदें डाल आये थे, अब वे क्या मुँह लेकर उसे दारुण संवाद सुनावेंगे ? रामचन्द्र की मानसिक दृढ़ता शिथिल हो गई, अब उनका वह सौम्य और अविकृत भाव जाता रहा, उनके मुख की कान्ति फीकी पड़ गई और श्यामल सुन्दर ललाट पर दुश्चिन्ता की रेखा अङ्कित हो गई।

सीता ने उन्हें देखते ही जान लिया कि कोई भारी अनर्थ हुआ है। उसने व्याकुल होकर रामचन्द्र से जिज्ञासा की, "आज राज्याभिषेक के समय तुम्हारे मुख पर ऐसी उदासीनता क्यों छा रही है?" ऐसे अनेक व्याकुल प्रश्नों का उत्तर देते हुए रामचन्द्र ने सीता को भावी महापरीक्षा के अर्थ उपयोगिनी बनाने के निमित्त उसे उसके उच्चकुल का स्मरण करा दिया। अहा! धर्मशील पति ने कैसा पवित्र और सुन्दर मुखबन्ध करके कैसे प्रेम और मधुरता से अपनी कथा आरम्भ की—

"कुले महति सम्भूते धर्मज्ञे धर्मचारिणि"

यह सम्बोधन सहधर्मिणी ही को मिलता है, इससे साध्वी स्त्रियों की मर्यादा सूचित होती है। वन जाने की बात सुनते ही सीता ने रामचन्द्र के संग जाने की दृढ़ अभिलाषा प्रगटी की और रामचन्द्र के साथ उसका एक अच्छा वाक्युद्ध हो गया। रामचन्द्र ने सीता को अनेक प्रकार से निषेध किया और भय दिखाया किन्तु जिस समय उस वीर वनिता ने उनकी एक न मान कर वनवासिनी होने की दृढ़ प्रतिज्ञा सूचित की और यह संकल्प प्रगट किया कि यदि संग न ले चलोगे तो आत्मघात कर डालूंगी, उस समय आपस में एक दूसरे के प्रति इस एकान्त निर्भरशील और स्निग्ध दम्पति का मिलन कैसा मधुर और कमनीय हुआ है, यह देखने ही बनता है।

जिस समय सीता के कपोलों पर निर्मल मुक्ता-विन्दुओं के समान बहते हुए आँसू रामचन्द्र के सान्त्वनापूर्ण वचनों को सुनकर एक एक करके विलीन हो रहे थे, वह दृश्य

बड़ा ही सुन्दर और मर्मस्पर्शी है। रामचन्द्र ने अश्रुपूर्णा साध्वी सुन्दरी पत्नी को आलिङ्गन कर बड़े प्रेम और मधुरता से कहा,–"हे देवि, हम तुम्हारा दुखः देखकर स्वर्ग की भी इच्छा नहीं करते; हमें तुम्हारी रक्षा करने में किसी का डर नहीं है, साक्षात् रुद्र का भी हम कुछ भय नहीं करते। तुम ही कहती थीं कि विवाह के पहले पण्डितों ने कह दिया था कि तुम स्वामी के संग वनवास करोगी, तो ऐसी दशा में तुम्हें छोड़ कर जाना हमारे लिए सम्भव नहीं है।" जो लक्ष्मण "बध्यतां बध्यतामपि" कहकर राजा के बाँधने ही की नहीं किन्तु उनकी हत्या तक करने की व्यवस्था दे चुके थे, वे रामचद्र की अटल प्रतिज्ञा और उन्हें वन जाने के लिए उद्यत देखकर बालक के समान रोते हुए बड़े भाई के चरणों में लोट गये और बोले,—

"ऐश्वर्यश्चापि लोकानां कामये न त्वया विना"

"तुम्हारे बिना मैं त्रिलोकी के राज्य की भी परवा नहीं करता।"

तब रामचन्द्र ने चरणों में लोटे हुए अश्रु-पूर्ण-चक्षु परम स्नेहास्पद लक्ष्मण को सादर उठाकर गले लगाया और अपने संग वन ले चलना स्वीकार किया। लक्ष्मण पुलकाश्रुओं को पोंछ कर वनवास के लिए उपयुक्त अस्त्रशस्त्रों से सज्जित हो कर आ उपस्थित हुए। रामचन्द्र ने भरत किम्वा कैकेयी के प्रति कोई विद्वेषसूचक वाक्य प्रयोग नहीं किया। उन्होंने सीता से कहा,—

"उभौ भरतशत्रुघ्नौ प्राणैःप्रियतरौ मम।"—

"भरत और शत्रुघ्न दोनों हमें प्राणों से भी प्यारे हैं।" कैकेयी और अन्य माताओं का उल्लेख करके उन्होंने कहा—

"स्नेहप्रणयसम्भोगैः समा हि मम मातरः"—

'हम पर प्रेम और हमारी शुश्रूषा करने में हमारी सब माताएँ समान हैं।' वन जाने के अर्थ बिदा होने के लिए रामचन्द्र महाराज दशरथ की सेवा में उपस्थित हुए, उस समय रानियों से परिवृत राजा रामचन्द्र के मुख को देख कर चित्त के आवेग को नहीं रोक सके और उन्होंने अश्रुरुद्ध कण्ठ से एक दिन और ठहरने का रामचन्द्र से इस प्रकार अनुरोध किया— 'आज हम तुमको अपनी आँखों का तारा बना कर तुम्हारे संग एकत्र भोजन करेंगे।' राजा ने बड़े विनय पूर्वक ये बातें कहीं। रामचन्द्र ने कहा, "हम माता ककेयी से प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि आज ही वन को जाँयगे, अतएव इसे हम टाल नहीं सकते।" पुनः रामचन्द्र ने बड़े आदर और विनय पूर्वक कहा, "ब्रह्मा ने जिस प्रकार अपने पुत्रों को तपस्या करने की आज्ञा दी थी, उसी प्रकार आप हमको प्रसन्न हो कर वन जाने की आज्ञा दीजिये।' दशरथ के शोक का वेग बढ़ चला और वे विह्वल होकर गिर पड़े। सुमन्त, महामात्र सिद्धार्थ और गुरुदेव वशिष्ठ कैकेयी से वितण्डावाद करने लगे और आत्मीय सुहृद और बन्धु-बान्धवों के उत्तेजित बचनों से राजमहल व्याकुल हो उठा। उस समय उस कोलाहल को चीर कर त्यागशील राजकुमार की अपूर्व वैराग्यविशिष्ट वाणी मङ्गलमय आकाशवाणी के समान सुनाई पड़ने लगी। रामचन्द्र ने हाथ जोड़ कर बार-बार यही कहा—

"न विमर्शो वसुमतो भरताय प्रदीयताम् ।"

"आप दुखीः न हों, इस राज्य को भरत को दे दें" हम सुख, राज्य किम्वा प्राण यहाँ तक कि स्वर्ग की भी इच्छा नहीं करते, हम सत्यबद्ध हैं. आपके सत्य पालन करेंगे; पिता देवताओं से भी अधिक पूज्य हैं सो हम उन पितृदेव को आज्ञा पालन करने में कुछ भी कष्ट नहीं समझेंगे। चौदह वर्ष बाद लौट कर हम पुनः आप के श्रीचरणों की वंदना करेंगे।" माताओं की ओर देख कर और हाथ जोड़ कर राजकुमार ने कहा—

"अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा मया वो यदि किञ्चन :
अपराधं तदप्याहं सर्वशः क्षमयामि वः ॥"

"यदि हमने अनजाने अथवा प्रमाद वश कोई अपराध किया हो तो आज उसे क्षमा करियेगा।" जो महाराज दशरथ का अंतःपुर पखावज और वीणा की सुमधुर ध्वनि से गूंजता था, आज वह शोकार्त रमणियों के आर्तनाद से गूँज रहा है।

इसके बाद अयोध्या की करुणा का महाद्रश्य है। युग के युग बीत गये हैं किन्तु इस अद्भुत द्रश्य सम्बन्धी शोक और करुणा अभी तक कम नहीं हुई है। धन्य वाल्मीकि की लेखनी! सहस्त्रों वर्षों से अयोध्या काण्ड के पाठक इस महाकाव्य को अश्रुओं का उपहार देते आये हैं और सहस्त्रों ही वर्षों तक यह काण्ड पाठकों के अश्रुओं से अभिषिक्त होता रहेगा। भारतवर्ष के ग्राम ग्राम में रामचन्द्र के वनवास की करुण कथा लोगों के रोम रोम में बिंधी हुई है; इस देश की राजभक्ति, पुत्रस्नेह,

जननी का आदर, पत्नी का प्रेम ये सब इसी अयोध्या काण्ड की चिरकरुण स्मृति के साथ जकड़े हुए हैं ।

जिनके मनोहर केशकलाप के ऊपर राजा-श्री-पूर्ण मुकुट-मणि देदीप्यमान् होती थी, आज उन्हीं के ललाट पर जटा-जूट छा रहा है; जिनका अङ्ग अगर, चन्दन प्रभृति सुगन्धित द्रव्यों की विलासभूमि था और जो अङ्गद* प्रभृत बहुमूल्य अलङ्कारों से अलङ्कृत रहता था—आज वे सत्यनिष्ठ राजकुमार कठोर वैराग्य धारण कर भूषण आदि को दूर कर शरीर में धूल लपेटे चल दिये ! अब कहाँ है वह सोने का पलङ्ग जिस पर सिंह चर्म बिछा हुआ शोभा दे रहा था और जिसके पलंग पोश के चारों ओर रत्नों से जड़ी हुई झालरें लटक रही थीं। वन में इंगुदी वृक्ष की जड़ और तृण व कण्टक पूर्ण गुफाएं उनकी शैया का काम देंगी और वे बनैले हाथी के समान धूल-धूसरित शरीर से प्रातःकाल उठ कर वनफलों की खोज में बाहर निकलेंगे । जिनके शुन्दर और महोन वस्त्रों के लिये जुलाहे और कारीगर रात दिन अविश्रान्त परीश्रम करते थे, आज उन्होंने कौपीन मात्र धारण कर रक्खी है । दोनों राजकुमार और राजवधू जिस समय इस प्रकार मुनियों के वेश में नगर के बाहर हुए,—

"आर्तशब्दो महान् जज्ञे स्त्रीणामन्तःपुरे तदा ।"

"उस समय स्त्रियों के अन्तःपुर में बड़ा भारी आर्तनाद हुआ ।"

बछड़ा छूट जाने पर गाय के समान रानियाँ इधर उधर भटकने लगीं और प्रजा में सन्तापसूचक हाहाकार शब्द सुनाई पड़ने लगा । इस मर्मच्छिदारक दृश्य से उन्मत्त

*भुजा पर धारण करने का एक आभूषण ।

होकर वृद्ध महाराज दशरथ और देवी कौशल्या नंगे पैरों, धूल लपेटे और वस्त्रों को भूमि पर लटकाते हुए सड़क पर दौड़ने लगे। राजाधिराज दशरथ और राजमहिषी की यह दशा देखकर प्रजा बड़ी व्याकुल हुई। रामचन्द्र बोले, "हे सुमन्त रथ को तुम शीघ्र ले चलो, हम यह दृश्य नहीं देख सकते।" प्रजा विनय पूर्वक सुमन्त से कहने लगी, —

"संयच्छ वाजिनां रश्मीम् सूत याहि शनैः शनैः।
मुखं द्रक्ष्यामो रामस्य दुर्दर्शनो भविष्यति।"

"हे सारथि, तुम घोड़ों की लगाम खींच कर उन्हें धीरे धीरे हाँको, हम रामचन्द्र के मुख को अच्छी तरह देख लें क्योंकि फिर तो हमें उनका दर्शन ही दुर्लभ हो जायगा।" रामचन्द्र ने प्रजा से बड़े प्रेम और मधुरता से कहा कि—

"या प्रीतिर्बहुमानश्च मय्ययोध्यानिवासिनाम्।
मत्प्रियार्थं विशेषेण भरते सा विधीयताम्॥"

"हे अयोध्यावासियो! तुम हम पर जितना प्रेम और हमारा जितना सन्मान करते हो, हमारी प्रसन्नता के लिए उससे भी अधिक भरत का करना।"

अयोध्या की सीमा के बाहर एक किनारे खड़े हुए सर्व-शास्त्रज्ञ वृद्ध पण्डितों ने रथ के पास जाकर कहा, "हम यह हंस के समान श्वेत केशपूर्ण मस्तक भूमि पर टेककर प्रार्थना करते हैं कि हे राम, तुम हमें अपने संग ले चलो।" रामचन्द्र ने रथ से उतर कर उनका सन्मान किया।

गोमती पार होकर रामचन्द्र स्यन्दका नदी के पार हुए, अयोध्या की वृक्षावली श्याम आकाश में नीले बादलों के

समान स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ती थी, उस समय रामचन्द्र ने एक बार बड़ी चाह से उस चिर-स्नेह-पूर्ण जन्मभूमि की ओर देखकर सुमन्त से गद्गद कण्ठ होकर कहा, "सरयू के पुष्पित वन मे अब फिर कब आवेंगे ?"

देश-देशान्तरों में भ्रमण करने से मन हलका होता है। रथ पर चढ़े हुए ही उन्होंने कितने ही स्थानों को पार किया। प्रकृति की सुन्दरता नगरों और गावों में श्रीहीन हो जाती है। जहाँ निर्जन वन है वहीं वन की अपूर्व रमणीयता और प्रकृति की सच्ची शोभा दिखाई पड़ती है. मनुष्य वहाँ पहुँच कर इस सुन्दरता को नष्ट कर देते हैं। जहाँ मनुष्यों की बसती नहीं है वहाँ के हर फूल पत्ते में वनलक्ष्मी की कोमल मुखश्री की आभा झलक कर माता के समान स्निग्ध अभिनन्दन से व्यथित पुरुषों की व्यथा दूर कर देती है। रामचन्द्र गङ्गा के तट पर आकर बड़े आनन्दित हुए। विशाल गङ्गा फेन से कहीं खिलखिला कर हंसती हुई दिखाई पड़ती थी, कहीं वीणा बजाती और नर्तकियों के समान छमछम नृत्य करती हुई गङ्गा झङ्कार कर रही थी और कहीं चिकनी चिकनी लहरें वेणी के समान गुथी हुई सी लहरा रही थीं। दूसरी जगह गङ्गा की इस मनोहर मूर्ति का बिलकुल उलटा ही दिखलाई पड़ता था अर्थात् कहीं तरङ्गों के व्याघात से व्याकुल गङ्गा अपने मेघरूपी केशों को छितराती हुई चक्कर लगा रही थी; कहीं लहरें ऊँची उठ उठ कर स्वप्न की तरह सहसा विलीन हो जाती थीं, कहीं किनारे की वृक्षावली गङ्गा को माला के समान घेरे हुए थी और कहीं किनारे पर रेती ऐसी मालूम होती थी मानो एक विशाल चादर बिछी हो। सहसा इस विशाल तरंगों वाली गंगा को देख

कर दोनों राजकुमार और सीता प्रसन्न होकर इंगुदी वृक्ष की छाया में विश्राम करने का यत्न करने लगे। ऐसे समय में निषादों का राजा गुहक अनेक प्रकार के सुन्दर फल-मूल आदि की भेंट लेकर परम सुहृद् रामचन्द्र का आतिथ्य करने के लिए अत्यन्त आतुर हुआ, उसने कहा,—

"न हि रामात् प्रियतरो ममास्ते भुवि कश्चन।"

"इस संसार में राम से अधिक हमें कोई भी प्यारा नहीं है।' किन्तु रामचन्द्र ने यह कह कर कि धर्मानुसार क्षत्रियों को दूसरे का दान लेना मना है गुहक का आतिथ्य ग्रहण नहीं किया, हाँ रथ के घोड़ों के लिए उससे अनुरोध करके घास इत्यादि मंगवाई और आप तीनों जनों ने केवल जल-पान कर निराहार रह कर ही इंगुदी वृक्ष के नीचे तृणशय्या पर रात्रि व्यतीत कर दी।

दूसरे दिन सुमंत्र बिदा होने को थे। वृद्ध सचिव रोकर कहने लगे, "मैं सूना रथ लेकर किसके प्राणों से अयोध्या वापिस जाऊँगा। जिस समय उन्मत्त जनसमूह हमसे सैकड़ों प्रश्न करेंगे हम क्या कह कर उन्हें समझावेंगे? हे सेवकवत्सल, हमें साथ चलने की आज्ञा दीजिये। चौदह वर्ष बाद हम इसी रथ में आप लोगों को चढ़ा कर अभिमान और आनन्द पूर्वक अयोध्या को जायँगे।" रामचन्द्र ने अश्रुचक्षु वृद्ध मन्त्री को अनेक प्रकार से समझा कर अयोध्या लौटने के लिए बाध्य किया। रामचन्द्र ने बड़े कातर शब्दों में सुमन्त्र को इस प्रकार साथ ले चलने से मना किया, "यदि तुम लौट कर न जाओगे तो माता कैकेयी को यह विश्वास न होगा कि हम वन को गये हैं।" रामचन्द्र ने

सुमन्त्र को बिदा करते समय जो बातें कहीं उन्होंने उद्दिष्ट व्यक्ति का हृदय छेद डाला इसमें सन्देह नहीं। रामचन्द्र ने बारम्बार कहा कि—

"इक्ष्वाकूणां त्वया तुल्यं सुहृदं नोपलक्षये।
यथा दशरथो राजा मां न शोचेत तथा कुरु॥"

"इक्ष्वाकु वंश वालों का तुम्हारे समान दूसरा सुहृद् नहीं है, आप ऐसा ही कार्य करें जिससे महाराज दशरथ हमारे लिए अधिक शोक न करें।" लक्ष्मण क्रुध होकर दशरथ के कार्य की समालोचना करने लगे पर रामचन्द्र ने सुमन्त्र को इस प्रकार सावधान कर दिया कि—

"वृद्धःकरुणवेदी च मत्प्रवासाच्च दुःखितः।
सहसा परुषं श्रुत्वा त्यजेदपि हि जीवितम्।
सुमन्त्र परुषं तस्मान्न वाच्यस्ते महीपतिः॥"

"राजा वृद्ध, करुण स्वभाव और हमारे वनगमन से व्यथित हैं, ये रूखी बातें सुन कर वे अपना प्राण दे देंगे। हे सुमन्त्र, महाराज से ये सब रूखी बातें कहना भी मत।"

रोता पीटता बेचारा सुमन्त्र चला गया। इधर सदा सुख से रहने वाले राजकुमार और बड़े लाड़ प्यार से पाली गई राजबधू घोर वन में जा रहे थे। सीता के पद्मकोश के समान प्रभायुक्त युगल चरणों में जिनमें महावर की लाली अभी तक कम नहीं हुई थी काँटे चुभने लगे; अब रथ तो था नहीं, इस बार घोर वन में रात्रि आ उपस्थित हुई। जिनके आगे आगे पैदल, घुड़सवार और हाथीसवारों की फौज चलती थी वे

आज इस अँधेरी रात और निर्जन वन में एक लँगोटी लँगाये कनिष्ठ भ्राता और सहधर्मिणी के साथ कहाँ जा रहे हैं ?

काले सर्पों और हिंसक जन्तुओं से पूर्ण वनपथ में मार्ग भूला हुआ पथिक-वेश-धारी यह अयोध्या का राजपरिवार कहाँ रात्रि व्यतीत करेगा ? जिनके चरण-कमलों के सुन्दर नूपुरों की झंकार से शान्त राजमहल गूंजता रहता था, आज रात्रि को बाल बखेरे हुए, चकित होकर कदम बढ़ाती हुई वे इस घोर वन में कहाँ जा रही हैं ? हिंसक जन्तुओं की डरावनी आवाज सुन कर सीता बड़ी भयभीत होकर रामचन्द्र की भुजाओं का आश्रय लेती थी और इन्द्र के तुल्य महापराक्रमी रामचन्द्र के बाहु ही आज इस चन्द्रबदनी के एकमात्र अवलम्बन हैं। रात्रि व्यतीत करने के लिये उन्होंने एक वृक्ष के नीचे आश्रय लिया: इस घोर वन में उन्होंने यह पहली रात्रि अत्यन्त कष्ट पूर्वक बिताई। रामचन्द्र ने क्षुब्ध होकर रात भर लक्ष्मण से अनेक प्रकार से अपने हृदय का सन्ताप प्रगट किया, ये सब बातें उनके सदा के उदार भाव के अनुकूल नहीं थीं। प्रशान्त-चित्त रामचन्द्र असामान्य कष्ट में अशान्त हो गये थे, वे कहने लगे कि, "भरत राज्य पाकर प्रसन्न होंगे इसमें सन्देह नहीं। निश्चय ही महाराज मन में बड़ा कष्ट पा रहे हैं किन्तु जो धर्म त्याग कर काम की सेवा करते हैं, उन्हें राजा दशरथ के समान कष्ट होना अवश्यम्भावी है । हमारी मन्दभागिनी जननी आज शोक समुद्र में डूब गई हैं। हे लक्ष्मण, क्या कहीं ऐसा भी सुना है कि किसी ने प्रमदा के वश में होकर हमारे समान आज्ञाकारी पुत्र को परित्याग कर दिया हो ? जो हो, इस कठोर वन्य जीवन में तुम्हारी आवश्यकता नहीं, हम और सीता वनवास का दण्ड भोगेंगे, तुम अयोध्या को लौट-

जाओ। कहीं निर्दय और दुष्ट कैकेयी हमारी माता को विष देकर मार न डाले, तुम घर जाकर हमारी माता की रक्षा करो। तुम मन में यह मत समझना कि हम अयोध्या किम्वा सारी पृथिवी को अपने बाहुबल से नहीं जीत सकते, केवल अधर्म और परलोक के भय से हम अपना अभिषेक नहीं करते।" इस प्रकार बहुत विलाप करते हुए उस दुर्गम वन में जहाँ हवा बड़े जोर से चल रही थी और पेड़ों के पत्ते हिलने से सन्नाटा छा रहा था भूमि पर लोटी हुई और निराहार रहने से कृश लवंगलता के सदृश सीता की दुरवस्था और अपने जीवन की भावी दुर्गति की कल्पना करके चिर-सुखोचित* राजकुमार ने चुपचाप क्षुब्ध चित्त और अश्रुपूर्ण नेत्रों से बैठे ही बैठे सारी रात्रि बिता दी—

"अश्रुपूर्णमुखो दीनो निशि तूष्णीमुपाविशत्।"—

इस प्रथम रात्रि के महा क्लेश के बाद उन्हें वन में रहने का अभ्यास हो गया। चित्रकूट पर्वत के नीचे पुष्पों से लदा हुआ रमणीय महावन देख कर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। वनदर्शन से विस्मिता और स्वभाव ही से सुन्दरी सीता हरी हरी वृक्षावली देख कर वन में उन्मादिनी की भाँति घूमने लगी और अपनी गुथी हुई और सघन बेणी को पीठ पर लटकाती हुई बड़े प्रसन्न मुख से रामचन्द्र का हाथ पकड़ कर उन्हें ले गई और उनसे लाल अशोक के फूल तुड़वाने लगी। इधर चित्रकूट के एक ओर अग्नि की लौ के समान गेरुवे पहाड़ की एक चोटी आकाश को चुम्बन कर रही थी।

*चिरसुखोचित = सदा सुख मिलना उचित है जिन्हें ऐसे (राज कुमार)

दूसरी ओर टूटी फूटी गुफाओं से पूर्ण सघन वन-राज्य की दुर्गम शोभा अपनी निराली ही छटा दिखा रही थी,--कहीं कन्दाराओं के पास कितनी ही पर्वत-मालाएँ आकाश का सहारा ले रही थीं,—कहीं सूर्य की किरणों के सम्पर्क से धातुगात्र* शैल के कोई कोई शिलाखण्ड चाँदी के टुकड़ों के समान उज्ज्वल दिखलाई पड़ते थे,-कहीं कोविदार और लोध्र के पेड़ आपस में मिल कर एक अपूर्व सौन्दर्य का चित्र खींच रहे थे और कहीं भोजपत्र अपने नये आये हुए पत्तों से वेपथुमती† रमणी की सी नम्रता प्रदर्शित कर रहे थे। वन की शोभा ऐसी मालूम होती थी कि मानो अनेक विचित्र रंगों के समावेश और नाना प्रकार की उद्भिद‡ सम्पत्ति को लेकर, कन्दरा से निकली हुई खर के समान वेगवाली गद्गद करती हुई नदी की तरंगों की चोट से, पुष्प और लताओं के विचित्र आभरणों को धारण कर और ऊष्ण देश के अनुकूल प्रकृति की सब शोभा और विलास की सामग्री एकत्र कर चित्रकूट पर्वत यकायक पृथ्वी का पेट फाड़ कर उठ खड़ा हुआ है—

"भित्त्वेव वसुधां भाति चित्रकूटः समुत्थितः।"

इसी चित्रकूट पर्वत के कण्ठ में निर्मल मोतियों की माला के समान मन्दाकिनी नदी बह रही थी। सहसा इस उदार और अदृष्टपूर्ण प्रकृति के सौंदर्य का उपभोग कर रामचन्द्र आह्लाद पूर्वक बोल उठे कि "आज राज्यनाश और

---

* धातुगात्र = धातुओं का है शरीर जिसका।

† वेपथुमती = कांपती हुई।

‡ उद्भिद् = वनस्पति (पेड़, पौधे, लता इत्यादि)।

सुहृद्विरह हमारी समझ में हमें कोई कष्ट नहीं दे रहा है,—हम इस महासौन्दर्य का पूर्ण रूप से उपभोग कर रहे हैं। आज हमें वनवास बड़ा मङ्गलप्रद बोध होता है। इससे हमें दो ही परम सुन्दर फल मिले हैं। एक तो हमने पिता की असत्य से रक्षा की है और दूसरे भरत का हित साधन किया है।" सीता सहित मन्दाकिनी में स्नान कर रामचन्द्र कमल तोड़ कर बोले, "इस नदी का स्निग्ध सम्भाषण तुम्हारी सखियों के समान है। मनमें इस मन्दाकिनी को सरयू समझ लेना।"

इस स्थान पर इस दम्पति का दृश्य क्रमशः मधुर से मधुरतर हो गया; कुसुमित लताएँ अपने आश्रित वृक्षों से लिपट रही थीं, यह देखकर रामचन्द्र बोले, "अहा कैसा सुन्दर दृश्य है! तुम जैसे परिश्रान्त होकर हमारा आश्रय लेती हो ठीक वैसी ही इनकी दशा है।" हाथियों ने जिन वृक्षों को उखाड़ डाला था उन्हें देखकर रामचन्द्र और सीता इन अकाल-शुष्क वृक्षों के प्रति दो एक दया भरी बातें कह कर आगे बढ़े। कोकिलों की कुहूकुहू और भौंरों की गुंजार से वन में चहल-पहल मची हुई थी। रामचन्द्र और सीता इसका आनन्द लेते हुए जा रहे थे, मार्ग में लाल, पीले और अन्य वर्ण के जो सुन्दर फूल दिखाई पड़ते थे, रामचन्द्र उन्हें पत्तों सहित तोड़ कर सीता के हाथों में देते जाते थे। गेरू की शिला पर गीली उंगली घिस कर उन्होंने सीता की माँग में सुन्दर तिलक लगा दिया। केशर के फूलों को तोड़ कर उन्हों ने सीता के कानों के नीचे फहराते हुए सघन बालों में पहिना दिया और बड़े प्रेम और आदर से बोले—

'नायोध्यायै न राज्याय स्पृहयेयं त्वया सह।"

'हम तुम्हारे संग रह कर अयोध्या के राजपद की कामना नहीं करते।'

चित्रकूट की मनोहर पर्वतमाला से घिरे हुए प्रदेश में शाल, ताल और अश्वकर्ण के पत्तों और डालियों से लक्ष्मण ने मनोरम पर्णकुटी बनाई। वहां मन्दाकिनी के बहने का शब्द मन्द मन्द सुनाई पड़ता था, रामचन्द्र उस सुमनबाटिका में भ्राता और पत्नी के संग निवास कर सब दुखः भूल गये। इसी समय बड़ी फौज और बन्धु-बान्धवों को लेकर भरत उन्हें मनाने के लिए आये। लक्ष्मण ने शाल वृक्ष पर चढ़ कर भरत की चिर-परिचित कोविदार युक्त ध्वजा और अयोध्या की विशाल फौज देख कर मन में समझा कि भरत उन्हें मारने के लिये आये हैं। इस धारणा से उत्तेजित होकर उन्होंने भरत के बध करने का संकल्प प्रगट कर रामचन्द्र को युद्ध के लिए सन्नद्ध करने के लिए वे बड़ी वीररस की बातें कहने लगे। किन्तु रामचन्द्र ने बड़े ही प्रेम से कहा कि, "यदि सचमुच ही भरत फौज लेकर यहां आये हैं, तो भी हमें युद्ध के लिए तैयारी करने की क्या ज़रूरत है? पिता के सत्य का पालन करने के लिए वन में वास करते हुए भरत को युद्ध में मार कर हम क्या कीर्ति लाभ करेंगे? क्या भाई के रक्त से कलंकित राज्य पाने से हमें तृप्ति होगी? बन्धु किम्बा सुहृदों के विनाश से जो धन मिलता है वह हमारे लिए विष के समान त्याज्य है, भ्राता और आत्मीयजनों के सुख के सामने हम अपना सुख अत्यन्त तुच्छ समझते हैं।" इसके पश्चात् भरत जिस उद्देश्य से आये थे उसका अनुमान करके बोले, "हमारे प्राणों से भी प्यारे छोटे भाई भरत हमारे वनवास

के समाचार सुन शोक में पागल हो हमें लौटाने के लिए आये हैं, भरत के आने का और कोई कारण नहीं है ।"

इधर नंगे पैरों, जटाचीर धारण किये आज्ञाकारी सेवक के समान चिरवत्सल भरत आकर—

*"भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ।"

कहते कहते उच्च-स्वर से रुदन करते हुए रामचन्द्र के चरणों में लोट गये । भरत का मुख सूख गया था और लज्जा और मनस्ताप से उनका शरीर शीर्ण और विवर्ण हो गया था । रामचन्द्र ने अश्रुपूरित चक्षुओं से स्नेह की मूर्ति भरत को हृदय से लगा लिया और उनका शिर सूंघ कर बड़े ही मधुर सम्भाषण से उनका आदर करने लगे । भरत ने देखा कि सत्यव्रत रामचन्द्र के शरीर से दिव्य ज्योति प्रगट हो रही है, वे यज्ञ-भूमि पर विराजमान थे तथापि चक्रवर्ती राजा के समान बोध होते थे, उनके दोनों कमलनयन उज्ज्वल थे, वे जटा-चीर धारण किये हुए थे तथापि उन्हें वे पवित्र यज्ञाग्नि के समान दिखाई पड़ते थे । ऐसा मालूम होता था मानों धर्मचारी भ्राता राज्य त्याग कर ही सच्चे राजाधिराज हुए हैं । इन देवप्रभाव-सम्पन्न ज्येष्ठ-भ्राता के चरणों में लोट कर आर्त रमणी के समान भरत कितनी ही स्नेह भरी बातें कहते कहते रोने लगे । इन दोनों त्यागी पुरुषों का परस्पर संवाद आदि कवि ने अपनी अनुपम लेखनी से बड़ा ही उदार और करुण चित्रित किया है । रामचन्द्र भरत के मुख से पिता के स्वर्गवासी होने का समाचार सुन कर कुछ काल

*"मैं आपका भाई हूं, शिष्य हूं, दास हूं, मुझ पर कृपा कीजिये ।"

के लिए अधीर हो गये। मन्दाकिनी के तीर पर इंगुदी के फल का पितृपिण्ड बनाया गया। राम जब इस पिण्ड को देने के लिए उद्यत हुए तो मतवाले हाथी के समान शोक से विह्वल हो वे भूमि पर लोट कर रोने लगे, किन्तु उन्होंने क्षण भर में ही मन को वश में कर संसार की अनित्यता और धर्म की सारवत्ता के सम्बन्ध में भरत को इस प्रकार उपदेश दिया कि, "मनुष्य का सुन्दर शरीर बुढ़ापे से शक्तिहीन और विरूप हो जाता है। पकी हुई खेती को जिस प्रकार गिरने का भय नहीं है, उसी प्रकार मनुष्यों को भी निर्भय होकर मृत्यु के लिए प्रतीक्षा करना उचित है—क्योंकि वह अनिवार्य है। जो आनन्द के दिन बीत गये हैं वे फिर लौट कर आने के नहीं, गंगा की जो धारा समुद्र में जाकर मिल गई है वह लौट कर फिर नहीं आ सकती, इसी प्रकार आयु का जितना अंश बीत गया है वह और लौट कर नहीं आ सकता। जब जीते हुए लोगों की मृत्यु अत्यन्त निकट होने पर भी अनिश्चित है, तो मरे हुओं के लिए शोक न कर अपने ही लिए शोक करना उचित है। धीरे धीरे शरीर लटक जाता और शिर के बाल पक जाते हैं और जराग्रस्त जीव में फिर बाकी ही क्या रह जाता है? जैसे समुद्र में पड़े हुए दो काठ के टुकड़े प्रवाह के वेग से कभी आपस में दैववश मिल जाते हैं, उसी प्रकार स्त्री पुत्र और जातिवालों का मिलना दैवाधीन है, उनका कब वियोग होगा यह निश्चय नहीं है। हमारे पिता नश्वर मनुष्य देह को त्यागकर ब्रह्मलोक गये हैं, उनके लिए शोक करना वृथा है। अपना धर्मपालन करते हुए और पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर उसका पालन करना ही हमारा श्रेष्ठ कर्तव्य है।" मुहूर्त भर में इस भारी

शोक को जीत कर रामचन्द्र का चित्त पूर्ण रूप से सावधान हो गया; उस समय भरत ने विस्मय पूर्वक कहा--

"को हि स्यादीदृशो लोके यादृशस्त्वमरिंदम ।
न त्वां प्रव्यथयेत् दुःखं प्रीतिर्वा न प्रहर्षयेत ॥"

"तुम्हारे समान इस संसार में और कौन व्यक्ति है, सुख में तुम्हें सुख नहीं और दुःख में दुःख नहीं ।"

भरत ने उन्हें लौटाने के लिए प्राणपण से चेष्टा की। वशिष्ट, जावालि प्रभृति कुलपुरोहितों ने रामचन्द्र को अयोध्या लौटाने के लिए अनेक अनुरोध किये। जावालि ने अनेक प्रकार के अद्भुत तर्क करके कहा, "जीव अकेला ही पृथ्वी पर आता है और अकेला ही जाता है, अतएव कौन किसका पिता और कौन किस की माता है? यह मातृत्व या पुत्रत्व का भाव उन्मत्त और बुद्धिशून्य लोगों ही में होता है। वास्तव में शुक्र, रुधिर और बीज ही हमारा पिता है। दशरथ तुम्हारे कोई नहीं हैं और तुम भी दशरथ के कोई नहीं हो। पिता के लिए जो श्राद्ध किया जाता है उससे केवल अन्नादि नष्ट होता है, क्योंकि मरे हुए लोग आहार नहीं कर सकते। यदि एक आदमी के भोजन करने से दूसरे के शरीर में उसका सञ्चार हो, तो परदेश में रहने वाले किसी व्यक्ति के निमित्त दूसरे आदमी को यहां भोजन करा कर देखो, इससे उस प्रवासी व्यक्ति की तृप्ति नहीं होगी। शास्त्र आदि केवल लोगों को वशीभूत करने के लिए बनाए गये हैं। अतएव हे राम, तुम यह मन में धारण कर लो कि परलोक-साधन धर्म नामक कोई पदार्थ नहीं है, अब तुम प्रत्यक्ष का अनुष्ठान करो, परोक्ष के अनुसन्धान में लगो और अयोध्या के सिंहासन पर बैठो—

"एक वेणीधरा हि त्वां नगरी संप्रतीक्षते।"

"एक वेणी धारण किये हुए अयोध्या तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रही है।"

श्री रामचन्द्र पिता को 'प्रत्यक्ष देवता' 'देवताओं के भी देवता' मानते थे। जावालि के कथन से क्रुद्ध होकर वे बोले. "आपकी बुद्धि वेदविरोधिनी है। आपकी अपेक्षा बहुत बड़े बड़े पंडितों ने अनेक शुभ कर्मों का साधन किया है और अब भी अनेक ऋषि अहिंसा, तप और यज्ञादि का अनुष्ठान करते हैं। यथार्थ में वे ही पूजनीय हैं। आप धर्मभ्रष्ट नास्तिक हैं। बुद्धिमान् लोग नास्तिकों के संग सम्भाषण भी नहीं करेंगे। हमारे पिता ने जो तुम्हें अपना पुरोहित बनाया सो उनके इस कार्य को हम बहुत बुरा समझते हैं।" वशिष्ठ जी ने बीच में पड़ कर रामचन्द्र का क्रोध शान्त किया।

भरत ने यह अभिप्राय प्रगट किया कि वे किसी प्रकार रामचन्द्र की छाया छोड़कर नहीं जायंगे और वन में रहेंगे। जब रामचन्द्र ने जाना स्वीकार नहीं किया तो शोकसन्तप्त भरत ने कहा कि भूखे रहकर प्राण दे देंगे और वे प्रायः उपवास रह कर कुटी के द्वार पर धन्ना देकर बैठ गये। रामचन्द्र को भरत का क्लेश असह्य होगया, उन्होंने अपनी पादुकाएँ भरत के हाथ में देकर उन्हें लौटने के लिए बाध्य किया। भरत ने अपने केशकलाप को भ्रातृपद-रजोधारी पादुकाओं से सुशोभित किया और राज्यभार उनके अर्पण कर अयोध्या की ओर प्रस्थान किया।

भरत चले गये। भरत की फौज के संग आये हुए हाथी घोड़ों की लीद से चित्रकूट का एक प्रान्त भर गया; उसकी दुर्गन्धि असह्य होगई थी; दूसरे यह सोचकर कि अयोध्या

के निकट रहने से प्रायः वहां के लोगों का आना जाना लगा ही रहेगा रामचन्द्र भाई और पत्नी सहित चित्रकूट छोड़कर धीरे धीरे दक्षिण की ओर जाने लगे। ऋषियों के अनुरोध से रामचन्द्र ने राक्षसों के उपद्रव निवारण करने का भार अपने ऊपर लिया; इस सम्बन्ध में सीता ने रामचन्द्र से कहा, "तीन बातों का पुरुष के लिए निषेध है, एक असत्य-भाषण, दूसरे पर-स्त्री-गमन और तीसरे अकारण शत्रुता। तुम्हारे विषय में पहले दो दोषों की कल्पना भी नहीं हो सकती किन्तु जो तुम राक्षसों से अकारण शत्रुता कर रहे हो इसी से हमें आशङ्का हो रही है।" रामचन्द्र ने कहा, "क्षत से जो त्राण करे उसका नाम 'क्षत्रिय' है, राक्षसों के अत्याचार से दुःखी होकर ऋषि व महात्मा लोग हमारी शरण में आये हैं, उनमें से कितने ही निरीह और धार्मिक-जनों की राक्षसों ने हत्या की है। उन्होंने विपत्ति में पड़कर हमारा आश्रय लिया है, हम भी उन्हें वचन दे चुके हैं, अब हम राक्षसों से निश्चय ही युद्ध करेंगे। अब हम पर कैसी भी विपत्ति क्यों न आवे, हम राज्य यहां तक कि तुमको भी त्याग सकते हैं किन्तु सत्यभ्रष्ट नहीं हो सकते।"

उस समय शीत ऋतु दिखाई देने लगी। राम लक्ष्मण और सीता सहित लावों में बची हुई पद्म-लताओं और शीर्णकेशर* कर्णिकार के पुष्पों को देखते हुए और वन में लगी हुई पीपलों की उग्र गन्ध से आमोदित होते हुए पञ्चवटी में पहुंचे और वहां एक पर्णकुटी बनाकर रहने लगे।

---

* शीर्णकेशर = सूख गया है पराग जिनका।

अयोध्याकाण्ड में रामचन्द्र अपूर्व संयमी दिखाई देते हैं, उन्होंने कहीं लेशमात्र हृदय की दुर्बलता दिखाई भी तो फिर क्षण भर में ही बड़ी विलक्षणता से उन्होंने अपने मन पर अधिकार कर लिया था।

अयोध्याकाण्ड में संसार भर के सब व्यक्ति अधीर हैं, कोई शोकाकुल, कोई क्रोधोन्मत्त और कोई राज्यकामुक है। इस अध्याय में केवलमात्र रामचन्द्र निश्चल कर्तव्य की मूर्ति-स्वरूप अकुण्ठित हैं। उनके लिए जगत् कुण्ठित है किन्तु वे अपने लिए कुण्ठित नहीं हैं। जहां कहीं सांसारिक पुरुषों का आपस में संघर्ष होता है वहां कोई सत्यपरायण देख पड़ता है और कोई असत्यपरायण पर वहां भी रामचन्द्र त्याग-परायण देखे जाते हैं। उनकी विषयवासना से घृणा और सत्य में अनुराग सर्वत्र हमें आश्चर्य में डालता है। उनकी कर्तव्यनिष्ठा अन्य लोगों को अपूर्व त्याग स्वीकार करने के लिए प्रेरणा करती है और उनका उज्ज्वल चरित्र एक ऊँचे गगन-स्पर्शी पर्वत के शिखर के समान सब के ऊपर अवस्थित है।

किन्तु आगे के अध्यायों में रामचन्द्र का आत्मसंयम शिथिल हो गया है। उन्होंने अब तक लक्ष्मण आदि को उप-देश देकर उन्हें सन्मार्ग में प्रवृत्त किया था पर अब वे स्वयं उनके उपदेश के पात्र बन गये। उनके लङ्काजय की अपेक्षा हम उनके अयोध्याकाण्ड के आत्मजय के अधिक पक्षपाती हैं।

आगे के अध्यायों में रामचन्द्र की वैराग्य-श्री कुछ फीकी पड़ जाने पर भी यह कहने को जी नहीं चाहता कि वे जरा भी श्रीहीन हो गये थे किन्तु अब से काव्य-श्री ने उन पर अपना विशेष अधिकार जमा लिया था। उनका सुधामधुर

प्रेमोन्माद; सामने ही पुष्पित वनप्रदेश के विचित्र प्राकृतिक सौन्दर्य्य के संग रामचन्द्र का उसी एक स्वर से विरह की कथा अलापना और ऋतुभेद से माल्यवान पर्वत की विविध शोभा सम्पत्ति और रमणीयता देखकर अनुरागी राजकुमार का उन्मत्त भावावेश, इन सब ने अगले अध्यायों में मधुरता का अजस्र स्रोत बहाया है। हम उनके चित्तसंयम के अभाव से सन्तप्त होंगे कि प्रसन्न होंगे इसकी मीमांसा करने के लिए हम यहां तैयार नहीं हैं। इन सब अध्यायों में अनेक विचित्र भावों का विकाश हुआ है। मारीच ने रावण से कहा था—

> "वृक्षे वृक्षे च पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम्।
> गृहीतधनुषं रामं पाशहस्तमिवाऽन्तकम्॥"

"हमें हर वृक्ष में यमराज के समान विकराल रूप धारण किये, कृष्ण मृगचर्म पहिने और हाथ में धनुष बाण लिए रामचन्द्र ही रामचन्द्र दिखलाई पड़ते हैं।" एक ओर जैसे वे भय के देनेवाले थे, दूसरी ओर वे वैसे ही सुन्दर थे। वल्कल पहिने हुए धनुषधारी रामचन्द्र की सौम्यमूर्त्ति देख कर आश्रम के मृगशावक तृण चबाते चबाते चित्र लिखी मूर्तियों के समान खड़े रह जाते, कभी वे उनके वल्कल के अग्र भाग को दाँतों में दबा स्नेह के वश हो उनके निकट चले जाते थे और जब विरहोन्मत्त राजकुमार ने "हे हरिणो, हमारी प्राणप्रिया मृगनयनी कहाँ है" इस प्रकार प्रलाप करते हुए कातर कण्ठ से सीता के विषय में उनसे जिज्ञासा की उस समय उन हरिणों ने भी मानो अश्रुपूर्ण नेत्रों से सहसा उठकर दक्षिण की ओर मुख करके निर्वाक् और शान्त भाव से अपने वेदनातुर मौन हृदय का भाव यथासाध्य प्रगट कर दिया था।

पञ्चवटी में शूर्पनखा के नाक कान काटने के बाद राम-चन्द्र का राक्षसों से घोर युद्ध हुआ। खरदूषण आदि चौदह हज़ार राक्षस रामचन्द्र के हाथ से मारे गये। रावण इतने राक्षसों के बध का वृत्तान्त सुन कर साधू का वेश धारण कर सीता को हर ले गया।

मरते समय मारीच के शब्द सुनकर ही रामचन्द्र को यह आशङ्का हो गई कि राक्षसों ने कोई माया रची है। मार्ग में लक्ष्मण को अकेले आते हुए देखकर वे बड़े ही भयविह्वल हो गये; इस समय से परम शान्तचित्त रामचन्द्र क्षुब्ध समुद्र के समान चञ्चल हो गये। वास्तव में उनके शोक का कारण यथेष्ट था। जब रामचन्द्र ने वन जाने का संकल्प प्रगट किया तब साध्वी सीता ने—

"अग्रस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान्।"

"कुशकण्टकों को कुचलती हुई मैं तुम से आगे जाऊँगी।" कहते हुए प्रसन्न चित्त से राजप्रसाद को त्याग मुनियों का वेश बनाया और अयोध्या के सुरम्य राजमहलों का उल्लेख करके कहा था कि इन सब की छाया की अपेक्षा—

"तव पदच्छाया विशिष्यते।"

'तुम्हारे चरणों की छाया में रहना ही मैं उत्तम समझती हूं।' सुन्दर नूपुरों को बजाती हुई क्रीड़ाशीला राजवधू राम-चन्द्र के पीछे पीछे छाया के समान चलती थी, हरिणी के समान प्रफुल्लनयना वन में भय खाकर अपनी भुजा रूपी लता को रामचन्द्र के बाहुरूपी वृक्ष का आश्रय देती थी। तेरह वर्ष तक चित्रकूट और पञ्चवटी के वृक्षों की छाया में, गद्गद् नाद करती हुई गोदावरी के किनारे और मन्दाकिन

की सुन्दर रेती में—वन के कन्दमूल फल खाकर बड़े आदर से लालित सौभाग्यवती राजवधू ने स्वामी के संग रहने में अपने जीवन का सब से बड़ा सुख माना था। रामचन्द्र भी जब उसे अपने संग वन लाये तो उन्होंने कहा था—"तुम्हें संग ले चलने में हमें किसी का भय नहीं है। साक्षात् रुद्र का भी हमें कुछ भय नहीं है।" यह अभय दान देकर वे इस तन्वी पद्म पलाशाक्षी को लाये थे। अब वे उसकी रक्षा नहीं कर सके; इस लिये रामचन्द्र के इतने व्याकुल होने का यही यथेष्ट कारण था वे लक्ष्मण को अकेला देख कर बड़ी भारी विपत्ति की आशङ्का कर के मुह्यमान हो गये और अनभ्यस्त करुण-कण्ठ से बोले, "जो हमारे संग दण्डकारण्य को आई, हमारी उस वनवासिनी दुःखसङ्गिनी को तुम कहाँ छोड़ आये हो? जिसके बिना हम क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकते, हमारी उस प्राणप्रिया को तुम कहाँ छोड़ आये हो?"

"यदि मामाश्रमगतं वैदेही नाभिभाषते।
पुरं प्रहसिता सीता प्राणांस्त्यक्ष्यामि लक्ष्मण।"

"यदि आश्रम में जाकर हँसती हुई सीता हमसे न बोली तो हम अपना प्राण दे देंगे।" विपद् की आशङ्का करके उन्हों ने कैकेयी के प्रति यह कटुवचन प्रयोग किया कि—

"कैकेयी सा सुखिता भविष्यति।"

'अब कैकेयी सुखी होगी।' वे लक्ष्मण के संग जल्दी जल्दी कुटी की ओर बढ़े। उस समय सारी प्रकृति ने मानो उनकी भावी विपत्ति का पूर्वाभास-सूचक भयत्रस्त मौन भाव धारण कर लिया था; चारों ओर अशुभ लक्षण देखकर उनका मुख

सूख गया था। उन्होंने देखा कि जैसे कमलों के सूख जाने से बसन्त ऋतु की शोभा मारी जाती है वैसे ही सीताविहीन पर्णकुटी श्रीहीन हो गई है और उसका सौन्दर्य चला गया है। ऐसा मालूम होता था मानो वनदेवता पञ्चवटी से बिदा माँग रहे हैं. मानो सारे वन में सीताशून्यता विराज रही है, पञ्चवटी के वृक्ष अपनी शाखाओं को झुका कर मानो रो रहे हैं, पञ्चवटी के पक्षी मानो चहचहाना भूल गये और पञ्चवटी के वृक्षों पर फूल सूख गये हैं। मृगचर्म और वल्कल आदि कुटी के पास पड़े हुए थे, इन्हें देखकर रामचन्द्र—

"शोकरक्तेक्षणः श्रीमान् उन्मत्तइव लक्ष्यते"

'पागल हो गये और उनकी आँखें लाल हो गईं।'

या तो सीता गोदावरी के तट पर कमल लेने गई होगी या वन में रास्ता भूल गई होगी। "वनोन्मत्ता मैथिली" को दोनों भाई खोजने लगे।

उन्होंने पहाड़, नदी, नाले और अनेक दुर्गम स्थानों को छान डाला। रामचन्द्र धीरे धीरे बड़े व्याकुल हो गये, कदम्ब-पुष्पों को प्यार करने वाली प्यारी की बातें कदम्ब का पेड़ जानता होगा, अतएव वे कदम्ब से प्यारी की बातें पूछने लगे; वे बेलपत्र के पास जाकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये और जहाँ अनेक लता पता और फूल छा रहे थे वहाँ रामचन्द्र जाकर कातर कण्ठ से सीता की बातें पूछने लगे। पत्र पुष्पों से आच्छादित अशोक के पास जाकर शोक निवारण के लिए उपदेश सुनना चाहते थे और कर्णिकार के फूल को देखते हो पागल होकर वे सीता के श्रीमुख पर शोभमान् कानों की शोभा स्मरण करने लगते। कभी वन वन में

उन्मत्त की भाँति भ्रमण कर हिरणों के निकट जाकर वे उस मृगशावकी सीता की बातें पूछने लगते । सहसा विक्षिप्त के समान मन में सीता की कल्पित मूर्ति देखकर वे व्याकुल हो कहने लगे—

"किं धावसि प्रिये नूनं दृष्टासि कमलेक्षणे ।
वृक्षराच्छाद्य चात्मानं किं मां न प्रतिभाषसे ॥
तिष्ठ तिष्ठ वरारोहे न तेऽस्ति करुणा मयि ।
नात्यर्थं हास्यशीलासि किमर्थं मामुपेक्षसे ॥

"हे प्यारी तुम वृक्षों में छिपी हुई क्यों भागती फिरती हो? हम तुमको देख रहे हैं। तुम हमसे बातें क्यों नहीं करतीं? तुम पहले कभी हमसे ऐसी हँसी नहीं करती थीं— खड़ी तो रहो तुम्हें हम पर दया भी नहीं आती?" यह कह कर ध्यानमग्न हो रामचन्द्र चुपचाप मूर्ति की तरह खड़े रह गये।

क्षण भर बाद जब यह पागलपन दूर हुआ तो वे पुनः सीता की खोज करने लगे। रामचन्द्र को इस बात की आशङ्का नहीं थी कि सीता को कोई हर ले गया है, उन्होंने यही समझा कि सीता को राक्षस खा गये हैं। उसके शोभायमान् कुण्डलों की चमक से दमकते हुए घुंघराले बाल, उसका पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखमण्डल और मनोहर नासिका और अधरपल्लव राक्षसों के भय से कांतिहीन होगये और सूख गये थे। वेपथुमती* सीता की पल्लव सदृश कोमल बाहें और सुन्दर अलङ्कार ये सब राक्षसों के पेट में चले गये थे यह समझ कर पलकों को बिना गिराये वे

*वेपथुमती=कांपती हुई ।

पागलों की तरह आँख फाड़ कर आकाश की ओर देखते रहे और क्षण भर बाद चलने लगे। कभी भागते और कभी धीरे २ चलते हुऐ नदी, नाले और झरनों के पास घूमते घूमते वे बोले, "हे लक्ष्मण, पद्मों से छाई हुई गोदावरी के किनारे, गुफाओं और झरनों के पास हमने प्राणप्यारी सीता को खूब खोज खोज कर देखा पर वह कहीं नहीं मिली,।" यह कहकर मुहूर्त भर के लिए रामचन्द्र शोक के मारे मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय पृथ्वी पर पड़े हुए वे लम्बी लम्बी साँसें भर रहे थे। कुछ देर बाद रामचन्द्र ने लक्ष्मण से अयोध्या लौट जाने का इस प्रकार अनुरोध किया, "अब हम क्या मुंह लेकर अयोध्या जायंगे, जब महाराज जनक सीता की बातें पूछेंगे तो हम क्या उत्तर देंगे? तुम भरत को बड़े प्रेमपूर्वक आलिङ्गन करके कहना कि वे ही सदा राज्य का पालन करें। हमारी माता कैकेयी, सुमित्रा और कौशल्या से सब बातें कह कर उनका बड़ी सावधानी से पालन करना।" लक्ष्मण ने अनेक उपदेशों से रामचन्द्र के मन को शान्त करने की चेष्टा की। जो कहते थे कि—

"विद्धि मां ऋषिभिस्तुल्यं विमलं धर्म माश्रितम्।"

'हमें ऋषियों के समान धर्म में आश्रित समझो।' जिन पर राज्य नाश और सुहृदों का विरह कुछ प्रभाव नहीं डाल सका, जिन पिता ने "राम राम" कहते हुए, प्राण त्याग दिया ऐसे पिता के शोक में भी जो विह्वल नहीं हुए, आज वे शोक में ऐसे उन्मत्त हो गये। गोदावरी के तट को उन्होंने जरा जरा करके सब देख डाला था।

"शीघ्रं लक्ष्मण जानीहि गत्वा गोदावरी नदीं।
अपि गोदावरीं सीता पद्मान्यानयितुं गता॥"

"हे लक्ष्मण शीघ्र जाकर गोदावरी नदी को अच्छी तरह देखो, हो न हो सीता कमल लेने के लिये वहीं गई है।" गोदावरी के किनारे लक्ष्मण पुनः सीता की खोज करने लगे, वे ऊँचे स्वर से चारों ओर चिल्लाने लगे, पास ही सुनसान बेंतों के वन से वैसी ही प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगी, उन्होंने दुःखित हो वापस आकर रामचन्द्र से कहा—

"कं नु सा देशमापन्ना वैदेही क्लेशनाशिनी"।

"क्लेशनाशिनी वैदेही किस देश को गई है, हमें तो कुछ पता नहीं लगा।"

लक्ष्मण की बातें सुनकर शोकाकुल रामचन्द्र पुनः स्वयं गोदावरी के तट पर गये।

क्रमशः दक्षिण की ओर घूमते घूमते उन्होंने सीता के धारण किये हुए फूलों के गहनों को भूमि पर पड़े हुए देखा। उस समय अश्रुओं से भीगे हुए चक्षुओं से रामचन्द्र बोले—

"मन्येसूर्यश्चवायुश्च मेदिनी च यशस्विनी।
अभिरक्षन्ति पुष्पाणि प्रकुर्व्वन्तु मम प्रियम्॥"

"हे पृथ्वी, सूर्य, हे वायु, तुम इन पुष्पों की रक्षा कर हमें सुखी करो।"

थोड़ी दूर जाने ही पर उन्होंने देखा कि पृथिवी पर राक्षसों के बड़े बड़े पैरों के निशान बने हुए हैं, पास ही भूमि रुधिर से लिसी हुई है और उस पर सीता के दुपट्टे से गिरे हुए स्वर्ण-बिन्दु पड़े हुए हैं। उससे थोड़ी ही दूर भूमि पर एक छिन्नभिन्न लाश और एक टूटा फूटा कवच पड़ा हुआ था। उसके पास ही एक टूटा हुआ

युद्धरथ पडा था, उसके पहिये निकले हुए अलग पड़े थे और उसकी पताका रक्त और कीचड़ से तरबतर हो रही थी। इस दृश्य को देख कर रामचन्द्र की पहली आशङ्का—कि राक्षसों ने सीता की सुकुमार देह को खाकर फेंक दिया है और उनमें उसके बाँट के लिए परस्पर घोर द्वन्द्वयुद्ध हुआ है—पक्की होगई। उस समय इन सब चिन्हों को देख कर रामचन्द्र ने यही निष्कर्ष निकाला कि राक्षस सीता को खा गये हैं अतः रामचन्द्र के नेत्र मारे क्रोध के लाल हो गये और उनके ओंठ फड़कने लगे।

उन्होंने वल्कल और मृगचर्म को अच्छी तरह कसलिया और पीठ पर लटकती हुई जटा को माथे से बांध लिया और लक्ष्मण के हाथ से धनुष लेकर पागल की तरह बकने लगे कि, "जिस प्रकार जरा, मृत्यु और विधाता का क्रोध अनिवार्य है, उसी तरह आज हमको भी कोई रोक नहीं सकेगा। हम सामने जो कुछ देखेंगे उस सब को नष्ट कर सीता के मार डालने का बदला लेंगे।" बड़े भाई को इस प्रकार उन्मत्त देख कर लक्ष्मण ने अनेक प्रकार के मधुर उपदेश दिये;—जिस तरह की बातों से प्राण शीतल होते हैं उसी तरह के शान्तिपूर्ण उपदेश से वे रामचन्द्र के चित्त की व्यथा हरने की चेष्टा करने लगे और आगे बढ़ कर उन्होंने खून से तरबतर हुए पर्वत के समान भीमकाय मुमूर्षु* जटायु को पड़े हुए देखा। उसे देखते ही रामचन्द्र ने उन्मत्त होकर कहा कि "यही राक्षस सीता को खाकर चुपचाप पड़ा हुआ है" और उसके बध करने के लिए धनुष पर काल रूपी बाण

*मूमुर्ष—जो मरना ही चाहता है।

चढ़ाया। जटायु का प्राण कण्ठगत हो रहा था, बोलते ही उसके मुँह से रुधिर और फेन निकलने लगा और उसने बड़े दीन और मृदु वचनों से रामचन्द्र से कहा, "हे आयुष्मान्! तुम वन वन में जिसे सञ्जीविनी के सदृश ढूंढ़ते फिरते हो, उस देवी और हमारे प्राण दोनों को दुष्ट रावण ने हर लिया है। मैंने सीता को उसके पंजे से छुड़ाने के लिए उससे युद्ध किया और यह जो रथ का टूटा हुआ छत्र और डंडा पड़ा है वह रावण ही का है। उसका सारथी भी मेरे हाथ से मारा गया। रावण को मैंने रथ से गिरा दिया था। किन्तु मेरे थक जाने पर उसने खड्ग से मेरा काम तमाम कर दिया है—

"रक्षसा निहतं पूर्व्वं मां न हन्तु त्वमर्हसि"

"रावण ने मुझे पहले ही मार डाला है, अब तुम्हें इस मरे को फिर मारना उचित नहीं है।"

यह सुन रामचन्द्र ने अपना विशाल धनुष अलग रख दिया और जटायु को आलिङ्गन कर रोने लगे और बड़े दीन होकर बोले, "लक्ष्मण, देखो इसका प्राण कण्ठ में आ गया है, अब यह मरना ही चाहता है, हमारे दुर्भाग्य से आज हमारे पिता का सखा जटायु मारा गया है, इसे बोलने में बड़ा कष्ट हो रहा है और इसके नेत्र ज्योतिहीन हो गये हैं।" जटायु की ओर सजल नेत्रों से देख कर रामचन्द्र हाथ जोड़ कर बोले, "यदि सामर्थ्य हो तो एक वार और बोलो और अपने बध और सीता के हरण की कथा हमसे कहो। रावण हमारी स्त्री को क्यों हर लेगया? उसका कैसा रूप है और उसमें कैसी शक्ति और बल है? उसने हमारा कौन सा

अपराध देखकर यह काम किया? सीता की मनोहर मुखश्री उस समय कैसी हो गई थी और बिधुबदनी सीता ने उस समय क्या कहा था? हे तात! रावण का घर कहाँ है?" इतने प्रश्नों के उत्तर में जटायु ने केवल इतना ही कहा कि, "मैं आँखों से देख नहीं सकता और मुंह से बोल नहीं सकता। दुष्ट रावण सीता को हर कर दक्षिण की ओर ले गया है। रावण विश्वश्रवा मुनि का पुत्र और कुबेर का भाई है।" यह कहते कहते उसकी आँखें फिर गईं और उसके प्राण निकल गये। रामचन्द्र हाथ जोड़ कर "बोलो, बोलो" कह रहे थे पर जटायु उसी क्षण प्राण त्याग कर स्वर्ग को चला गया। रामचन्द्र नेत्रों में जल भर कर बोले, "यह जटायु बहुत वर्षों से दण्डकारण्य में काल व्यतीत करता हुआ जीर्ण-शीर्ण हो गया था किन्तु आज हमारे लिये यह काल के गाल में पड़ गया। "कालो हि दुरतिक्रमः"—काल बड़ा बली है। संसार में सर्वत्र ही साधू और पुण्यात्मा लोग निवास करते हैं, नीच कुल में भी जटायु के सदृश देवताओं से भी पूजनीय चरित्र उत्पन्न हुआ—हमारे हित के लिए इसने अपना प्राण विसर्जन कर दिया— "मम हेतोरयं प्राणान् मुमोच पतगेश्वरः।"

आज हमें सीताहरण का दुःख नहीं है, जटायु की मृत्यु के शोक ने हमारे हृदय पर अधिकार कर लिया है:—

"राजा दशरथः श्रीमान् यथा मम महायशाः।
पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः॥"

"हमारे लिए यशस्वी महाराज दशरथ जैसे पूज्य और मान्य हैं, आज यह जटायु भी वैसे ही पूज्य और मान्य है।" लक्ष्मण, लकड़ी इकट्ठी करो, हम इस पवित्र शरीर का श्रद्धा सहित दाह-संस्कार करेंगे।"

५

उन्होंने जटायु का अन्तिम संस्कार कर पहले तो पश्चिम का रास्ता लिया पर फिर दक्षिण की ओर हो लिए। सामने ही क्रौञ्चारण्य, नामक बड़ा विस्तीर्ण और दुर्गम वन था। इसी जगह एक राक्षसी को मारने के बाद विकराल रूपधारी कबन्ध से उनका साक्षात्कार हुआ। कबन्ध रामचन्द्र के हाथ से मारा गया। मरते समय उसने रामचन्द्र को पम्पासरोवर के पास ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर सुग्रीव से मित्रता करके सीता के उद्धार करने का परामर्श दिया। पुनः शबरी से मिल कर दोनों भाई दक्षिण के लम्बे चौड़े मार्ग को लाँघते हुए पम्पा सरोवर के किनारे पहुंचे। यहाँ सारस, क्रौञ्च आदि पक्षी गुंजार करते हुए पम्पा की शोभा बढ़ा रहे थे।

पम्पा के किनारे का स्थान बड़ा ही रमणीय था; उस समय वसन्त ऋतु ने आकर पम्पातीर की वनराजि के अङ्ग में श्रीसम्पन्न नवीन वस्तुएं पहिना दी थीं। पास ही ऋष्यमूक पर्वत की श्यामता मेघों में मिल गई थी। पर्वत की चोटी से लेकर नीचे समथर भूमि तक विस्तीर्ण वनराजि के बीच बीच में फूलों से छाये हुए सुदृश्य कर्णिकार के वृक्ष पीताम्बर धारण किये हुए मनुष्यों के समान दिखलाई पड़ते थे। जब पहाड़ की कन्दराओं से निकली हुई और पम्पा में खिले हुए कमलों का चुम्बन करती हुई वायु रामचन्द्र की देह को स्पर्श करती तो रामचन्द्र उस कमलों से आई हुई सुगन्धित वायु के स्पर्श से मन में समझते कि—

"निश्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहरः"।

"यह मनोहर वायु सीता के श्वास लेने के समान सुहावनी लगती है।"

सिन्धुवार और मातुलङ्ग के फूल खिल रहे थे और कोविदार, मल्लिका और कबरी के पुष्प हवा के झकोरों से झुक रहे थे। मोर मोरनियों को लेकर इधर उधर नाच रहे थे, कोकिल करुण-कण्ठ से कुहूकुहू कर रहीं थीं और ताम्र-वर्ण पल्लवों के भीतर रहने से रागरक्त हुए भौंरे उड़ उड़ कर दूसरे पुष्पों पर जा बैठते थे। कङ्कोल, कुरण्ट और चूर्णक के पेड़ पम्पा के किनारे मानो खड़े हुए पहरा दे रहे थे। रामचन्द्र इस प्रकृति के सौन्दर्य में अपने को भूल कर सीता के लिए विलाप करने लगे।

"श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुभाषी च मे प्रिया।"

'वह मेरी प्यारी श्यामा, कमलनयनी और मृदुभाषिणी है।"

"वह वसन्त के आने पर निश्चय ही प्राण दे देगी। लक्ष्मण, यह देख, कारण्डव पक्षी सुन्दर जल में स्नान कर अपनी कान्ता के संग विहार कर रहा है। आज यदि हमारे पास सीता होती तो हम अयोध्या के राज्य अथवा स्वर्ग की भी इच्छा न करते। यहाँ जैसे वसन्त के आने पर पृथ्वी फूली नहीं समाती, क्या जहाँ सीता है, वहाँ भी वसन्त का यह लीलाभिनय होता होगा? ऐसा होने पर उसे कितना परिताप होता होगा? यह पुष्पों से निकली हुई शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु सीता का स्मरण करते ही हमें आग की चिंगारियों के समान लगती है"।

"पश्य लक्ष्मण पुष्पाणि निष्फलानि भवन्ति मे।"

"लक्ष्मण, आज ये सब पुष्प हमारे लिए व्यर्थ हैं।" अब हम अयोध्या लौटकर महाराज जनक से क्या कहेंगे? उस मन्द मन्द हँसती हुई विरहितैषिणी की अपूर्व बातें सुन कर

कब हमारा हृदय शीतल होगा? लक्ष्मण, तुम लौट जाओ हम सीता के विरह में जीते नहीं रह सकेंगे।"

लक्ष्मण रामचन्द्र की यह उन्मत्ता देख कर डर गये और उन्होंने अनेक सान्त्वनापूर्ण वचन कहे पर रामचन्द्र की विकलता किसी प्रकार कम न हुई। रामचन्द्र की कौपीन ढीली हो गई थी, वे कभी मन्द मन्द चल कर गिर पड़ते और कभी उन्मत्त के समान ऊपर को टकटकी लगा कर आँखों से अश्रुओं की धारा बहाते हुए प्रलाप करने लगते थे। ऐसी ही दशा में सुग्रीव के भेजे हुए हनूमान उनके सन्मुख आकर उपस्थित हुए। हनूमान के प्रेमपूर्ण अभिनन्दन से लक्ष्मण हृदय के आवेश को नहीं रोक सके। हनूमान ने सुग्रीव के समाचार कह कर कहा कि, "आप के विशाल और सुडौल महाबाहु परिघ के तुल्य हैं, आप सारी पृथ्वी पर राज्य करने के योग्य हैं, आप इस प्रकार वन वन में क्यों घूम रहे हैं, आपकी अपूर्व देहकान्ति सर्व प्रकार भूषण धारण करने के योग्य है, फिर आप भूषणशून्य कैसे हैं?" लक्ष्मण ने संक्षेप में रामचन्द्र का और अपना हाल कहकर सुग्रीव के आश्रय दान करने को इस प्रकार भिक्षा माँगी कि:—'जो पृथ्वी-मण्डल के स्वामी हैं, जो शरणागतों के आश्रय-दाता हैं, जो हमारे गुरू और जेष्ठ भ्राता हैं-वही रामचन्द्र आज सुग्रीव की शरण आये हैं, आज दुःखसागर में डूबे हुए रामचन्द्र को आश्रय देकर वानराधिपति रक्षा करें।" यह कहते कहते लक्ष्मण के नेत्र अश्रुओं से तर हो गये। जिन्होंने सर्वदा चित्त के वेग को रोका था, रामचन्द्र का दुःख देख कर उनका चित्त भी कातर होगया,—लक्ष्मण रोकर मौन हो गये।

आरण्यकाण्ड के उत्तरार्ध और किष्किन्ध्या के पूर्वार्ध में घटनावली का सम्पूर्ण विराम देखा जाता है, इस जगह महाकाव्य जनसमूह के क्रियाकलापों से विशाल रूप धारण नहीं करता। वन की घनी छाया में रामचन्द्र के विरह-गीतों ने एक मात्र वीणा की करुण-ध्वनि के समान रह रह कर सामने के वन प्रदेश और पम्पा-तीरवर्ती शैलराजि की निस्तब्धता को भङ्ग कर दिया था। इस प्रेमोन्माद ने नव बसन्त के आगमन से प्रफुल्लित प्रकृति में मिलकर कुछ विलक्षण रूप धारण कर लिया था। एक ओर तो बासन्ती, सिन्धुवार और कुन्द के पुष्पों को चुम्बन करती हुई सुगन्धित वायु चल रही थी, कमलों और मत्स्यों से पूर्ण पम्पा का निर्मल जल बह रहा था और श्याम ऋष्यमूक पर्वत की निर्जन जङ्घा आकाश से भी ऊँची उठी हुई थी और दूसरी ओर विरही राजकुमार करुणा भरी विलाप कर रहे थे और बसन्त में निकली हुई हरी हरी कोंपलों को देख कर अपने वेदनातुर हृदय से अनेक प्रकार का प्रलाप बक रहे थे। ये सब एक दिव्य और सुन्दर चित्र के समान दिखलाई पड़ते थे। रामचन्द्र की वैराग्यश्री के स्थान पर उनकी काव्यश्री चमकने लगी थी। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि वैराग्यकठोर रामचन्द्र के चरित्र में इन स्थलों पर वर्णित मृदुता से पाठकों को संतप्त होने का कोई कारण नहीं है।

रामचन्द्र शोकातुर होकर अभी तक केवल स्वयं कष्ट पा रहे थे किन्तु इस समय वे जिस कार्य में प्रवृत्त हुए वह कहाँ तक युक्तियुक्त और नीतिमूलक है इस विषय में कुछ निश्चय नहीं किया जा सकता। बालिबध एक बड़ी जटिल समस्या है। कबन्ध ने मरते समय सुग्रीव से मित्रता

करने का उपदेश दिया था, अतएव रामचन्द्र सुग्रीव को पा कर इस विपत्तिकाल में अपने को भाग्यवान् समझते थे। अग्नि की साक्षी देकर उनकी आपस में मित्रता हुई। सुग्रीव ने कहा—

"यस्त्वमिच्छसि सौहार्द्यं वानरेण मया सह।
रोचते यदि मे सख्यं बाहुरेष प्रसारितः॥
गृह्यतां पाणिना पाणिः.....................।"

"यदि आप मेरे समान बंदर से मित्रता करना चाहते हैं तो मैं यह हाथ पसारता हूं, आप अपने हाथ से मेरा हाथ मिलावें।" उस समय रामचन्द्र ने

"संप्रहृष्टमना हस्तं पीड़यामास पाणिना।"

"बड़े प्रसन्न होकर हाथ से हाथ मिलाया।" किन्तु सुग्रीव उपयुक्त बन्धु नहीं था, वह भी उनके समान वेदनातुर था। बड़े भाई ने उसकी स्त्री हर ली थी। सुग्रीव बालि के भय से दूर दूर देशों में घूम फिर कर टक्कर मार रहा था। इस समय मातङ्ग ऋषि के आस पास की भूमि बालि के लिए शापनिषिद्ध हो गई थी, इसलिए सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत की एक छोटी सी गुफा में आश्रय लेकर स्त्री के विरह में अत्यन्त कष्ट पूर्वक जीवन बिता रहा था। इस वृत्तान्त को जान कर रामचन्द्र उस पर दया से नितान्त विह्वल हो उठे। जिसकी स्त्री को कोई हर ले जाय, उसके समान हतभाग्य संसार में और कौन है? हतभाग्य के संग हतभाग्य की मित्रता केवल हाथ मिला कर ही नहीं हुई किन्तु वह हृदय की सच्ची सहानुभूति के द्वारा दृढ़ हो गई। सुग्रीव अपनी स्त्री-हरण की बातें जब रामचन्द्र से कह रहा था उस समय उसको

आँखों से किनारों को डुबो देने वाले नदी के वेग के समान अश्रुओं का वेग चल रहा था किन्तु उस अश्रुवेग को—

"धारयामास धैर्य्येण सुग्रीवो रामसन्निधौ"

"रामचन्द्र के सामने सुग्रीव ने धीरता पूर्वक धारण किया।" ऐसे समदुःखी सुहृद को पाकर जो रामचन्द्र—

"मुखमश्रुपरिक्लिन्न वस्त्रान्तेन प्रमार्ज्जयत्।"

"स्वयं अपने अश्रुओं से भीगे हुए मुख को कपड़े से पोछेंगे।" इससे बढ़कर और आश्चर्य क्या है? सीता ने ऋष्यमूक पर्वत पर जो अपनी वस्तुएं और भूषण आदि फेंक दिये थे उन्हें सुग्रीव ने उठा कर अच्छी तरह रख छोड़ा था। रामचन्द्र को उन्हें शीघ्र देखने की उत्कण्ठा हुई, जब वह उन्हें ले आया तो वस्त्र और भूषणों को हृदय से लगा कर रामचन्द्र रोने लगे और रावण के कार्य को स्मरण कर—

"निश्वास भृशं सर्पो विलस्थ इव रोषितः।"

"बिल में बैठे हुए सर्प के समान क्रुद्ध होकर फुंकार मारने लगे।" व बालि के बध करने का उन्होंने संकल्प कर लिया। किन्तु एक प्रतापशाली राजा को वृक्ष की ओट में से बाण मार कर उसका बध करना ठीक ठीक क्षत्रियोचित कार्य है या नहीं, इस बात का विचार करने के लिए उनके मन की अवस्था उपयुक्त थी यह नहीं कहा जा सकता। बालि से उन्होंने कहा था कि, "छोटे भाई की स्त्री कन्या के समान है, जो पुरुष उसे हर ले जाय वह मनु के धर्मशास्त्रानुसार मृत्युदण्ड पाने का अधिकारी है।" मनु के मतानुसार दण्ड देने वाले तुम कौन हो? इस प्रश्न की आशङ्का करके ही उन्होंने वारंवार कहा था कि "यह वन-कानन-

शालिनी सशैल भूमि इक्ष्वाकुवंशवालों के अधिकार में है, भरत उस वंश के राजा हैं और हम उनकी आज्ञानुसार पापियों को दण्ड देने के लिए नियुक्त हैं। जिन्हें दण्ड देना है उनके संग क्षत्रियों के समान सन्मुख होकर युद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है।" मालूम होता है उन्होंने आर्य जाति के युद्ध के नियमों का किष्किन्ध्या में पालन करने का यथेष्ट कारण नहीं देखा। बालि जिस अपराध का दोषी था, सुग्रीव भी उसी अपराध में सर्वथा निर्दोष हो यह नहीं कहा जा सकता। समुद्र के किनारे अङ्गद ने वानरमण्डली के मध्य में कहा था—"बड़े भाई की स्त्री माता के समान होती है। यह सुग्रीव बड़े भाई की जीवित अवस्था में ही उसकी पत्नी में आसक्त हो गया था।" अर्थात् जिस समय मायावी का वध करने के लिए बालि गुफा में घुस गया था, उस समय सुग्रीव ने उसे मरा हुआ समझ कर किष्किन्ध्या पुरी और बालि की सहधर्म्मिणी पर अधिकार कर लिया था। मालूम होता है इसी कारण बालि इतना क्रुद्ध हुआ था। अतएव नैतिक विचार से सुग्रीव भी बालि के समान ही अभियुक्त ठहरता है। इन सब बातों की आलोचना करके रामचन्द्र के कार्य का समर्थन करना कठिन है। जब तारा ने बालि से रामचन्द्र की बातें कह कर दूसरे दिन सुग्रीव से युद्ध करने का निषेध किया उस दिन सरलचेता बालि ने कहा था—"क्या विश्वविख्यात यशस्वी धर्मावतार रामचन्द्र कपटभाव से हमारी हत्या करेंगे?" रामचन्द्र इस विश्वास के उपयुक्त पात्र नहीं थे। मरते समय बालि ने रामचन्द्र से ऐसे अनेक कटुवचन कहे थे कि—"आप धर्मध्वज बने हुए अधार्म्मिक हैं, आप तृण से ढके हुए कूए के समान धोखा देनेवाले हैं और

आप महात्मा दशरथ के पुत्र कहलाने के योग्य नहीं हैं।"
बालि की इन सब बातों को वाल्मीकि ने "धर्मसंहत" कहके मुखबन्ध किया है, अतएव रामचन्द्र के इस कार्य का महाकवि नें स्वयं अनुमोदन किया है या नहीं इसमें सन्देह है।

किन्तु यह निश्चय है कि कबन्ध नामक गन्धर्व ने रामचन्द्र को सुग्रीव से मित्रता कर सीता के उद्धार करने का उपदेश दिया था। शोकविह्वल रामचन्द्र ने सुग्रीव को पाकर अपने को कृतार्थ समझा। इधर सुग्रीव से अच्छी तरह परिचय हो जाने पर उन्हें मालूम हुआ कि बालि ने उसकी स्त्री को हर लिया है। सुग्रीव को समदुःखी देखकर उनके लिए उसका पक्षपाती हो जाना स्वाभाविक था। इस नितान्त शोकातुर अवस्था में पूर्वापर सब बातों पर अच्छी तरह विचार करने का उन्हें सुयोग नहीं मिला। पण्डित कृत्तिवास ने अपनी बँगला रामायण में इस विषय में लिखा है कि—

*"कृत्तिवास पण्डितेर घटिल विषाद।
वाली वध करि केन करिला प्रमाद॥"

'प्रमाद' शब्द का अर्थ 'भ्रम' है। किन्तु नैतिक विचार से इस कार्य को भ्रम मान लेने पर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि रामचन्द्र के चरित्र के स्वाभाविकत्व की इस घटना में विशेषरूप से रक्षा हुई है। सीता के विरह में रामचन्द्र जिस प्रकार शोकार्त हो गये थे, इससे वे अन्यथा आचरण करने में समर्थ नहीं थे। यह घटना यदि और तरह से हुई होती तो रामचन्द्र का आदर्श बहुत ऊँचा हो जाता

*अर्थ=कृत्तिवास पंडित को इससे बड़ा विषाद हुआ कि रामचन्द्र ने बालि वध किया अथवा प्रमाद किया।

किन्तु वह यथार्थ से बहुत दूर जा पड़ता और काव्योक्त विषय के सामञ्जस्य की रक्षा न होती। रामचन्द्र ने बालि से अपने समर्थन में कहा था कि—"हमने अग्नि की साक्षी देकर सुग्रीव से मित्रता की है, उसका शत्रु हमारा शत्रु है । हम सत्य की रक्षा करने में बाध्य हैं ।" सत्य की रक्षा करना ही रामचन्द्र के चरित्र का विशेषत्व है । इस दृष्टि से रामचन्द्र के चरित्र की आलोचना करने से बोध होगा कि उनके इस कार्य का कहाँ तक समर्थन किया जा सकता है।

रामचन्द्र ने अपने पराक्रम का परिचय देने के लिए सुग्रीव के सामने एक बाण से सात तालों को भेद डाला था। किन्तु जब देखते हैं कि उन्होंने वृक्ष की ओट में से भ्राता के संग मल्लयुद्ध करते हुए बालि को गुप्त रूप से बाण मार कर उसका बध किया उस समय उनको यह सब पराक्रम दिखलाने की कोई आवश्यकता ही न थी।

ऋष्यमूक पर्वत की गुफाओं को काट छांट कर दुर्गम बन-प्रदेश में बालि ने अपनी राजधानी बनाई थी। इसी जगह सुग्रीव विजयमाला पहिन कर सिंहासन पर अभिषिक्त हुआ। माल्यवान् पर्वत से थोड़ी ही दूर पर विचित्र वन-उपवनों से घिरी हुई किष्किन्ध्या में गाने बजाने का शब्द सुनाई दे रहा था। रामचन्द्र माल्यवान् पर्वत पर भ्राता के संग बैठे हुए उसे सुन सकते थे। किष्किन्ध्या नगरी में चलने के लिए सादर निमन्त्रण देने पर भी वे उस नगरी में नहीं गये। वनवास की प्रतिज्ञा पालन करते हुए वे पर्वत ही पर निवास कर रहे थे। रात दिन कभी रामचन्द्र की आंखों में नींद का नाम नहीं दिखलाई देता था। वे चन्द्रमा के उदय होने पर विधुवदनी सीता का स्मरण कर व्याकुल हो जाते—

"उदयाभ्युदितं दृष्ट्वाशशाङ्कम् स विशेषतः।
आविवेश न तं निद्रा निशासु शयनं गतम् ॥"

"चन्द्रोदय देखकर रात्रि में शैया पर पड़े रहने पर भी उन्हें निद्रा नहीं आती थी।" उस समय सन्ध्या उन्हें चन्दन से चर्चित होकर पर्वत के ऊपर सुशोभित दिखाई देती थी। उस समय वर्षाऋतु थी; रामचन्द्र लगातार जल बरसता हुआ देख कर मन में समझने लगे कि सीता हमारे विरह में आंसू गिरा रही है। नीले मेघों में बिजली को चमकते देख कर रावण द्वारा सीता के हरण का चित्र उनकी आंखों के सामने आ जाता था। माल्यवान् पर्वत पर वर्षा ऋतु के शुभागमन से दृश्यावली ने एक नवीन श्री धारण कर ली थी। कभी आकाश को घेरे हुए बादल बड़े ज़ोर से गर्जते थे, कभी बादलों के खुल जाने पर शैलशिखर ध्यानमग्न योगी के समान शोभित हो रहा था और कभी विशाल नीले आकाश में बादल मानो विश्राम करते हुए धीरे धीरे जा रहे थे। नवीन चावल और धान से छाई हुई पृथ्वी का विचित्र गात्र कम्बल धारण किये हुए सुन्दरी की देह के समान प्रकाशित हो रहा था। इस वर्षाऋतु में—

"प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान्।"

"परदेशी लोग अपने देशों को जाते हैं।" वर्षा में सीता के लिए रामचन्द्र का शोक दूना हो गया; वर्षा के चार महीने उन्हें सौ वर्षों के समान दीर्घ प्रतीत होने लगे और सीता के शोक में यह समय उन्होंने बड़े कष्ट पूर्वक व्यतीत किया—

"चत्वारो वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमाः।"

क्रम से शरद ऋतु के आने पर आकाश निर्मल हो गया, चक्रवधूटियां उड़ गईं, सप्तच्छद वृक्ष की डाली डाली पर

फूल विकसित होने लगे; मेघ, मोर, हाथी और झरनों का गद्‌गद शब्द होना बंद हो गया और शरद् के शुभागमन से नदी के किनारे धीरे धीरे जगमगाने लगे। रामचन्द्र बावली, वन और नदी के किनारों को झांक झांक कर उस मृग-शावक-नयनी का स्मरण करने लगे। सीता के बिना उन्हें किसी प्रकार चैन नहीं पड़ता था।"

"सरांसि सरितो वापीः काननानि वनानि च ।
तां विना मृगशावाक्षीं चरन्नाद्य सुखं लभे ।।"

प्रकृति के विचित्र सौन्दर्य के प्रति रह रह कर उन्होंने विरह से कातर हो अश्रुओं को गिराते हुए कितना आक्षेप नहीं किया! चातक जिस प्रकार दीन होकर मेघ से एक बूंद जल की याचना करता है उसी प्रकार रामचन्द्र सीता के दर्शनों के लिए उत्कण्ठित होने लगे—

"विहङ्ग इव सारङ्गः सलिलं त्रिदशेश्वरात् ।"

तालावों में चकवा चकई क्रीड़ा कर रहे थे और उनके तीरों पर असन, सप्तपर्ण और कोविदार के फूल लगे हुए थे। रामचन्द्र बोले, "शरद ऋतु आ गई है। वर्षा बीतने पर नदियों के सूख जाने पर सुग्रीव ने सीता के उद्धार करने के लिए उद्योग करने की प्रतिज्ञा की थी। अब उद्योग का समय आ गया है पर अभी तक उसकी कोई सूरत नहीं दिखलाई पड़ती। इस समय हम प्रियाहीन और दुःखार्त हैं, हमारा राज्य छिन गया है और सुग्रीव हम पर कृपा नहीं करता। हमने अनाथ, राज्यभ्रष्ट, प्रवासी और दीन-हीन होकर सुग्रीव की शरण ली थी, इसीसे यह सुग्रीव हमारी परवाह नहीं करता, अपना काम बनाकर वह मूर्ख इस समय किष्किन्ध्या

में मौज उड़ा रहा है। लक्ष्मण, तुम उसके पास जाओ, क्या वह पुनः हमारे बाणों के तेज से किष्किन्ध्या को चमकाना चाहता है ?"

"न स सङ्कुचितः पन्था येन वाली हतो गतः ।"

"जिस रास्ते से बाली बध होकर गया है वह मार्ग बंद नहीं हो गया है।" उससे कहना कि वह समय देखकर काम करे जिससे बाली के रास्ते होकर न जाना पड़े।" इतना कहकर उन्होंने लक्ष्मण से यह भी कह दिया कि, "सुग्रीव से सूखे और अप्रिय वचन न कह कर मीठी बातें ही करना।"

यथार्थ ही में सुग्रीव ग्राम्य-सुख में आसक्त हो तारा, रुमा और अन्य ललनाओं से परिवृत हो रहा था। मद से विह्वल अङ्ग और मद्यपान से अरुण नेत्र हुआ सुग्रीव रात को दिन और दिन को रात समझ कर बिता रहा था, यहां तक कि लक्ष्मण के धनुष की भीषण टंकार और बानरों का कोलाहल उसके कानों तक भी नहीं पहुंचा। अङ्गद के सब हाल कहने पर सुग्रीव बोला, "हमने तो कोई बुराई नहीं की है। फिर रामचन्द्र के भाई लक्ष्मण क्यों क्रोध करते हैं ? हम लक्ष्मण वा राम किसी से ज़रा भी नहीं डरते, हमें केवल इस बात की आशङ्का है कि कहीं मित्र का नाश न हो जाय।—

"सर्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं प्रतिपालनम् ।"

"मित्रता करना तो सहज है पर निभाना बड़ा कठिन है।" किन्तु हनूमान ने सुग्रीव को उसका अपराध इस प्रकार समझा दिया कि—"श्याम सप्तच्छद के वृक्ष पुष्पित और पल्लवित हो गये हैं और निर्मल आकाश से बकपंक्तियाँ उड़

गई हैं अतएव शुभ शरद ऋतु का समागम हुआ है। इस शरद ऋतु में तुम रामचन्द्र को सहायता देने का वचन दे चुके हो। इस समय तुम अपना अपराध स्वीकार कर लक्ष्मण से क्षमा प्रार्थना कर लो।" सुग्रीव ने धीरे धीरे अपनी विपज्जनक अवस्था का अनुभव कर लिया और लक्ष्मण के सामने गले में पड़ी हुई मनोहर माला तोड कर रनवास से बिदा हुआ। इसके अनन्तर उसने अपने विशाल राज्य में समस्त प्रजामण्डली में यह आज्ञा प्रचारित कर दी कि--

"अहोभिर्दशभिर्ये च नागच्छन्ति ममाज्ञया।
हन्तव्यास्ते दुरात्मानो राजशासनदूषकाः॥"

"जो दुरात्मा दस दिन के भीतर राजधानी में नहीं आ जायँगे उन्हें राजाज्ञा उल्लंघन करने के अपराध में मृत्युदण्ड दिया जायगा।"

सुग्रीव की आज्ञा से बंदरों ने चारों दिशाओं में एक एक करके सीता को ढूँढ़ डाला पर कहीं उसका पता नहीं लगा। अन्त में महापराक्रमी हनूमान विशाल समुद्र को लांघ कर लङ्का में जा सीता को देख आये।

रामचन्द्र के लिए सीता की चिन्ह-स्वरूप दी हुई मणियों को लेकर हनूमान वापस आ गये। इस आनन्द-संवाद को महाकवि ने उसी दम शोकविह्वल रामचन्द्र को नहीं सुनाया। हनूमान ने पहिले ही पहिल सीता का संवाद समुद्र के तट पर आशा लगाये हुए वानरमण्डली को सुनाया। वे लोग इस समाचार से बड़े ही प्रसन्न हुए पर तत्काल ही वे रामचन्द्र के पास नहीं गये। उन्होंने दलबद्ध होकर सुग्रीव के विशाल मधुवन में प्रवेश किया। इस मधुवन में बिना

सुग्रीव की विशेष आज्ञा के कोई नहीं घुस सकता था। मधुवन में दधिमुख नामक एक व्यक्ति पहरा दे रहा था। सीता के संवाद से पुलकित होकर बंदरों ने उस मधुवन में प्रवेश किया। दधिमुख ने उन्हें मधुवन में जाने से रोका पर उस आनन्द-मङ्गल के समय में वे किसकी मानने वाले थे? दधिमुख ने लाचार होकर उन्हें बलपूर्वक रोकना चाहा। दधिमुख के इस व्यवहार से वे सब मिलकर उसे "भ्रकुटिं दर्शयन्ति हि" आँख दिखाने लगे। इसके अनन्तर दधिमुख के बल का प्रयोग करने पर उन्होंने दलबद्ध होकर उसे खूब मारा। दधिमुख ने रोते हुए जाकर सुग्रीव से दोहाई दी। इस बीच में सूने मधुवन में मधु पी पी कर यौवन से उन्मत्त बंदर—

"गायन्ति केचित्, प्रणयन्ति केचित्,
पठन्ति केचित्, प्रचरन्ति केचित्।"

"कोई गाने लगे, कोई प्रणाम करने लगे, कोई पाठ करने लगे और कोई एक दूसरे को प्रचारने लगे।" इस प्रकार वे आनन्द में मग्न हो रहे थे।

सुग्रीव राम-लक्ष्मण के पास बैठा हुआ था; दधिमुख वहाँ जाकर सुग्रीव का पैर पकड़ कर रोने लगा। सुग्रीव के उसे अभय दान देने पर और उसके शोक का कारण पूछने पर उसने सब बातें कह सुनाईं। सुग्रीव ने कहा, "सीता की खोज में लगे हुए बंदर बिलकुल हताश और दुःखार्त होकर दिन काट रहे थे। अकस्मात् उनका यह भाव कैसे बदल गया। अवश्य उन्हें कोई हर्षसमाचार मिला है; हो न हो उन्हें सीता का पता लग गया है।" सहसा इस सुख का

पूर्वाभास पाकर रामचन्द्र, जैसे कोई प्यास से तड़फड़ाता हुआ आदमी अमृत की एक बूँद पीकर उसके लिए और भी व्याकुल हो जाता है, उसी प्रकार आग्रहान्वित हुए। सुग्रीव की इस अमृतवर्षिणी वाणी ने उन्हें सीता के समाचार सुनने के लिए प्रस्तुत कर दिया।

इसके अनन्तर सुग्रीव की आज्ञा से सब बंदर उस जगह आ उपस्थित हुए। हनूमान ने रामचन्द्र को सीता की दी हुई चिन्ह-मणि देकर सीता की दशा का वर्णन किया—

"अधः शय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे।"

"सीता पृथिवी पर सोती है, उसका शरीर पीला पड़ गया है और वह पाले से सताई हुई कमलिनी के समान हो गई है।" रामचन्द्र उस मणि को हृदय में धारण कर रोने लगे। उस मणि के स्पर्श से उन्हें इतना सुख हुआ मानो सीता के अङ्ग ही का स्पर्श किया हो और सुग्रीव से बोले, "बछड़े को देखकर जैसे गाय के थन में से अपने आप दूध निकलने लगता है, वैसे ही इस मणि को देख कर हमारा हृदय भी प्रेम से द्रवीभूत हो गया है।" और बारम्बार हनूमान से पूछने लगे कि—"हमारी भामिनी ने मधुर कण्ठ से जो कुछ कहा हो उसे कहो। रोगी जैसे औषधि से जीवन पाता है सीता की बातों से हमारी भी वही दशा होती है।—

"दुःखात् दुःखतरं प्राप्य कथं जीवति जानकी।"

"दुःख से अधिकतर दुःख को पा कर सीता किस प्रकार जीवन धारण कर रही है?"

हनूमान से सब बातें अच्छी तरह जानकर रामचन्द्र बोले, "इस अपूर्व सुखप्रद संवाद देने के बदले में हम तुम्हें

क्या दें ? हमारे पास है ही क्या ? हमारा एक मात्र सब से बड़ा पुरस्कार तुम्हें आलिङ्गन करना है।" यह कहकर रामचन्द्र ने उन्हें आलिङ्गन किया।

हनूमान ने लङ्कापुरी का जो वर्णन किया वह आशङ्काजनक था। विशाल लङ्कापुरी को गगनस्पर्शी दीवारें चारों ओर से घेरे हुए थीं। उसके चार बड़े मज़बूत दरवाज़े थे और वे अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से रक्षित थे। उन दीवालों के उस पार भयङ्कर खाई थी जिसमें मगर और कछुवे मौजूद थे। उस खाई पर यन्त्रों के द्वारा चार पुल लगे हुए थे। यदि शत्रु की फौज उन पुलों के ऊपर आवे तो ज़रा कल दबा देने ही से वह खाई में गिर पड़े। कल घुमाने से इच्छानुसार वे सब पुल उठाये गिराये जा सकते थे। उनमें एक पुल बहुत बड़ा था और उसको कितनी ही मज़बूत दीवारें सोने की बनी हुई थीं। त्रिकूट पर्वत के ऊपर स्थित लङ्कापुरी देवताओं के लिए भी अगम्य हो रही थी। सैकड़ों विकृतमुख और भूरे बालवाले और बरछी-बाण और शूलधारी राक्षसों की सेना उस विशाल परकोटे और खाई के मार्ग की रक्षा कर रही थी। फिर लङ्कापुरी के वीरों के पराक्रम का कहना ही क्या था! उनमें से कोई ऐरावत हाथी के दाँत उखाड़ चुका था और कोई यमपुरी को घेर कर यमराज पर शासन कर चुका था। इस विशाल और दुर्गम लङ्कापुरी से सीता का उद्धार करना होगा। रामचन्द्र के आगमन का पहले ही समाचार मालूम होने से शत्रु होशियार हो गये थे। रामचन्द्र सुग्रीव की सब सेना को लेकर पहाड़ी मार्ग से होते हुए समुद्र की ओर जाने लगे। मार्ग में वृक्ष असंख्य पुष्पों और फलों से लदे

हुए थे किन्तु रामचन्द्र ने सारी सेना को सावधान कर दिया था कि बिना परीक्षा किये किसी फल को न चाखें क्या जाने रावण के गुप्तचरों ने उन्हें पहले ही से विषैला कर दिया हो। इसी समय ज्येष्ठ भ्राता से अपमानित होकर विभीषण रामचन्द्र की शरण में आया। उसे अपने पक्ष में ग्रहण करने के सम्बन्ध में अधिकांश लोगों ने असम्मति प्रगट की, विशेष कर सुग्रीव ने अपरिचित शत्रु के पक्षवाले को अपने डेरों में स्थान देने का सर्वथा प्रतिवाद किया किन्तु रामचन्द्र शरणागत को किसी प्रकार परित्याग करने में राज़ी नहीं हुए।

समुद्र के किनारे पहुंच कर विशाल सेना ने समुद्र की अनन्त जल-क्रीड़ा देखी। कहीं जलराशि फेन से सुशोभित ओठों से खिलखिला कर अट्टहास करती थी और कहीं प्रचण्ड लहरों के जोर से उछल उछल कर नाचती थी। तिमि, तिमिङ्गिल-प्रभृति जल के असुरों के आन्दोलन से उसमें बहुत अधिक भँवर पड़ रहे थे और वायु के वेग से उचक उचक कर मानो विपुल सलिलवक्ष आकाश को गाढ़ आलिङ्गन कर रहा था। अनन्त समुद्र की एक मात्र उपमा आकाश और आकाश की उपमा समुद्र था। समुद्र और आकाश दोनों ही वायु से आलोड़ित होकर मानो किसी मन्त्र का साधन कर रहे थे। समुद्र आकाश के समान और आकाश समुद्र के समान होने से समुद्र और आकाश एक से दीखते थे, जैसे समुद्र का जल और आकाश का प्रतिविम्ब; समुद्र की लहरें और आकाश के मेघ; समुद्र के मोती और आकाश के तारे; और अधिक कहाँ तक गिनावें? समुद्र आकाश में मिल गया था और आकाश समुद्र में मिल गया था। अनन्त काल से मानो आकाश और समुद्र दिग्बन्धुओं के अञ्चलों

का आश्रय कर के आपस में एक दूसरे को स्पर्श करना चाहते थे। समुद्र में नीचे अथाह जल में कछवे और मगर निवास करते थे। लहरों का झङ्कार करना ऐसा मालूम होता था मानो अनन्त क्षेत्र में प्रलाप ही प्रलाप सुनाई दे रहा हो। चुपचाप विस्मय से तीर पर सुग्रीव की असंख्य सेना खड़ी होकर इस असीम जलराशि का दर्शन करने लगी। अब इसे पार कैसे करेंगे?

रामचन्द्र ने अपनी परिघ तुल्य दाहिनी भुजा का तकिया बना लिया। जो बाहु एक समय सुगन्ध, चन्दन और अनेक अङ्गरागों से सेवित होती थी, जो बाहु चर्माच्छादित अत्यन्त कोमल शैया पर रहने की अभ्यस्त थी, जिसका सहारा लगा कर एकाकिनी सीता प्रेमालाप करती और सुख से शयन करती थी, जो शत्रुओं का दर्प-दलन करने वाली और सुहृदों का चिर-आनन्द और अवलम्बन थी और जो सहस्रों गोदान के पुण्य से पवित्र हुई थी, आज उसी महाबाहु का सिराहना लगा कर रामचन्द्र ने कुशा की शैया पर तीन रात्रि और तीन दिन निराहार व्रत धारण करके मौन रहकर व्यतीत कर दिये।

"अद्य मे मरणं वापि तरणं सागरस्य वा।"

"आज हम या तो समुद्र को पार करेंगे या प्राण विसर्जन कर देंगे।" सेतु बांधने के निमित्त उन्होंने यह तपस्या कर समुद्र की उपासना की। रामायण में यह वर्णित है कि समुद्र ने इस तपस्या से भी उन्हें दर्शन नहीं दिया, तब रामचन्द्र हाथ में धनुष लेकर समुद्र पर शासन करने के लिये उद्यत हुए। उनके विराट् धनुष से लगातार निकले हुए बाणों से शङ्खशुक्तिका-पूर्ण और मग्न-शैल मालावृत्त महासमुद्र व्यथित

और कम्पित हो गया। उस समय गङ्गा, सिन्धु प्रभृति नद-नदियों से परिवृत्त रक्त-माला और वस्त्र पहिरे और मुकुट और कुण्डल धारण किये समुद्र हाथ जोड़कर उनके सामने आ उपस्थित हुआ और सेतु बाँधने का उपाय बता गया।

विशाल समुद्र पर विशाल सेतु निर्मित हुआ। सेतु टेढ़ा न होने पावे इस लिए सेना में से कोई सूत और कोई गज्ज ले कर खड़ा हो गया। शिलाओं और वृक्षों आदि के सहारे से नल ने थोड़े ही समय में सेतु बना कर तैयार कर दिया। सेतु के तैयार हो जाने पर रामचन्द्र सेना सहित लङ्का में प्रवेश कर सीता के लिए बड़े व्याकुल हुए। "जो वायु सीता को स्पर्श करती है वह हमें स्पर्श कर पवित्र करे और जो चन्द्रमा हम देखते हैं सीता भी इसी चन्द्रमा को अश्रुसिक्त दृष्टि से देखकर उन्मादिनी हो जाती होगी—

"रात्रिन्दिवं शरीरं मे दह्यते मदनाग्निना।"

"रात दिन हम उसके विरह की अग्नि से दग्ध हो रहे हैं।"

"कदा सुचारुदन्तौष्ठं तस्या पद्ममिवाननम्।
ईषदुन्नम्य पश्यामि रसायनमिवातुरः॥"

"कब हम उसके सुन्दर दाँत और अधर-पल्लव और पद्म के समान उसका सुन्दर मुख हाथ में लेकर देखेंगे। उसका वह दर्शन रोगी के लिए रसायन के समान हमें परम शान्ति प्रदान करेगा।"

इसके अनन्तर युद्ध आरम्भ हुआ। रावण के मन्त्रियों ने उसे अनेक प्रकार का परामर्श दिया। एक ने कहा, "राक्षसों की सेना का एक दल मनुष्यों का वेश धारण कर रामचन्द्र के पास जाकर कहे कि "भरत ने आपकी सहायता के लिए

हमें भेजा है" इस प्रकार बानरों की सेना में प्रवेश कर हम लोग अनायास ही उसे नाश कर डालेंगे।" रावण ने सेना सहित सुग्रीव को रामचन्द्र का पक्ष छोड़कर अपने पक्ष में मिलाने के लिए अनेक प्रकार का लोभ दिखाया पर उसका यह उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। रावण के गुप्तचर अनेक प्रकार के कपट रूप धारण कर रामचन्द्र की सेना की व्यूहरचना देखकर और उसकी गणना करके जाने लगे। बंदर उन्हें पकड़ कर मारते थे पर रामचन्द्र उन्हें छुड़वा देते थे। सुग्रीव और विभीषण उनके बध करने का परामर्श देते थे कि "ये दूत नहीं हैं गुप्तचर हैं अतएव युद्ध के नियमानुसार इनका बध होना उचित है" पर रामचन्द्र उनकी बात नहीं मानते थे और उनके शरणागत होने पर उन्हें योंही छुड़वा देते थे। एक ऐसा ही गुप्तचर दण्ड देने के लिए उनके पास लाया गया था, उसके शरणागत होने पर रामचन्द्र बोले—"तुम अच्छी तरह से हमारी सेना को गिन जाओ। तुम्हारे स्वामी ने जिस उद्देश्य से तुम्हें भेजा है हम उसमें तुम्हारी सहायता करते हैं। तुम हमारी व्यूहरचना और छिद्र जो कुछ है देख जाओ। यदि तुम्हारी समझ में पूरी तरह न आवे तो तुम्हें हमारी आज्ञानुसार विभीषण सब दिखा देंगे।" रामचन्द्र ने इस प्रकार की नीति का अवलम्बन करके धर्म-युद्ध में राक्षसों को मार गिराया। एक दिन घमासान युद्ध में रावण बिलकुल श्रीहीन हो गया था। राक्षसराज रावण लक्ष्मण को शक्तिहीन और मुर्छित कर रामचन्द्र की बहुत सी सेना को नष्टकर अन्त में रामचन्द्र से परास्त हुआ। उसके मुकुट कट कर पृथ्वी पर गिर पड़े, उसके मस्तक पर लगा हुआ स्वर्णछत्र शीर्ण शलाका के समान

टूट कर गिर पड़ा और रामचन्द्र के बाणों से विदग्ध होकर रावण को भागने के लिए मार्ग नहीं मिला। उस समय रामचन्द्र ने रावण से कहा, "हे राक्षस, तुम युद्ध में हमारी बहुत सी सेना को नष्ट कर बिलकुल थक गये हो। हम परिश्रान्त शत्रु से नहीं लड़ना चाहते। तुम आज रात को घर जाकर आराम करो, कल बलवान् होकर हमसे पुनः युद्ध करना।"

लक्ष्मण रावण की शक्ति लगने से मूर्छित हो गये थे। रामचन्द्र की सेना में लक्ष्मण की उस हृदयभेदी शक्ति को निकालने की किसी की हिम्मत नहीं हुई और उस समय उसके निकाले बिना लक्ष्मण प्राण त्याग कर देते। रामचन्द्र ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से उस शक्ति को निकाल कर फेंक दिया और मुमूर्षु लक्ष्मण को छाती से लगा कर उनकी शत्रु के हाथ से रक्षा करने लगे। उस समय रावण के बाणों से उनकी पीठ छिन्नभिन्न हो रही थी पर भ्रातृवत्सल रामचन्द्र ने उस ओर दृष्टिपात तक नहीं किया।

कपट की रची हुई सीता का इन्द्रजित के द्वारा काटा जाना सुनकर रामचन्द्र अचेत होकर गिर पड़े। उस समय सेना उनके ऊपर कमल से सुगन्धित और शीतल जल की धारा छोड़कर उन्हें होश में लाने का यत्न करने लगी। उन्होंने मुंदे हुए नेत्रों से विभीषण को यह कहते हुए सुना कि "यह सीता कपट की सीता है असली सीता नहीं है, सीता अशोक बन में प्रसन्न बैठी है।" यह सुन कर रामचन्द्र बोले, "तुम जो कुछ कहते हो वह हमारी समझ में ठीक नहीं आया, तुम फिर कहो।" शोक से मुह्यमान रामचन्द्र का यह मौन और करुण-दृश्य बड़ा मर्मस्पर्शी है।

भीषण युद्ध में एक एक करके दुर्दान्त राक्षसों ने प्राण त्याग कर दिये। अतिकाय, त्रिशरा, नरान्तक, देवान्तक, महापार्श्व, महोदर, अकम्पन, कुम्भकर्ण, इन्द्रजित प्रभृति महारथी समरभूमि में काम आगये। दो बार रामचन्द्र इन्द्रजीत के साथ कपटयुद्ध में परास्त हुए किन्तु ईश्वर की कृपा से साफ बच गये। इस युद्ध में राक्षसों ने रामचन्द्र से किसी प्रकार की विनय प्रार्थना नहीं की और जो सब भक्ति की बातें कृत्तिवास, तुलसीदास प्रभृति कवियों की प्रचलित रामायणों में मिलती हैं वे इस मूल्यकाव्य में नहीं हैं। भीषण युद्धक्षेत्र किस प्रकार भक्ति के तीर्थधाम में परिणत हो जाता है और अस्त्रमय रणक्षेत्र किस तरह अश्रुमय हो जाता है, यह बात काव्य-संसार में एक अद्भुत पहेली के सामान बोध होती है और इसे हम केवल बंगला और हिन्दी रामायणों ही में पाते हैं:—

"रामरावण योर्युद्धं रामरावणयोरिव।"

"रामचन्द्र और रावण का युद्ध राम-रावण के युद्ध के समान ही हुआ, उसकी और उपमा नहीं हो सकती।" रावण के साथ अन्तिम युद्ध बड़ा ही भीषण हुआ; दोनों के धनुषों से निकले हुए कराल बाणों की ज्योति से दशों दिशाएँ जगमगा उठीं। दिग्वधुओं के खुले हुए केशकलापों में बाणों की अग्नि का तेज चमकने लगा। जब किसी प्रकार रामचन्द्र रावण का बध न कर सके तो क्षण भर तक वे चित्र लिखे से चुपचाप खड़े रहे और अगस्त्य ऋषि के उपदेशानुसार सूर्यनारायण का ध्यान कर उनकी स्तुति करने लगे कि—"हे तमोघ्न, हे हिमघ्न, हे शत्रुघ्न, हे ज्योतिष्पति, हे लोकसाक्षि, हे व्योमनाथ" इस प्रकार सूर्यनारायण का ध्यान

करते करते उनके शरीर से नवीन शक्ति और तेज प्रकाशित होने लगा। अब रावण की होनी आ पहुंची।

रावण मारा गया। जो रामचन्द्र सीता के लिए इतने दिनों से उन्मत्त से हो रहे थे, रावण के बध होने पर उनकी वह व्याकुलता यकायक नष्ट हो गई। उनके अपूर्व प्रेमोच्छ्वास को स्मरण कर मन में यही आता है कि रावण के मारे जाने पर वे अशोकवाटिका में दौड़कर पूर्णचन्द्रानना सीता को देखकर अपने हृदय को शीतल करेंगे। किन्तु उन्होंने सहसा एक शान्त और अचञ्चल भाव धारण कर हमें आश्चर्य में डाल दिया है। उन्होंने रावण का अन्तिम संस्कार करने के लिए विभीषण को शीघ्रता करने का उपदेश दिया। चन्दन और अगर से राक्षसराज रावण का शरीर जल कर भस्म हो गया। रामचन्द्र ने विभीषण को राजसिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया। यह सब हो चुकने पर उन्होंने हनूमान को अशोकबाटिका में भेजा—सीता को लाने के लिए नहीं—किन्तु उसे यह संदेशा देने के लिए कि रावण को मारकर रामचन्द्र सेना सहित कुशल हैं। हनूमान से उन्होंने कह दिया था कि तुम राक्षसराज विभीषण की आज्ञा लेकर अशोकवन में जाना।

हनूमान से यह शुभ संवाद सुनकर सीता हर्ष के मारे कुछ काल तक एक शब्द भी न बोल सकी। उसके दोनों पद्मपत्र नेत्रों से प्रेमाश्रु की धारा बह रही थी और उसका शोकशीर्ण और उपवासकृश मुखमण्डल एक नवीन श्री से सुशोभित हो रहा था। हनूमान ने जब यह पूछा कि "क्या तुम कुछ नहीं कहना चाहतीं?" उस समय दीनहीन जानकी बोली, "इस पृथ्वी में ऐसा कोई धन या रत्न नहीं है जिसे दे

कर हम इस बधाई के आनन्द को प्रगट कर सकें।" जिन राक्षसियों ने सीता को नाना प्रकार के कष्ट दिये थे उन्हें हनूमान जब मारने के लिये उद्यत हुए तब सीता ने उन्हें यह कह कर मनाकर दिया कि—"अपने प्रभु की आज्ञा से इन्होंने हमें जो कष्ट दिया है उसके लिए इन्हें दण्ड देना योग्य नहीं है।" बिदा करते समय सीता ने हनूमान के हाथ यह सँदेशा भेजा कि वे स्वामी के पूर्ण चन्द्रानन के दर्शन की भिक्षा चाहती हैं। हनूमान ने रामचन्द्र को सीता का सँदेशा कह सुनाया कि—

"सा हि शोकसमाविष्टा वाष्पपर्य्याकुलेक्षणा।
मैथिली विजयं श्रुत्वा द्रष्टुं त्वामभिकाङ्क्षति॥"

"शोकातुर अश्रुमुखी सीता आपके विजय की कथा सुन कर आपके दर्शन करने की अभिलाषा करती है।" सीता की इस प्रार्थना को सुनकर रामचन्द्र गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगे। अकस्मात् उनका हृदय पुलकित हो उठा और उनकी आँख में आँसू की बूँद दिखलाई पड़ी किन्तु उसे उन्होंने रोक लिया। वे ज़मीन की ओर टकटकी लगाकर देखते रहे और उस समय उनके हृदय से एक मर्मविदारक साँस निकली। इसके अनन्तर विभीषण की ओर देख कर बोले—"सीता के केशकलापों को अच्छी तरह काट छाँटकर और उसे सुन्दर वस्त्र और अलङ्कारों से सज्जित कर यहाँ लाने की आज्ञा दो, हम उसे देखना चाहते हैं।"

विभीषण ने स्वयं जाकर सीता को रामचन्द्र की आज्ञा सुनाई। नेत्रों में जल भर कर सीता बोली—

"अस्नाता द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसेश्वर ।"

"इस समय मैं जैसी हूं वैसी ही बिना स्नान किये भर्ता को देखना चाहती हूं ।" किन्तु विभीषण बोला, "रामचन्द्र ने जैसी आज्ञा दी है आपको वैसे ही करना उचित है ।"

तब जटिल केशकलापों की बहुत दिनों बाद सफाई हुई । दिव्य वस्त्रों को धारण कर और सुन्दर आभूषणों से विभूषित होकर असामान्य श्रीशालिनी सीतादेवी पालकी पर चढ़ कर चलीं । सीता को देखने के लिए सैकड़ों बन्दर और राक्षसों ने पालकी के पास भीड़ कर ली थी । विभीषण उन्हें बराबर बेतों से मारते जाते थे किन्तु इससे रामचन्द्र क्रुद्ध होकर विभीषण से बोले, "विपत्ति-काल में, युद्ध में और स्वयंवर में कुलकामिनियों का दर्शन दूषणीय नहीं होता । सीता के समान विपद्ग्रस्त और दुखिया कौन है ? उसे देखने में कोई हर्ज नहीं है । सीता को पालकी से उतर कर हमारे पास पैदल आने के लिए कहो ।" इस बात से विभीषण, सुग्रीव और लक्ष्मण अत्यन्त दुःखित हुए । उस विशाल सेना के बीच में होकर पास ही पास रास्ता देती हुई, सैकड़ों लोगों की दृष्टि पड़ने से लज्जा के मारे काँपती हुई तन्वी सीतादेवी ने रामचन्द्र के सम्मुख उपस्थित होकर उस चिर-अभिलषित प्रियतम के मुखचन्द्र का दर्शन किया ।

उस समय रामचन्द्र ने कहा—"आज हमारा परिश्रम सफल हुआ, जो व्यक्ति अपमानित होकर बदला नहीं लेता, वह पौरुषहीन और दया का पात्र है । आज हनूमान का समुद्रलङ्घन और सुग्रीव, विभीषण और सारी सेना का परिश्रम सार्थक हुआ ।" इस बात से सीतादेवी का मुख-

कमल हर्ष से खिल उठा और उसके चक्षुओं से आनन्दाश्रु निकलने लगे। किन्तु—

"जनवादभयाद्राज्ञो बभूव हृदयं द्विधा।"

"लोकापवाद के भय से रामचन्द्र के हृदय में द्विविधा होने लगी।"

वे बड़े कष्टपूर्वक अपने हृदय के आवेग को रोक कर बोले—"हम मान के आकाङ्क्षी हैं, रावण ने हमारा अपमान किया हमने उसका बदला ले लिया। पवित्र इक्ष्वाकुवंश के गौरव की रक्षा के लिए हमने युद्ध में रावण को मारा है किन्तु तुम राक्षस के गृह में रहीं, हमें तुम्हारे चरित्र में सन्देह है। तुम हमको बहुत ही प्यारी हो किन्तु जैसे आँख में रोग होने पर लोग दीपक की ज्योति नहीं सह सकते उसी प्रकार तुम्हें देख कर हम कष्ट पा रहे हैं। ऐसा पौरुषहीन व्यक्ति कौन है जो शत्रु के गृह में रही हुई अपनी स्त्री को पुनः ग्रहण कर सुखी हो! तुम रावण के अङ्क से लगी हो, रावण की बुरी आँखों से देखी गई हो, तुम्हें गृह में ले जाने पर हमारे पवित्र कुल में कलङ्क लगेगा। हमने सुहृदों के बाहुबल से इस युद्ध में जो विजय पाई है वह तुम्हारे लिए नहीं है किन्तु हमने अपने वंश के गौरव की रक्षा की है। दशों दिशाएँ पड़ी हुई हैं, इसी क्षण जिधर तुम्हारी इच्छा हो उधर चली जाओ। लक्ष्मण, भरत, सुग्रीव, अथवा विभीषण जिस पर तुम्हारा मन हो उसे ही अपना लो।"

रामचन्द्र की इन बातों से सीता के मन की दशा क्या हुई इसका अनुभव किया जा सकता है। चारों ओर विशाल सेना विस्मयपूर्वक हजारों कानों से रामचन्द्र की यह बात

सुन, कर व्यथित हुई । घोर लज्जा के कारण सीता ने नीचा मुंह कर लिया और वह लज्जा के मारे मानो अपने शरीर के भीतर ही घुसना चाहती थी, पर वह क्षत्राणी थी और अपूर्व तेजस्विनी थी; वह चक्षुओं को प्लावित कर देने वाले अश्रुओं को एक हाथ से पोंछकर स्वामी से बोली—"तुम हमें कर्ण-कटु और निन्दित बातें क्यों कहते हो ? ऐसी बातें साधारण लोगों ही को अपनी स्त्रियों से कहना शोभा देता है । दैव-वश हमें गात्रस्पर्श दोष हुआ है पर उसके लिए हम अपरा-धिनी नहीं हैं. हमारे मन में सर्वदा तुम ही विराजते हो । यदि तुमने हमें ग्रहण न करना ही निश्चय कर लिया था तो पहले ही जब हनूमान को लङ्का भेजा था उसी समय यह बात क्यों न कहलवा दी ? ऐसा होने पर तुमसे त्यागी हुई हम उसी समय अपना प्राण दे देतीं ।" यह कह कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से लक्ष्मण की ओर देख कर बोलीं । "लक्ष्मण, तुम चिता तैयार करो । हम और इस अपवाद-कलङ्कित जीवन को धारण करना नहीं चाहतीं ।" लक्ष्मण ने राम-चन्द्र के मुख की ओर देखा पर असम्मति का कोई लक्षण, नहीं पाया । चिता बनाई गई, सीता ने नीचा मुख करके धनुष्पाणि रामचद्र की प्रदक्षिणा करके जलती हुई अग्नि में अपने शरीर की आहुति दे दी । अग्नि प्रवेश करने के पहले सीता बोली-"हम राम को छोड़ कर मन में और किसी को नही चाहतीं । हे पवित्र सर्वसाक्षी अग्निदेवता, तुम हमें शरण दो । हम विशुद्धचरित्रा हैं किन्तु रामचन्द्र हमें दुष्टा समझते हैं, अतएव हे वह्नि, तुम हमें आश्रय दान करो ।"

अग्नि में स्वर्णप्रतिमा सीता विलीन हो गई । मुहूर्त भर के लिए सजल नेत्रों से रामचन्द्र शोकातुर हो गये; उस

समय अग्नि ने सीता को वापस लाकर रामचन्द्र के हवाले किया। देवतागण स्वर्ग से आकर अपना नाम ले लेकर रामचन्द्र से सीता के सम्बन्ध में अनेक बातें कहने लगे। रामचन्द्र पुनः सीता को पाकर हर्षित होकर बोले, "सीता शुद्धचरित्रा है और सतीत्व की प्रभा से उसने अपनी रक्षा की है, यह हमने मन में जान लिया है। यदि हम सीता को मिलते ही ग्रहण कर लेते तो लोग हमें कामातुर कहते और हम पर यह अपवाद लगाते कि हमने किसी प्रकार का विचार न कर स्त्रैणता के वशीभूत होकर उसे ग्रहण कर लिया है।—

"विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा।"

"सीता तीनों लोकों में विशुद्ध है" यह हम जानते हैं। इसके अनन्तर देवताओं ने—

"भवन्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः।"

"आप स्वयं चक्रधारी नारायण हैं" इत्यादि स्तुति द्वारा उनका अभिनन्दन किया और फिर स्वर्ग को चले गये।

इसके पश्चात् पत्नी और भ्राता सहित रामचन्द्र ने पुष्पक-विमान पर चढ़कर विभीषण-प्रमुख राक्षसों और सुग्रीव-प्रमुख वानरों से परिवृत्त हो अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में सीता के इच्छानुसार किष्किन्धा की पुरवधुओं को विमान पर चढ़ा लिया। विजयी रामचन्द्र को लेकर पुष्पक विमान आकाश में होकर जाने लगा। समुद्र के तट से आई हुई शीतल वायु केतकी के पुष्पों का बहुत सा पराग आकाश में उड़ाने लगी और सीता का सुन्दर मुख उस पुष्पराग से संच्छन्न हो गया। दूर से ताल-तमालों से शोभित समुद्र का

किनारा बहुत ही पतला दिखलाई पड़ता था। रामचन्द्र ने सीता को विमान पर से चिर-परिचित दण्डकारण्य के विविध स्थान दिखा कर उसे पहली बातें स्मरण कराने लगे। इसी स्थान के संक्षिप्त वर्णन को विस्तृत कर कालिदास ने रघुवंश के अपूर्व तेरहवें सर्ग की रचना की है।

वनगमन के ठीक चौदह वर्ष बाद रामचन्द्र भरद्वाज के आश्रम में जा उपस्थित हुए। वहाँ जाकर सुना कि भरत उनकी पादुकाओं के ऊपर राजच्छत्र धारण कर प्रतिनिधि स्वरूप नन्दिग्राम में राज्य कर रहे हैं। भरद्वाज के आश्रम से रामचन्द्र ने हनूमान को कपट रूप धारण कर भरत के पास जाने की आज्ञा दी। यह भी कहा कि, "मार्ग में शृङ्गबेरपुर के अधिपति गुहक से भी, हमारे आने का समाचार कहते जाना।" हनूमान से उन्होंने कह दिया कि "भरत के पास जाकर उनसे युद्ध-वृत्तान्त, सीता का उद्धार और विभीषण और सुग्रीव जैसे मित्रों की विपुल सेना सहित हमारा अयोध्या लौटना कह देना।" अन्त में यह भी कहा कि "ये सब बातें सुनकर भरत के मुख का भाव कैसा होता है यह अच्छी तरह देखना।" किसी प्रकार का अप्रीतिकर भाव लक्षित होने पर वे अयोध्या नहीं जायंगे और यदि दीर्घ काल तक धन-धान्य-शालिनी बसुन्धरा का शासन करने से उन्हें राज्यकामना हो गई होगी तो वे भरत ही को राज्य प्रदान कर देंगे।

मार्ग में हनूमान ने गुहकराज को रामचन्द्र के आगमन का शुभसंवाद सुनाया और वहाँ से पुनः अयोध्या से एक कोस दूर स्थित नन्दिग्राम में जा उपस्थित हुए। वहाँ जा कर—

"ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम्।
जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्षितं॥"
समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम्।
नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसं॥
पादुके ते पुरस्कृत्य प्रशासन्तुं वसुन्धराम्।"

देखा कि भरत आश्रम में निवास करते हैं और दीन और कृश हैं। उनका शरीर अमार्ज्जित और मलिन है और वे भ्राता के दुःख से दुःखी हैं। उनके माथे पर जटाजूट बंधा है और वे वल्कल और मृगचर्म पहिरे हैं। वे सर्वदा आत्मविषयक ध्यान में मग्न रहते और ब्रह्मर्षि के समान तेजस्वी हैं। पादुकाओं से निवेदन करके पृथ्वी पर राज्य करते हैं। हनूमान ने जाकर उनसे कहा—

"वसन्तं दण्डकारण्ये यस्त्वं चीरजटाधरम्।
अनुशोचसि काकुत्स्थं स त्वां कुशलमब्रवीत्॥"

"दण्डकारण्य-वासी जटाचीर-धारी जिन रामचन्द्र के लिए तुम इतने व्याकुल हो रहे हो उन्होंने आपसे अपनी कुशल कही है।" रामचन्द्र के लौटने के समाचार सुन कर भरत के शश्रुओं में बहुत दिनों से रुके हुए आँसू बाहर निकल पड़े जिनके लिए उन्होंने सब भोग-विलास छोड़ कर जटिल और मलिन शरीर से इतने दिनों तक कठोर संन्यास धारण किया था और जिन रामचन्द्र की बातें स्मरण कर उनका हृदय सैकड़ों ही बार विदीर्ण हुआ था, आज उनके उसी चौदह वर्ष के कठोर व्रत-पालन के फल-स्वरूप रामचन्द्र लौट कर गृह आये हैं। यह संवाद सुन कर उन्होंने सजल नेत्रों से हनूमान को आलिङ्गन कर उन्हें अश्रुजल से अभि-

षिक्त किया और उनके लिए अनेक उपचारों सहित नाना प्रकार के बहुमूल्य पुरस्कारों की योजना की ।

समस्त मन्त्रियों को लेकर भरत रामचन्द्र के दर्शन करने के लिए चले । उनके सिर पर जटाओं के ऊपर श्री-रामचन्द्र जी की पादुकाएँ थीं और उनके ऊपर एक आदमी विशाल गेरुवा छत्र लगाये चलता था । इस प्रकार भरत ने जाकर रामचन्द्र का स्वागत किया और अपने हाथ से रामचन्द्र के चरणों में पादुका पहिरा कर न्यास* स्वरूप उस व्यवहृत राज्यभार को ज्येष्ठभ्राता के हाथ में प्रदान कर कृतार्थ हुए ।

रामचन्द्र शुभ दिन में सिंहासन पर बैठे उस समय सुग्रीव को पन्नों और चन्द्रकान्त मणियों की बहुमूल्य माला और अङ्गद को मोतियों का बड़ा हार उपहार में मिला । सीता को नाना प्रकार के भूषण और वस्त्र आदि मिले । सीता ने अपने गले से बहुमूल्य कण्ठहार उतार कर एक बेर बंदरों की सेना की ओर दृष्टि डाली । रामचन्द्र ने कहा, "जिसे तुम्हारी इच्छा हो उसे यह उपहार दे दो ।" सीता ने यह हार हनूमान को प्रदान किया ।

हमने रामचन्द्र के अभिषेक को लेकर इस आख्यायिका का मुखबन्ध किया था और अभिषेक के वृत्तान्त के साथ ही इसे समाप्त करते हैं ।

---

* न्यास=किसी वस्तु के अर्पण करने को न्यास कहते हैं ।

रामचन्द्र का चरित्र कुछ जटिल है। भरत, लक्ष्मण, सीता प्रभृति और अन्य सभी का चरित्र तुलना करने में रामचन्द्र के चरित्र की अपेक्षा सरल है और एक मात्र रामचन्द्र के चरित्र के सम्पर्क ही से उनके चरित्र का विकाश हुआ है। भरत और लक्ष्मण का भ्रातृत्व रूप से, सीता का सतीत्व रूप से, दशरथ का पितृत्व रूप से और कौशल्या का मातृत्व रूप से विकाश हुआ है। अनेक दिशाओं से आकर जैसे नदियाँ समुद्र में गिर कर अपनी सत्ता को खो बैठती हैं उसी प्रकार रामायण की चरित्रावलियाँ भी नाना दिशाओं से राममुखी होकर आई हैं और रामचन्द्र के चरित्र से जहाँ तक उनका सम्बन्ध है वहीं तक उनकी सत्ता और उनका विकाश है अतएव रामचन्द्र के साथ तुलना करने में और और चरित्र न्यूनाधिक सरल हैं। किन्तु रामचन्द्र के चरित्र का सब के साथ सम्पर्क है; उन्होंने रामचन्द्र में पुत्र रूप से प्राधान्य लाभ किया है और वे भ्राता के रूप से, बन्धु के रूप से, स्वामी और प्रभु के रूप से हर प्रकार अग्रगण्य हैं। बहुत सी ओर से उनके चरित्र का विकाश हुआ है और बहुत से विभागों से उनका चरित्र दर्शनीय है। उनके चरित्र की कितनी ही उलझी हुई बातों को सुलझा कर देखने से वे जाने जा सकते हैं और कितनी जटिल रहस्यपूर्ण बातों की मीमांसा किये बिना वे भली प्रकार समझ में नहीं आवेंगे। वे आदर्श पुत्र थे—उन्होंने कौशल्या से कहा था, "काम, मोह चाहे और किसी कारण ही पिता ने हमें वन जाने की आज्ञा दी हो, हम उसका विचार नहीं करेंगे, हम उसके विचारक नहीं हैं; हम उनकी आज्ञा पालन करेंगे। वे प्रत्यक्ष देवता हैं।" उन्हीं रामचन्द्र ने गङ्गा के उस पार सघन वन में वृक्ष के नीचे वास करते समय

सजल नेत्रों से लक्ष्मण से कहा था कि—"लक्ष्मण, कहीं यह भी देखा है कि प्रमदा के वश में होकर किसी पिता ने हमारे समान आज्ञाकारी पुत्र को परित्याग कर दिया हो? निश्चय ही महाराज कष्ट भोग रहे हैं किन्तु जो धर्म त्याग कर काम की सेवा करते हैं उन्हें राजा दशरथ के समान कष्ट होना अवश्यम्भावी है।" जो सीता को "शुद्धायां जगती मध्ये" समझ कर विश्वास करते थे, जो उसके हरण होने पर शोक से अरुणनेत्र हो उन्मत्त की तरह फूल-पत्तों को आलिङ्गन करते फिरते और—

"आगच्छ त्वं विशालाक्षि शून्योऽयमुटजस्तव।"

"हे विशालाक्षि इधर आओ तुम्हारी कुटी सूनी पड़ी है।" कह कर रोते हुए व्याकुल होते थे, जो लङ्का में जाकर "अशोकवन में सीता को स्पर्श करके यह वायु हमारे शरीर को स्पर्श कर रही है" कह कर पुलकाश्रु नेत्रों से ध्यानी के समान खड़े रह जाते थे,—उन्हीं रामचन्द्र ने गलदश्रुनेत्रा, शोकशीर्णा और निरपराधिनी सीता से ऐसे निर्मम और कठोर वचन कहे थे कि, "लक्ष्मण, भरत, विभीषण अथवा सुग्रीव जिसे तुम्हारी इच्छा हो उसे ही वर लो। दशों दिशाएँ पड़ी हैं जहाँ तुम्हारी इच्छा हो चली जाओ; अब हमसे तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है।" जिन्होंने वनवास की आज्ञा सुन कर कैकेयी से स्पर्द्धापूर्वक कहा था कि—

"विद्धि मां ऋषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममास्थितम्।"

"हमें ऋषियों के समान विमल धर्म में आश्रित समझो।" वे ही कौशल्या के निकट "निश्वसन्निव कुञ्जरः" परिश्रान्त हाथी के समान रुकी हुई सांसें छोड़ने लगे और सीता के

अञ्चल के पास जाकर उन्होंने अपने मुख पर मलिनता का स्पष्ट चिन्ह प्रगट कर दिया। लक्ष्मण ने जब भरत के बध करने का संकल्प प्रगट किया तो उन्होंने उनसे कठोर वाक्यों में कहा था कि, "यदि तुम राज्य के लोभ से ऐसा कह रहे हो तो भरत से कह कर राज्य हम तुम्हें दिला देंगे" और जो बारंबार यही कहते थे कि भरत हमें "प्राणापेक्षा प्रियतर" "प्राणों से भी प्यारे हैं" उन्होंने सीता से कहा था कि, "तुम भरत के सामने हमारी प्रशंसा मत करना क्योंकि ऐश्वर्यशाली पुरुष दूसरे की प्रशंसा नहीं सह सकते।" भरत की भ्रातृ-भक्ति का अपूर्व परिचय पाकर वे सीता के विरह में भरत की दीन और शोकातुर मूर्ति को नहीं भूले और पुष्पभारा-लङ्कृता पम्पातीरवर्ती तरुराजि के समक्ष भरत की बातें स्मरण कर अश्रु त्याग करते थे और जब विभीषण अपने जेष्ठ भ्राता को परित्याग कर चला आया और सुग्रीव ने उसे अविश्वास्य कह कर उसकी निन्दा की उस समय रामचन्द्र ने कहा था कि, "बन्धु, भरत के समान भाई इस संसार में तुम्हें कहां मिलेगा ?" और उन्होंने वनवास के अन्त में भरद्वाज के आश्रम से हनूमान को नन्दिग्राम भेजते समय यह कहा था कि "हमारे आने का समाचार सुन कर भरत के मुख पर कोई विकार होता है या नहीं, यह अच्छी तरह देखना।" इस प्रकार बहुत सी उलझनों ने उनके चरित्र को जटिल कर दिया है।

रामायण के पाठकों को हम एक विषय में सावधान होने का अनुरोध करते हैं। नाटक और काव्य दो अलग अलग चीज़ें हैं। ग्रीक वालों के मतानुसार नाटक में वर्णित घटनावली ऐसी नहीं होनी चाहिये जिसका अभिनय तीन

दिन से अधिक में हो। इस तीन दिन के घटना वर्णन में चरित्रविशेष का एक भावापन्न करना नितान्त आवश्यक है; कौन सी बात किसके मुख से निकलेगी, लेखक को उसे बड़े विचार पूर्वक लक्ष्य करके नाटक की रचना करनी होती है। चरित्रों का जहाँ तक विशेषत्व है, लेखक को उन्हें उसी रेखा के मध्य में रखकर संक्षेप से सङ्कलन करना होता है किन्तु जिस काव्य की घटना जीवनव्यापिनी होती है उस काव्य के चरित्रों को नाटकों की रीति से विचार करना उचित नहीं है। इस दीर्घ काल में अनेक प्रकार के अवस्थाचक्रों में पड़ कर चरित्रों के क्रियाकलाप और कथावार्ताएँ विचित्र हो जाया करती हैं और यहां विशेष रूप से विचार करने की यही बात है कि ये समयोपयोगी हैं या नहीं? बड़े से बड़े महात्माओं के सारे जीवन में से दो एक घटनाओं वा उक्तियों को अलग करके उन पर प्रकाश डालने से वे भी तादृश सुन्दर समझी जाकर विवेचित नहीं हो सकतीं। अवस्था के क्रमागत उत्पीड़न को सहकर लोगों के साधारणतः सात्विक गुणों से सम्पन्न होने पर भी उनमें दो एक जगह भाव का व्यत्यय होना स्वाभाविक है। भिन्न भिन्न अवस्थाओं में रह कर रामचन्द्र ने जो कुछ किया या कहा उसे उनकी जीवनी से अलग करके देखने पर वह दौर्बल्य-सूचक दिखाई देगा किन्तु सब अवस्थाओं पर प्रकाश डाले जाने पर सूत्मदृष्टि से विचार करने पर वह अनेक समय और ही प्रकार से दिखलाई पड़ेगा। यदि हम उनकी "दौर्बल्यसूचक" उक्तियों को अलग कर दें तो वे हमारी सहानुभूति से बहुत ऊपर उठ जायँगे और हम उन्हें पकड़ कर छू भी नहीं सकेंगे। रामचन्द्र का चरित्र एक विशाल वनस्पति के सामान है—वह

कभी झुक कर भूमि को स्पर्श करता है पर उसका वह झुकना उसके नभस्पर्शी गौरव को कम नहीं कर सकता वरन् पार्थिव ज्ञातित्व का परिचय देकर हमें आश्वासन मात्र देता है। रामचन्द्र ने साधारणतः उत्कृष्ट नीति का अवलम्बन करके ही अपने चरित्र को अपूर्व श्रीसमपन्न किया था—उनका कोई विचार या कार्य दूसरे के अनिष्ट करने की प्रवृत्ति से उत्थित नहीं हुआ, यहां तक कि वे बाली को भी कनिष्ट भ्राता की भार्या हरण करनेवाला चोर समझ कर सत्य सत्य विश्वास करते थे और इसलिए उसे उन्होंने दण्ड भी दिया था। सुग्रीव का शत्रु उनका शत्रु था, उसके बध करने की वे अग्नि के सामने प्रतिज्ञा कर चुके थे और इस प्रतिज्ञा का पालन करना भी वे धर्म ही समझते थे। उत्तरकाण्ड में वर्णित सीता के परित्याग में भी देखा जाता है कि रामचंद्र ने उसे अपना कर्तव्य समझ कर ही अवधारण किया था। अपने जीवन को पूर्णरूप से नैराश्यपूर्ण करके भी उसे उन्होंने प्रतिपालन किया था और इस घटना ने भी उनके चरित्र के सतेज पौरुष को ही जाज्वल्यमान कर दिया है। महाकाव्य के किसी गूढ़स्थल में उन्होंने किसी भारी सङ्कट में पड़ कर जो दो एक अधीर वाक्यों का प्रयोग कर दिया उन्हें लेकर जगड्वाल मचाना और हिमालय की किसी शिला या वृक्ष में एकाध क्षतचिन्ह का आविष्कार करके पर्वतराज के महत्व को नष्ट करना, ये दोनों एक ही बात है। पल्लवग्राही पाठक-गण रामचन्द्र के चरित्र की वैसी समालोचना का भार स्वयं ग्रहण करेंगे। वाल्मीकि-अङ्कित रामचन्द्र का चरित्र अति-मात्रा में जीवन्त है,—इस चित्र में सुई चुभोने से मानो रक्त-बिन्दु निकलते हैं। यह चरित्र छाया अथवा धूमविग्रह में

परिणत होकर पुस्तक ही के भीतर का आदर्श नहीं रह जाता ।*

संगीत के समान मानव-जीवन की भी एक मूलरागिनी होती है; गान जैसे अनेक प्रकार के स्वरों को अलापता फिरता भी अपनी मूलरागिनी से बाहर नहीं जाता, उसी प्रकार मानवचरित्र का भी अपने आप परिचय देनेवाली एक स्वतंत्रता है। इसी स्वतंत्रता को जीवन की मूल रागिनी कहते हैं और जीवन के कार्यकलाप को पूर्ण रूप से विवेचना करने पर ही उसका पता लगता है । चाहे कोई कुछ भी कहे पर अभिषेक के निमित्त आये हुए विशाल सम्भार की ओर अवज्ञा से दृष्टि डाल कर अभिषेक-व्रतोज्ज्वल पीताम्बर-धारी रामचन्द्र ने जिस समय यह कहा था कि—

"एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहं त्वितः ।
जटाचीरधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥"

"बहुत अच्छा, हम महाराज की प्रतिज्ञा पालन करने के लिए जटा-वल्कल धारण कर वन को जायंगे"—उस दिन का वही चित्र रामचन्द्र का अमर चित्र है। यह अपूर्व वैराग्य की श्री ही उसका परिचय अच्छी तरह देती है । जब प्रजा सजल नेत्रों से उन्हें घेर कर खड़ी हो गई थी उस समय उन्होंने उसे सान्त्वना देकर कहा था कि—

---

* अर्थात् यह कोई कपोल-कल्पित और मनोरञ्जक कहानी नहीं है जो पुस्तक पढ़ने के समय ही चित्त को प्रसन्न कर सके किन्तु यह चरित्र लोगों का सच्चा और वास्तविक आदर्श है जिसे लोग अब भी प्राप्त कर सकते हैं। अनुवादकर्ता

"या प्रीतिर्बहुमानश्च मय्ययोध्यानिवासिनां।
मत्प्रियार्थं विशेषेण भरते सा विधीयताम्॥"

'हे अयोध्यावासियो, तुम हमारा जितना आदर और स्नेह करते हो उससे अधिक भरत का करना; इससे हम तुमसे प्रसन्न होंगे।" यह उदार उक्ति ही रामचन्द्र के चरित्र की परिचायक है। लक्ष्मण के क्रोध और वितण्डावाद को दूर कर सौम्यमूर्ति रामचन्द्र ने अभिषेकशाला की ओर दृष्टि डाल कर कहा था कि—

"सौमित्रे योऽभिषेकार्थं मम सम्भारसम्भ्रमः।
अभिषेकनिवृत्यर्थं सोऽस्तु सम्भारसम्भ्रमः॥"

"हे लक्ष्मण, हमारे अभिषेक के निमित्त जो सब आयोजन हुआ है और जो सामग्री एकत्र हुई है वह सब हमारे अभिषेक की निवृत्ति के लिए हो।'

यह वैराग्यपूर्ण कण्ठध्वनि ही सब क्षुद्र बातों को दूर कर हमारे कानों में गूँजती रह जाती है। जिस दिन रामचन्द्र के शरासन के तेज से रावण के कुण्डल गिर गये थे और वह श्रीहीन हो गया था और उसे भागने के लिए मार्ग भी नहीं मिलता था, उस दिन रामचन्द्र ने क्षमाशील गम्भीर कण्ठ से कहा था कि—"राक्षस, तुम हमारी बहुत सी सेना को नष्ट कर अब बिलकुल थक गये हो, हम थके हुए शत्रु से युद्ध नहीं करते। तुम आज घर जाकर विश्राम करो और कल फिर बलवान होकर हमसे युद्ध करना।" उस महाबलि-प्रदान की महती यज्ञभूमि में धार्मिक प्रवर रामचन्द्र ने इस कण्ठस्वर से जो स्वर्गीय क्षमा उच्चारण की थी वही उनकी चिर-अभ्यस्त कण्ठध्वनि है। रामचन्द्र को छोड़ कर संसार में शत्रु से और कौन ऐसी बातें कर सकता

है ? प्रसङ्गवश लक्ष्मण के कैकेयी की निन्दा करने पर रामचन्द्र ने उन्हें पञ्चवटी में कहा था कि-"माता कैकेयी की हमारे सामने निन्दा मत करो" यह उदार उक्ति ही रामचन्द्र के मुख को स्वाभाविक उक्ति है और सीता से भी उन्होंने इसी प्रकार कहा था कि—

"स्नेहप्रणयसम्भोगे समा हि मम मातरः।"

"हमसे स्नेह और हमारा आदर करने में हमारी सब माताएँ समान हैं ।" और एक दिन जब लक्ष्मण के शक्ति लगने से वे मुमूर्षु हो गये थे और इधर दुर्धर्ष रावण उन्हें पकड़ने का उद्योग कर रहा था उस समय सिंहनी जिस प्रकार अपने बच्चे की रक्षा करती है उसी प्रकार रामचन्द्र ने भी लक्ष्मण की रक्षा की थी। उस समय रावण के बाणों ने रामचन्द्र की पीठ को छिन्न-भिन्न कर दिया था पर रामचन्द्र उस ओर दृष्टि भी न डाल कर सजल नेत्रों से लक्ष्मण को छाती से लगाये हुए बैठे थे और बोले,—"तुम वन में जैसे हमारे साथ आये हो हम भी आज उसी प्रकार तुम्हारे संग यमराज के यहाँ चलेंगे, हम तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकेंगे ।" इस प्रकार के सैकड़ों चित्र रामायण-काव्य में अमर हो गये हैं और सैकड़ों उक्तियों द्वारा वे चित्र स्वर्ग के आदर्श को पृथ्वी पर अङ्कित करते हैं और बहुत से पन्नों में वे चित्र और उक्तियाँ हमें इस आश्चर्यपूर्ण चरित्र के समुन्नत सौन्दर्य को दिखा कर मुग्ध और विस्मित करते हैं। रामायण का पाठ समाप्त करने पर रामचन्द्र की यह उज्ज्वल और साधुमूर्त्ति ही हमारे मानस-पटल पर सदा के लिए अङ्कित रह जाती है; इसके अतिरिक्त और कोई बात मन में उदय

नहीं होती। नितान्त सात्विक भाव से विचार करने पर भी सीता के विरह में रामचन्द्र का प्रेमोन्माद यदि दुर्बलता-सूचक बोध होता है तो उससे यही सान्त्वना मिलती है कि रामचन्द्र के इस प्रेमोन्माद के समान मनोहर और कुछ नहीं है। इस समय वैराग्य की श्री नहीं दिखलाई पड़ती किन्तु अपर्याप्त काव्य-श्री ने उस अभाव को पूरा कर दिया है और उसने निर्जन वन की रमणीय दृश्यावली में विरहाश्रुओं के संयोग से समस्त विचित्र वाह्य सम्पद् को सदा के लिए सुन्दर बना रखा है।

भरत।

भरत के विषय में महाराज दशरथ ने कैकेयी से कहा था कि:—

"रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तर।"

"धर्म की दृष्टि से हम भरत को राम से भी श्रेष्ठ समझते हैं?"

भरत के चरित्र को वे विलक्षण रूप से जानते थे तथापि रामचन्द्र के वन जाने पर उन्होंने भरत को त्याज्य पुत्र और अपनी अन्त्येष्टि क्रिया करने के अयोग्य समझा। इस प्रकार निर्दोष—बिलकुल निर्दोष कहना ठीक नहीं—और रामायण काव्य के आदर्श चरित्र भरत के भाग्य में यह क्या विडम्बना हुई इसकी आलोचना करते हुए हमें दुःख होता है। पिता ने अन्याय करके उन्हें त्याग दिया और कहाँ तक कहें अयोध्या के जो सब दूत केकय राज्य में उन्हें लेने गये थे उन्होंने भी भरत के अयोध्या सम्बन्धी कुशल समाचार पूछने पर कुछ क्रूर व्यङ्ग ही से कहा था कि—

"कुशलास्ते महावाहो येषां कुशलमिच्छसि।"

'आप जिनकी कुशल पूछते हैं वे कुशल हैं।" अर्थात् मानो भरत वास्तव में दशरथ, राम, लक्ष्मण आदि की कुशल नहीं चाहते थे किन्तु हृदय से वे कैकेयी और मन्थरा ही की कुशल मनाते थे। या तो सब दूत आपस में मिल कर झूठ

बोलते थे या निठुर बन व्यंग छोड़ते थे, इस जगह इस पद का और कुछ अर्थ हो ही नहीं सकता। रामचन्द्र के वनवास होने पर अयोध्या के राजमहल में जो भयानक वितण्डावाद हुआ उसमें भी दो एक जगह इस निर्दोष राजकुमार पर अन्यायपूर्वक कटाक्ष किया गया। प्रजा रामचन्द्र के वनवास के समय—

"भरते सन्निबद्धाःस्म सौनिके पशवो यथा।"

"हम लोग कसाई के निकट पशुओं की तरह भरत के सामने खड़े हैं"—यह कहकर आर्तनाद करती थी। इस साधु व्यक्ति को अपने अत्यन्त निकटस्थ सम्बन्धियों से भी बड़े अन्यायपूर्वक लाञ्छित होना पड़ा था। रामचन्द्र भरत को इतना अधिक प्यार करते थे कि उन्होंने बारंबार "मम प्राणैः प्रियतरः"—"हमारे प्राणों से भी प्यारे"—कह कर भरत का उल्लेख किया है। कौशल्या से रामचन्द्र ने कहा था कि "धर्मप्राण भरत की बातें देखकर तुम्हें अयोध्या छोड़ने में हमें कुछ भी चिन्ता नहीं होती।" पर इन रामचन्द्र ने भी भरत पर सन्देह के दो एक बाण न छोड़े हों, ऐसा नहीं है। उन्होंने सीता से कहा था कि, "तुम भरत के सामने हमारी प्रशंसा मत करना, क्योंकि ऋद्धियुक्त पुरुष दूसरे की प्रशंसा नहीं सुनना चाहता।" यह सन्देह क्षमा नहीं किया जा सकता। पिता दशरथ ने भी रामचन्द्र के राज्याभिषेक के समय भरत को सन्देह की दृष्टि से देखा था, उन्होंने राम को बुला कर कहा था कि, "हम चाहते हैं कि मामा के यहाँ भरत के रहते रहते ही तुम्हारा, अभिषेक हो जाय; क्योंकि यद्यपि भरत धार्मिक और तुम्हारे पीछे पीछे चलनेवाला है

तथापि मनुष्य का मन विचलित होते कितनी देर लगती है।" इक्ष्वाकुवंश की परम्परागत प्रथा के अनुसार राजसिंहासन बड़े भाई ही को मिलता है, तो फिर ऐसी दशा में धार्मिकाग्रगण्य भरत पर ऐसा सन्देह करना मार्जनीय नहीं हो सकता। रामचन्द्र भरत के चरित्र की महिमा इतनी जानते थे तो भी वनवास के अन्त में भरद्वाज के आश्रम में उन्होंने हनूमान को यह कह कर भरत के पास भेजा कि "हमारे आने की खबर सुन कर भरत के मुख पर कुछ बिकार होता है या नहीं, यह अच्छी तरह देखना।" यह सन्देह भी सर्वथा अमार्जनीय है। संसार में निरपराधियों को भी कई बेर दण्ड हुआ है पर भरत के समान आदर्श धार्मिक पर इस तरह के दण्ड देने का दृष्टान्त कहीं बिरले ही मिलेगा। लक्ष्मण तो बारंबार—

"भरतस्य बधे दोषं नाहं पश्यामि राघव।"

"भरत के बध करने में मैं कोई पाप नहीं समझता"। कह कर उछल कूद करते थे किन्तु उसी भरत ने अश्रुरुद्ध कण्ठ हो लक्ष्मण के विषय में कहा था कि—

"सिद्धार्थः खलु सौमित्रिर्यश्चन्द्रविमलोपमम्।
मुखं पश्यति रामस्य राजीवाक्षं महाद्युतिम्॥"

"लक्ष्मण, तू धन्य है जो राजीवलोचन रामचन्द्र के चन्द्रमा के समान उज्ज्वल मुख को देखता है।" भरत से सब लोगों के रुष्ट होने का कुछ न कुछ कारण अवश्य होगा? इतना बड़ा षड़यन्त्र रचा गया, क्या भरत ने परोक्ष में इसका किसी तरह अनुमोदन नहीं किया? अपने मामा युधाजित से परामर्श कर भरत दूर ही से डोर हिला कर

कैकेयी को कठपुतली की तरह नहीं नचाते थे, इसका क्या प्रमाण है? इसी सन्देह की आशङ्का कर के भरत ने बेहोशी की दशा में कैकेयी से कहा था कि, "जिस समय अयोध्या की सारी प्रजा रुद्धकण्ठ और सजलनेत्र हो हमारी ओर देखेगी, हम उसको सह नहीं सकेंगे।" कौशल्या भरत को बुला कर कटुवाक्य कहने लगी, उन कटुवचनों से भरत को घाव में सुई छेदने के समान पीड़ा हुई। दैव के चक्र में पड़कर देवताओं के समान चरित्रसम्पन्न भरत सारे संसार के सन्देह-भाजन हो लाञ्छित हुए। जब वे रामचन्द्र को मनाने के लिए बहुत सी सेना लेकर जा रहे थे तब निषादों का राजा गुहक मन में यह विचार कर कि वे रामचन्द्र का बुरा करने के लिए जाते हैं हाथ में लट्ठ लेकर रास्ते में खड़ा हो गया। यही क्यों भरद्वाज ऋषि तक ने भय की दृष्टि से देखते हुए उनसे यह पूछा कि, "आप उस निष्पाप राजपुत्र के पास कोई पाप विचार कर तो नहीं जाते हैं?" इस प्रकार हर एक का समाधान करते करते भरत के प्राण कण्ठगत हो गये। भरत कैकेयी को 'मातृरूपे महमामित्रे' कह कर सम्बोधन करते थे वास्तव में कैकेयी माता के रूप में उनकी बड़ी भारी शत्रु ही थी। सारे संसार का भरत पर जो सन्देह की दृष्टि का विषबाण गिरता था उसका मूल कैकेयी ही थी।

किन्तु घटनावली कितना ही जटिल भाव क्यों न धारण करे किन्तु भरत के अपूर्व भ्रातृस्नेह ने सारी जटिलता को सहज कर दिया था। रामचन्द्र को हमने अनेक अवस्थाओं में सुखी होते देखा है। जिस समय चित्रकूट की पुष्पवाटिका की शोभा और टूटे फूटे पत्थर के टुकड़ों से छाई हुई अधित्यका भूमि में अधिष्ठित पर्वत के शिखर और रंग बिरंगे फूलों को

देखकर रामचन्द्र ने सीता से कहा, "इस स्थान पर तुम्हारे संग विचर कर हम अयोध्या के राजपद को तुच्छ समझते हैं।" उस समय दम्पति का निर्मल आनन्दमय चित्र हमें बड़ा ही सुन्दर और सुखप्रद बोध होता है। रामचन्द्र रूपी आकाश कभी बादलों से घिर जाता और कभी स्वच्छ हो जाता था। किन्तु भरत का सदा ही खिन्न चित्र मर्मान्तिक करुणा के योग्य था। जिस समय भरत रामचन्द्र को लौटाने के लिए आये उस समय रामचन्द्र उनकी जटिल, कृश और विवर्ण मूर्ति को देख कर चकित हो गये और उन्हें बड़ी कठिनाई से पहिचाना।

भरत का चित्र प्रदर्शन करने के अभिप्राय से जिस समय कविगुरु ने पहिले ही पहिल पर्दा उठाया उसी समय उनकी मूर्ति विषण्णतापूर्ण थी। वे इस बुरे स्वप्न को देख कर प्रातःकाल उठे कि नर्तकियां उनके प्रमोद के लिए उनके सामने नृत्य कर रही हैं, सखा लोग व्यग्रचित्त होकर कुशल पूछ रहे हैं और भरत का चित्त भारी और मुख श्रीहीन है। अयोध्या की विषम विपत्ति के पूर्वाभास ने मानों उनके मन पर अधिकार कर लिया था और वे किसी प्रकार स्वस्थ नहीं होते थे। इसी समय उनको लेने के लिए अयोध्या से दूत आये। व्यग्रकण्ठ से भरत ने दूतों से अयोध्या के सब लोगों की अलग अलग कुशल पूछी। दूतों ने दो अर्थ वाला उत्तर दिया कि—

"कुशलास्ते महाबाहो येषां कुशलमिच्छसि।"

"हे महाबाहो, आप जिनकी कुशल पूछते हैं वे कुशल हैं।" किन्तु पिछली रात का बुरा स्वप्न और दूतों की व्यग्रता

ये दोनों उन्हें एक समस्या के समान समझ पड़े। इन दो घटनाओं को दुश्चिन्ता के सूत्र में बांध कर वे अत्यन्त ही दुःखी हुए।—

"बभूव ह्यस्य हृदये चिन्ता सुमहती तदा।
त्वरया चापि दूतानां स्वप्नस्यापि च दर्शनात्॥"

बहुत से स्थान, नदी-नाले और झाड़ियों को पार करके भरत दूर ही से अयोध्या की चिरश्यामल वृक्षावली को देख सकते थे और डरी हुई ज़बान से उन्होंने सारथी से पूछा कि, "यह अयोध्या सी तो नहीं मालूम होती इस नगरी का वह चिरश्रुत तुमुल शब्द क्यों नहीं सुनाई पड़ता? वेदपाठी ब्राह्मणों का कण्ठस्वर और काम में लगे हुए स्त्री-पुरुषों का कोलाहल भी बिलकुल नहीं सुनाई देता। जिन प्रमोद-उद्यानों में स्त्री-पुरुष अकेले बिचरते थे, वे आज सूने पड़े हैं। सड़कें चन्दन और जल के छिड़काव से पवित्र नहीं होतीं। सड़कों पर रथ, हाथी, घोड़े कुछ भी नहीं हैं। जिसके सब दरवाज़े खुले हैं ऐसी श्रीहीन राजपुरी मानो व्यङ्ग कर रही है, यह तो अयोध्या नहीं है, मानो अयोध्या का वन है।"

वास्तव में अयोध्या श्रीहीन हो गई थी। रामचन्द्र रूपी चन्द्र के बिना अयोध्या के सुन्दर बाज़ारों की शोभा बिलकुल नष्ट हो गई थी। तीनों लोकों में यशस्वी महाराज दशरथ ने पुत्रशोक में अपने प्राण त्याग दिये थे। अभिषेक के उत्सव से आनन्दित बड़े राजकुमार मुनियों के वेश में वन को चले गये थे और हाथों के कङ्कण, कड़े और अन्य आभूषण सखियों को वितरण कर अयोध्या की राजवधू तपस्विनियों के वेश में अपने स्वामीके संग हो ली थीं। जिनकी दोनों लम्बी और

सुडौल भुजाएँ अङ्गद* प्रभृति सब आभूषण धारण करने के योग्य थीं, ऐसे "स्वर्णच्छवि" लक्ष्मण, भाई और भाभी के पैरों के पीछे पीछे जा रहे थे। अयोध्या में घर घर इन तीनों देवताओं के लिए करुणा के आँसुओं की नदी बह रही थी। हा, अब वे वन में रहते हैं और राजमहल त्याग दिया है। सुमन्त्र ने ठीक ही कहा था कि सारी अयोध्या पुत्रहीना कौशल्या की दशा को प्राप्त हुई है।

किन्तु भरत यह सब कुछ नहीं जानते थे। उन्होंने चुपचाप प्रतिहारियों का अभिवादन स्वीकार किया और बड़े उत्कण्ठित चित्त से पिता के महल में गये; पर वहाँ पिता को नहीं पाया।—

"राजा भवति भूयिष्ठमिहाम्बाया निवेशने।"

"कैकेयी के महल में महाराज अनेक समय रहते थे" अतएव भरत पिता को ढूँढ़ते ढूँढ़ते माता के महल में पहुंचे।

सद्योविधवा कैकेयी आनन्द में फूली नहीं समाती थी और वह पतिघातिनी पुत्र के भावी अभिषेक के आनन्द के चित्र को मन ही मन में खींच कर सुखी हो रही थी। भरत को देख कर वह बड़ी ही प्रसन्न हुई। जब भरत ने पिता के सम्बन्ध में पूछा तो वह बोली—

'या गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गतः।"

"सब प्राणियों की जो गति होती है वही गति तुम्हारे पिता की हुई है।" इस समाचार को सुन कर कुठार से काटे गये वन-वृक्ष की तरह भरत पृथिवी पर गिर पड़े।

*अङ्गद=एक आभूषण-विशेष का नाम है।

"क्व स पाणिः सुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः ।"

"अक्लिष्टकर्मा पिता के हाथ के स्पर्श का वह सुख अब कहाँ मिलेगा ?" यह कहकर भरत रोने लगे। राजा के बिना राजशैया उन्हें चन्द्रमा के बिना आकाश के समान दिखाई पड़ी। उन्होंने कैकेयी से कहा "राम कहाँ हैं? इस समय पिता के न होने पर जो हमारे पिता, जो हमारे बन्धु और मैं जिनका दास-ऐसे रामचन्द्र के देखने के लिए हमारा प्राण व्याकुल हो रहा है।" राम, लक्ष्मण और सीता को वनवास हुआ सुनकर भरत क्षणभर के लिए मूर्ति के समान खड़े रह गये और भाई के चरित्र में आशङ्का करके बोले कि, "राम ने क्या किसी ब्राह्मण का धन छीन लिया था, क्या उन्होंने दीन-दुखियों को सताया था अथवा परस्त्री में आसक्त हो गये थे, जिससे उन्हें निर्वासन का दण्ड मिला ?" अन्तिम प्रश्न के उत्तर में कैकेयी ने कहा—

"न रामः परदारान् स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति ।"

"रामचन्द्र पराई स्त्रियों को आंखों से भी नहीं देखते।" अन्त में भरत की उन्नति और राजश्री की कामना से कैकेयी ने जो सब लीला रची थी, उसे कहकर पुत्र को प्रसन्न करने की प्रतीक्षा में उनके मुख की ओर देखने लगी।

घने बादलों ने मानो आकाश को घेर लिया था। धर्मप्राण विश्वस्त भ्राता क्षणभर तक इस दुःसह संवाद का मर्म समझने में समर्थ नहीं हुए। उन्होंने माता को जो धिक्कार दी उसे हम उसकी महादुर्गति का स्मरण कर सम्पूर्ण रूप से समयोपयोगी समझते हैं। "तू धार्मिकवर अश्वपति की कन्या नहीं है, उनके वंश में तू राक्षसी पैदा हुई है। तूने

हमारे धर्मवत्सल पिता का नाश कर दिया है और भाइयों को गली गली का भिखमंगा बना दिया है, तू नरक में पड़।" जिस समय कातरकण्ठ होकर भरत ये बातें कह रहे थे, उस समय दूसरे महल से कौशल्या ने सुमित्रा से कहा, "भरत की आवाज़ सुनाई पड़ती है, वह आगया है, उसे हमारे पास बुला।" कृशाङ्गी सुमित्रा ने भरत को बुलाया, तब कौशल्या ने कहा, "तुम्हारी माता तुमको लेकर निष्कण्टक राज्य भोगे, तुम हमको राम के पास पहुंचा दो" इन कटु-वचनों से मर्मबिद्ध होकर भरत ने कौशल्या के सामने अनेक शपथें खाईं कि वे इस मामले के रहस्य को रत्ती भर भी नहीं जानते। अपनी बात को अनेक प्रकार से समझाने की चेष्टा कर दारुण शोक और लज्जा के मारे भरत का चेहरा कुम्हला गया और वे अपने को बारंबार कोसने और दोषी ठहराने लगे और ज़ोर से बोलने और दारुण शोक के कारण मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। करुणामयी अम्बा कौशल्या धर्मभीरु कुमार के मन के भाव को समझ गई और उन्हें गोद से लगाकर रोने लगी।

भरत का शोक और उदासीनता क्रम से बढ़ चली। श्मशान भूमि में मृत पिता के गले से लगकर वे रोते रोते बोले, "हे पिता, अपने दोनों प्यारे पुत्रों को वन भेजकर आप कहाँ जाते हो?" सजल-नेत्र और शोकविमूढ़ राजकुमार को वशिष्ठ ने ताड़ना कर करके पिता की अन्त्येष्टि क्रिया कराने में प्रवृत्त किया। शोक से विह्वल होकर भरत एक बेर मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

प्रातःकाल वन्दीजन भरत की स्तुति गाने लगे, उस समय भरत ने पागल की तरह दौड़ कर उन्हें मना कर दिया

कि, "इक्ष्वाकुवंश की प्रथा के अनुसार सिंहासन बड़े राजकुमार को मिलता है, तुम किसको वंदना कर रहे हो ?" राजा की मृत्यु के चौदहवें दिन वशिष्ठ आदि मंत्रियों ने भरत से राज्य-ग्रहण करने का अनुरोध किया। भरत बोले, "रामचन्द्र राजा बनेंगे। हम अयोध्या की सारी प्रजा को लेकर उन्हें पैरों पड़ कर मना लावेंगे, यदि वे न लौटे तो हम भी चौदह वर्ष वन में रहेंगे"

शत्रुघ्न मन्थरा को मारने और कैकेयी को ताड़ना देने लगे, किन्तु क्षमा के अवतार भरत जी ने उन्हें मना कर दिया।

सब अयोध्यावासी रामचन्द्र को लौटाने के लिए चल पड़े। शृङ्गबेरपुर में गुहक के साथ भरत का साक्षात्कार हुआ। गुहक ने भरत पर पहले सन्देह किया था किन्तु भरत के मुख को देखकर उसे उनके हृदय का भाव जानने में देर नहीं लगी। इंगुदी के वृक्ष के नीचे रामचन्द्र ने तृणशैया पर कुछ जलपान कर एक रात्रि व्यतीत की थी, वह तृणशैया रामचन्द्र के विशाल बाहुओं की रगड़ से दब गई थी और सीता के वस्त्रों से गिरे हुए स्वर्णबिन्दु तृण पर दिखाई देते थे। यह दृश्य देखते देखते भरत मौन हो एकटक खड़े रह गये, गुहक बातें करता था, भरत सुन नहीं सकते थे। भरत को संज्ञाशून्य देखकर शत्रुघ्न उनसे लिपट कर रोने लगे, रानियां और मंत्री लोग शोक से विह्वल हो गये। बहुत यत्न से जब भरत होश में आये तब उन्होंने नेत्रों में जल भर कर कहा, "क्या यह उन्हीं की शैया है—जिन्हें सदा आकाशस्पर्शी राजप्रसाद में रहने का अभ्यास है—जिनके गृह पुष्पमाला, चित्र और चन्दन से सदा चर्चित रहते हैं—

जिनके महल का शिखर नृत्यशील पक्षियों और मोरों की बिहारभूमि है और गाने बजाने के शब्द से सदा मुखरित रहता है और जिसकी स्वर्ण की दीवारों पर आदर्श चित्रकारी का काम किया हुआ है? उसी गृह के स्वामी इंगुदी के नीचे रहे हैं! ये बातें स्वप्न सी मालूम पड़ती हैं, ये विश्वास के योग्य नहीं हैं। हम क्या मुँह लेकर राजवस्त्र धारण करेंगे? भोग-विलास की वस्तुओं से हमें प्रयोजन नहीं, हम आज ही से जटा-वल्कल धारण करेंगे, भूमि पर सोवेंगे और फल-फूल खाकर अपना जीवन व्यतीत करेंगे।"

इस प्रकार जटा-वल्कल धारी शोकविमूढ़ राजकुमार भरद्वाज मुनि के आश्रम में जाकर रामचन्द्र का पता लगाने लगे। सर्वज्ञ ऋषि ने भी पहले सन्देह प्रगट कर भरत के मन को पीड़ा पहुंचाई थी। एक रात्रि भरद्वाज के आश्रम में आतिथ्य सत्कार ग्रहण कर मुनि के निर्देशानुसार राजकुमार ने चित्रकूट की ओर प्रस्थान किया। भरद्वाज ने भरत के डेरों में आकर रानियों को देखना चाहा। भरत ने इस प्रकार माताओं का परिचय दिया। "भगवन्, यह जो शोक और निराहार से क्षीण देह, सौम्यमूर्ति और देवताओं की तरह दिखलाई पड़ती हैं, वह हमारे अग्रज रामचन्द्र की माता हैं, वह जो बायें हाथ का सहारा लगाये उदास खड़ी और वन में सूखे हुए कर्णिकार-पुष्पों के पेड़ की तरह शीर्णाङ्गी हैं, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की जननी सुमित्रा हैं और उनके पास ही वह, जिन्होंने अयोध्या की राजलक्ष्मी को विदा कर दिया है, वह पतिघातिनी और सारे अनर्थ की मूल, वृथा प्रज्ञा-मानिनी और राज्यकामुका इस अभागे की माता हैं।" यह कहते कहते भरत के दोनों नेत्रों से जल बहने लगा और क्रुद्ध

सर्प की तरह उन्होंने एक बार अश्रुपूर्ण चक्षुओं से माता की ओर देखा।

चित्रकूट के पास पहुंच कर माताओं और मंत्रियों को लिये हुए भरत ने रथ त्याग दिया और पैदल चलने लगे।

उस समय रमणीय चित्रकूट पर अर्क और केतकी के पुष्प खिल रहे थे और आम और लोध के पके हुए फल डालियों पर लटक रहे थे। चित्रकूट पर्वत पर कहीं टूटे फूटे पत्थर के टुकड़े पड़े हुए थे, कहीं नीचे की अधित्यका-भूमि पुष्पों के लगने से रमणीय बगीचों की तरह सुन्दर मालूम होती थी, कहीं पर्वत के गात्र से एक शैलशिखर ऊँचा उठ कर आकाश ही का चुम्बन कर रहा था—पास ही मन्दाकिनी कभी किनारे पर आ जाती और कभी उसकी छोटी सी धारा वृक्षों की नील आभा ही में विलुप्त हो जाती थी। कहीं मन्दाकिनी की लहरें वायु के वेग से इस प्रकार फर्राटे ले रहीं थीं मानो सुन्दरियों के शरीर से वस्त्र ही उड़ रहे हों और कहीं झरनों के प्रवाह में पर्वती फूल अपनी ही छटा दिखा रहे थे। इस दृश्य को देख कर रामचन्द्र ने सीता से कहा, "राज्यनाश और सुहृद्विरह हमारी समझ में हमें कोई पीड़ा नहीं दे रहा है। हम इस पर्वत की दृश्यावली का निर्मल आनन्द सम्पूर्ण रूप से उपभोग कर सकते हैं।"

इस बात के समाप्त होते न होते आकाश सहसा बड़े भारी शब्द से गूँजने लगा; धूल से दशों दिशाएँ छा गईं और तुमुल शब्द से पशु-पक्षी चारों ओर भागने लगे। रामचन्द्र ने त्रस्त होकर लक्ष्मण से जिज्ञासा की "देखो, क्या कोई राजा या राजपुत्र इस वन में शिकार खेलने आया है? अथवा किसी भीषण जन्तु के आने से इस सौम्य-निकेतन को

शान्ति इस प्रकार भङ्ग हो रही है ?" लक्ष्मण दीर्घपुष्पित शाल वृक्ष पर चढ़ कर इधर उधर देखने लगे तो उन्हें पूर्वदिशा में फौज दिखाई पड़ी। उसे देख कर वे बोले, "अग्नि बुझा दो, सीता को कहीं गुफा में छिपा दो और अस्त्र-शस्त्र लेकर सुसज्जित हो जाओ।" "किसी की फौज आ रही है, क्या कुछ समझ में आया ?" लक्ष्मण ने इस प्रश्न का उत्तर दिया कि "पास ही यह जो बड़ा वृक्ष दिखाई पड़ता है उसके पत्तों में से भरत की कोविदारयुक्त* रथ की ध्वजा दिखाई पड़ती है। अभिषेक होने से उनका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ, अपने राज्य की शोभा को निष्कण्टक करने के लिए भरत हम लोगों का बध करने के लिए आये हैं, आज हम इस सब अनर्थ के मूल भरत का बध करेंगे।"

रामचन्द्र बोले, "भरत हमें लौटाने के लिये आये हैं। सब बातों को अच्छी तरह जान कर हम से सदा स्नेह करनेवाले, हमारे प्राणों से भी प्यारे भरत स्नेहार्द्र हृदय से पिता को प्रसन्न कर हमें लेने के लिए आये हैं, तुम उन पर अन्याय करने का क्यों सन्देह करते हो ? भरत ने कभी हमारे साथ बुराई नहीं की, तुम उन्हें क्यों ऐसे क्रूर वचन कहते हो ? यदि राज्य के लोभ से तुमने ऐसा किया है तो भरत से कह कर निश्चय ही हम राज्य तुम्हें दिला देंगे।" धर्मशील भ्राता की इन बातों से लक्ष्मण बड़े ही लज्जित हुए।

थोड़ी देर बाद ही भरत आ उपस्थित हुए। उपवास से कृश और शोक की जीवन्त मूर्ति देवोपम भरत रामचन्द्र को तृण के ऊपर बैठे देख कर बालक की तरह फूट फूट कर रोने

*भरत की फौज के झंडे का निशान 'कोविदार' था।

और कहने लगे कि, 'जिनके मस्तक पर स्वर्णछत्र शोभा पाता था, उस राजश्री से उज्ज्वल ललाट पर आज जटाजूट कैसे बँधे हैं? हमारे अग्रज का शरीर सदा चन्दन और अगर से मार्जित होता था, आज वह अङ्गराग से रहित कान्ति धूल-धूसरित हो रही है। जो सारे विश्व के प्राणियों के आराधना वस्तु थे वे ही आज वन वन में भिखमंगे की तरह टकराते फिरते हैं, हमारे लिए ही यह सब कष्ट आप भोग रहे हैं। हमारे इस लोकगर्हित और नृशंस जीवन को धिक्कार है!" इस प्रकार कहते और उच्चस्वर से रुदन करते हुए भरत रामचन्द्र के पैरों में जाकर गिर पड़े। इन दोनों त्यागी महा-पुरुषों का मिलाप बड़ा ही करुण है। भरत का मुख सूख गया था, उनके माथे पर जटाजूट बँधे थे और शरीर पर वे चीर धारण किये हुए थे। रामचन्द्र ने विवर्ण और कृश भरत को कठिनता से पहिचाना। उन्होंने बड़े आदर पूर्वक भरत को ज़मीन से उठा लिया और उनके शिर को सूंघ और हृदय से लगा कर बोले, "वत्स, तुम्हारा यह वेश क्यों? तुम्हें इस वेश से वन में आना उचित नहीं था।"

भरत बड़े भाई के चरणों में लोट गये और बोले, "हमारी जननी घोर नरक में गिर पड़ी है, आप उसकी रक्षा कीजिये, मैं आपका भाई हूं, शिष्य हूं और दासानुदास हूं, आप मुझ पर प्रसन्न हो अयोध्या चल कर सिंहासन पर बैठिये।" बहुत बातें हुई और बड़ा तर्क-वितर्क हुआ:—भरत बोले, "हम चौदह वर्ष तक वन में वास करेंगे, महाराज की प्रतिज्ञा पालन करना हमारा कर्तव्य है।" जब राम को किसी प्रकार अयोध्या चलने के लिए राजी न कर सके तो भरत

अनशन व्रत धारण कर उनकी कुटी के द्वार पर धन्ना देकर पड़ गये। भूमि पर लोटे हुए भरत को रामचन्द्र ने आदर पूर्वक उठाकर अपनी पादुकाएँ प्रदान कीं। भाई के पदरज से विभूषित पादुकाएँ भरत के जटाजूट को शोभित कर उनके शिर पर मुकुट के समान देदीप्यमान हो रहीं थीं। सहस्रों आभूषणों से जो शोभा नहीं आ सकती, इन पादुकाओं ने भरत को वही अपूर्व राजश्री प्रदान की। भरत ने विदा होते समय कहा, "चौदह वर्ष तक हम आपकी प्रतीक्षा में इन पादुकाओं की आज्ञा लेकर राज्य का काम चलावेंगे, यदि इतने समय में आप नहीं आये तो अग्नि में हम अपना प्राण होम देंगे।" अयोध्या के समीप पहुंच कर भरत बोले "अयोध्या वह अयोध्या नहीं है, हम इस बिना सिंह की गुफा में प्रवेश नहीं कर सकेंगे।" नन्दीग्राम में राजधानी बनाई गई पर वह राजधानी नहीं ऋषि का आश्रम था। मन्त्री लोग जटा-वल्कल-धारी और फलमूलाहारी राजा के पास बहुमूल्य वस्त्र धारण कर कैसे बैठेंगे यह विचार कर उन सब ने कषाय वस्त्र पहनना आरम्भ कर दिया। सचिव-वृन्द की सहायता से इस कषाय वस्त्रधारी, व्रत और उपवास से कृशांग और त्यागी राजकुमार ने रामचन्द्र की पादुकाओं के ऊपर छत्र धारण कर चौदह वर्ष तक राज्य कर प्रजा का पालन किया।

भरत की यह विवरण मूर्ति राम के चित्त में काँटे की तरह विंध गई थी। जिस समय सीता के हरण होने पर वे पम्पा के किनारे उन्मत्त की तरह घूम रहे थे उस समय उन्होंने कहा था, "इस पम्पातीर की रमणीय दृश्यावली सीता के विरह और भरत के दुःख में हमें रमणीय नहीं

मालूम होती।" और एक दिन लङ्का में रामचन्द्र ने सुग्रीव से कहा था "बन्धु, भरत के समान भाई इस संसार में कहाँ मिलेगा ?"

जब रामचन्द्र लौट कर अयोध्या को आये तब भरत उन्हीं पादुकाओं को अपने हाथों से उनके चरणों में पहिरा कर कृतार्थ हुए और रामचन्द्र के चरणों में प्रणाम करके बोले, "देव, आप इस अयोग्य के हाथ में जो राज्यभार छोड़ गये थे उसे ग्रहण कीजिये, चौदह वर्ष में राजकोश में दस गुना धन बढ़ गया है।"

रामायण में यदि कोई चरित्र ठीक आदर्श समझ कर ग्रहण किया जा सकता है तो वह एकमात्र भरत ही का चरित्र है। सीता ने लक्ष्मण से जो कटुवचन कहे थे वे क्षमा के योग्य नहीं हैं। रामचन्द्र के बालिबध आदि अनेक कार्यों का समर्थन नहीं किया जा सकता। लक्ष्मण की बातें तो कई बार बड़ी रूखी और दुर्विनीत हुई हैं। कौशल्या ने दशरथ से कहा था, "कोई कोई जलजन्तु जिस प्रकार अपनी सन्तान भक्षण कर जाते हैं तुमने भी उसी प्रकार किया है।" किन्तु भरत के चरित्र में एक भी दोष नहीं। रामचन्द्र की पादुकाओं पर स्वर्णछत्र धारण करने वाले जटावल्कलधारी इस राजर्षि का चित्र रामायण में एक अद्वितीय सौन्दर्य धारण कर रहा है। दशरथ ने सत्य ही कहा था कि—

"रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम् ।"

"धर्म की दृष्टि से हम राम की अपेक्षा भरत को अधिक बलवान् समझते हैं।"

हम कैकेयी के सहस्त्रों दोषों को, जब कि हम देखते हैं कि वह ऐसे सुपुत्र की गर्भधारिणी थी क्षमा के योग्य समझते हैं। हम निषादाधिपति गुहक के स्वर में स्वर मिला एक वाक्य से यही कहेंगे कि—

"धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले।
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिच्छसि॥"

"तुम धन्य हो जो बिना यत्न से आये हुए राज्य को छोड़ना चाहते हो, इस संसार में तुम्हारे समान और कोई नहीं दिखाई देता है।"
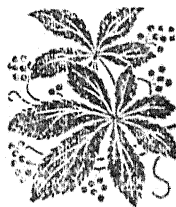
लक्ष्मण

बालकाण्ड में लिखा है कि लक्ष्मण रामचन्द्र के "प्राण इवापरः"—दूसरे प्राण ही थे। भरत के बिना हम राम की कल्पना कर सकते हैं, यही नहीं कविगुरू ने सीता के बिना भी राम के चरित्र की कल्पना करने का हमें अवसर दिया है किन्तु लक्ष्मण के बिना राम का चरित्र सर्वथा असम्पूर्ण है।

लक्ष्मण की भ्रातृभक्ति अधिकतर मौन और छाया के समान पीछे पीछे चलने वाली है। लक्ष्मण राम से प्रिय बातें कहने के लिए कभी व्याकुल नहीं होते थे और किसी सङ्कट में पूरी तरह पड़े बिना वे अपने हृदय के अत्यन्त गम्भीर स्नेह का परिचय देना नहीं चाहते थे। दो एक जगह लाचार होकर उन्होंने इशारे ही से अपने हृदय का भाव प्रगट किया है किन्तु हमारी समझ में उनका अतुलनीय राम-प्रेम सर्वत्र मौन भाव ही से व्यक्त हुआ है।

भरत, सीता और रामचन्द्र भी मन के वेग को रोकना नहीं जानते थे किन्तु लक्ष्मण स्नेह के सम्बन्ध में संयमी थे—वे स्नेह से परिपूर्ण थे, अतएव वे उसके आवेग में उछल नहीं पड़ते थे। उनका यह मौन स्नेहचित्र हमें सर्वत्यागी कष्टसहिष्णु भ्रातृभक्ति की अपूर्व बातें बतलाता है।

लक्ष्मण जन्म भर रामचन्द्र की छाया के समान उनके पीछे पीछे चले ।--

"न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः ।
मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना ।"

"राम के पास सोये बिना उन्हें रात्रि में नींद नहीं आती थी और राम के प्रसाद को छोड़ कर किसी उत्तम से उत्तम पदार्थ से भी उनकी तृप्ति नहीं होती थी ।"

"यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः ।
अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन् ॥"

"रामचन्द्र जब घोड़े पर सवार हो शिकार खेलने जाते थे तब उनके विश्वस्त अनुचर लक्ष्मण हाथ में धनुष ले उनके शरीर की रक्षा करते हुए उनके पीछे पीछे चलते थे ।" जिस दिन विश्वामित्र के संग रामचन्द्र राक्षसों के वध करने का संकल्प कर घने वन में बिचर रहे थे उस दिन भी काकपक्षधर लक्ष्मण उनके साथ ही साथ थे । बालकपन के दृश्यों के इन सब चित्रों में आत्मसंयमी लक्ष्मण की भ्रातृ-भक्ति का चित्र मौन भाव ही से विकसित हो रहा है ।

रामचन्द्र को राजगद्दी होने के समाचार प्रगट होने पर सभी लोग थोड़ी बहुत प्रसन्नता प्रगट करने के लिए व्यग्र थे किन्तु लक्ष्मण के मुख पर कोई आह्लाद-सूचक चिन्ह नहीं था और वे चुपचाप रामचन्द्र की छाया के समान उनके पीछे पीछे चलते थे । किन्तु राम स्वल्पभाषी भ्राता के हृदय को जानते थे, उन्होंने अभिषेकसंवाद से सुखी हो सब से पहले लक्ष्मण को गले लगा कर कहा,--

"जीवितञ्चापि राज्यञ्च त्वदर्थमभिकामये ।"

"हम जीवन और राज्य को तुम्हारे ही लिये कामना करते हैं।" ज्येष्ठ भ्राता की ऐसी हो दो एक बातें--लक्ष्मण के अपूर्व स्नेह की एकमात्र पुरस्कार-लक्ष्मण को परम सन्तोष देनेवाली थीं। हम कल्पना रूपी नेत्रों से देख सकते हैं कि लक्ष्मण के दोनों कपोल मौनयुक्त प्रसन्नता से दमदमा रहे थे।

किन्तु रामचन्द्र के साथ यदि कोई अन्याय करता तो उसे यह स्वल्पभाषी युवक क्षमा करना नहीं जानते थे। जिस दिन कैकेयी ने अभिषेक-व्रतोज्ज्वल प्रफुल्ल रामचन्द्र को मृत्यु-तुल्य वनवास की आज्ञा सुनाई तो रामचन्द्र का मुख सहसा वैराग्य की ज्योति से जगमगा उठा, उन्होंने ऋषियों के समान निर्लिप्त भाव से वनवास की कठोर आज्ञा माथे पर चढ़ाई, अभिषेक के लिए जो सब सामग्री एकत्र हुई थी वह उनसे मानो व्यंग कर रही थी; उस दिन उस टेढ़े समय में उनका कोई संगी साथी नहीं था, केवल चिरसुहृद भक्त लक्ष्मण व्यथित होकर उनके पीछे खड़े थे। वाल्मीकि ने इस मौनचित्र को दो पंक्तियों में इस प्रकार अङ्कित किया है—

"तं वाष्पपरिपूर्णाक्षं पृष्ठतोऽनुजगामह ।
लक्ष्मणः परमक्रुद्धः सुमित्रानन्दवर्द्धनः ॥"

"लक्ष्मण बड़े क्रुद्ध होकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से भाई के पीछे पीछे जाने लगे।"

इस अन्यायपूर्ण आदेश को वे सहन नहीं कर सके। रामचन्द्र जिन्हें अकुण्ठित चित्त से क्षमा कर देते थे, लक्ष्मण उन्हें क्षमा करना नहीं जानते थे। राम के वनवास के सम्बन्ध में कौशल्या के सामने उन्होंने बड़ा वितण्डावाद किया और

वे क्रुद्ध होकर सारी अयोध्या का नाश करने पर उतारू हो गये । उन्होंने राम की कर्तव्यबुद्धि की प्रशंसा नहीं की और यही समझाने की चेष्टा करते रहे कि पिता के इस गर्हित आदेश का पालन करना धर्मसंगत नहीं है । इस तेजस्वी युवक ने जब देखा कि रामचन्द्र निश्चय ही वन को जायंगे तब न मालूम किस अपूर्व कोमलता ने उनपर अधिकार कर लिया और वे बालक की तरह रामचन्द्र के चरणों में लोट कर रोने लगे—

"ऐश्वर्यञ्चापि लोकानां कामये न त्वया विना ।"

"तुम्हारे बिना मैं अमरत्व अथवा त्रिलोकी के राज्य की भी इच्छा नहीं करता ।" उन्होंने रामचन्द्र के पैरों में पड़ कर उन्हें आसुओं से भिगो दिया और उनकी क्षात्र तेज से दीप्त मूर्ति नवोढ़ा स्त्री की तरह फूल के समान अत्यन्त कोमल होगई और उन्होंने रामचन्द्र से साथ ले चलने के लिए प्रार्थना की । यह प्रार्थना स्नेह-सूचक दीर्घ वक्तृता में अभिव्यक्त नहीं हुई किन्तु बहुत थोड़े शब्दों में उन्होंने साथ चलने के लिए रामचन्द्र से अनुमति मांगी पर उन थोड़े से शब्दों में भी स्नेहगम्भीर और आत्मत्यागी हृदय की छाया विद्यमान् थी । रामचन्द्र ने उन्हें गोद में उठा लिया और "प्राणसम प्रिय" "वश्य" "सखा" प्रभृति स्नेह-मधुर सम्भाषण से सन्तुष्ट कर उनको वन साथ चलने के लिए मना करने लगे और उन्हें अनेक प्रकार से समझाने लगे, किन्तु लक्ष्मण ने दो एक दृढ़-वचनों द्वारा अपना अटल संकल्प इस प्रकार प्रगट किया कि, "आपने लड़कपन में हमसे प्रतिज्ञा की है कि हम जन्म भर तुम्हारे सहचर रहेंगे, क्या आज आप उसे तोड़ना चाहते हैं ?"

लक्ष्मण वन को साथ गये। इस आत्मत्यागी देवता के लिए किसी ने विलाप नहीं किया। जिस दिन विश्वामित्र ने दशरथ से राम को मांगा था, उस दिन—

"ऊनषोड़षवर्षों में रामो राजीवलोचनः।"

'हमारे राजीव-लोचन रामचन्द्र पंद्रह वर्ष के हैं।' कह कर वृद्ध राजा भयभीत होकर गिर पड़े थे किन्तु उनसे कनिष्ट एक और राजीव-लोचन जिन्होंने दुरन्त राक्षसों के बध करने में भाई का साथ दिया था उनके लिये किसी ने आक्षेप नहीं किया। आज राम-लक्ष्मण-सीता वन को चले गये हैं और अयोध्या के सब नेत्रों से राम और सीता के लिए रह रह कर अश्रुओं की झड़ी लग रही है। सीता के चरण-कमलों से महावर मिट जायगा और जहाँ तहाँ उनमें काँटे चुभेंगे; बहुमूल्य शैया पर सोनेवाले रामचन्द्र वृक्ष के नीचे पृथ्वी पर शयन करेंगे और प्रातःकाल मतवाले हाथी की तरह धूल से लिपटे हुए शरीर से उठेंगे, जो सदा गगन-स्पर्शी प्रासाद में निवास कर बन्दीजनों द्वारा कर्णमधुर गीत सुना करते थे वे कैसे जटाचीर धारण कर वन वन में टक-राते हुए वृक्ष के नीचे जमीन ढूंढ़ कर आश्रय ग्रहण करेंगे। इस प्रकार की आक्षेपपूर्ण बातें दशरथ और कौशल्या से ले-कर हर अयोध्यावासी के कण्ठ से सुनाई पड़ती थीं। प्रजा ने रथ का पहिया पकड़ कर सुमन्त्र से कहा था—

"संयच्छ वाजिनां रश्मीम् सूत याहि शनैः शनैः।
मुखं द्रक्ष्यामो रामस्य दुर्दर्शनो भविष्यति॥"

"हे सारथि घोड़ों की लगाम रोक कर धीरे धीरे चलो हम राम के मुख को अच्छी तरह देख लें क्योंकि फिर

तो हमें उनका दर्शन ही दुर्लभ हो जायगा ।"—किन्तु लक्ष्मण के लिए किसी ने आक्षेप नहीं किया और तो और, सुमित्रा ने भी विदा होते समय पुत्र को गले लगाकर आँसू नहीं बहाये । उसने दृढ़ और बड़े प्रेम भरे स्वर से लक्ष्मण से कहा—

"रामं दशरथं विद्धि माम् विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ॥"

"जाओ पुत्र, प्रसन्नता से वन को जाओ-राम को दशरथ, सीता को मुझे और वन को अयोध्या समझना ।" लक्ष्मण को माता का अश्रुविन्दु नहीं मिला किन्तु सुमित्रा ने उन्हें अपना कर्तव्य पालन करने के लिए आग्रहपूर्वक शीघ्रता करने के लिए कहा—

"सुमित्रा गच्छ गच्छेति पुनः पुनरुवाच तम् ।"

'सुमित्रा उनसे बारंबार "जाओ जाओ" कहने लगी ।

मौन संन्यासी अपने सुहृद्वर्ग द्वारा उपेक्षित हुए किन्तु इसका उन्होंने मन में ख्याल नहीं किया और रामचन्द्र के लिए जो शोक उमड़ रहा था। उसमें वे अपने को भूल गये । उन्होंने अपने लिए किसी से विलाप की आशा नहीं की और राम के प्रेम में उनकी सत्ता विलुप्त हो गई थी।

आरण्य जीवन में जो कुछ कठोरता उपस्थित हुई उसका अधिक भाग लक्ष्मण के ऊपर पड़ा अथवा यों कहिये कि उसे उन्होंने आह्लादपूर्वक स्वयं अपने सिर पर ले लिया ।

पर्वत के नीचे पुष्पित तरुओं से फूल तोड़ कर रामचन्द्र सीता के खुले हुए केशों में पहिराते थे; कहीं गेरू को घिस कर वे सीता के सुन्दर ललाट पर तिलक लगाते थे; कहीं कमल

तोड़ कर वे सीता के साथ मन्दाकिनी में स्नान करते थे अथवा गोदावरी के किनारे वेंतों की कुंज में सीता की गोद में अपना सिर रख कर आनन्द से सोते थे। और इधर मौन सन्यासी कुदार से मिट्टी खोद कर पर्णशाला बना रहे थे, कभी हाथ में कुठार ले शाल की शाखाएं काटने लगते थे, कभी अस्त्रशस्त्र और सीता के वस्त्र और अलङ्कारों से भरी हुई बाँस की बड़ी पेटी हाथ में लिये हुए एक जगह से दूसरी जगह जाते थे और कभी गोबर और ईंधन इकट्ठा कर आग जलाते थे। एक दिन देखते हैं कि वे जाड़े में पिछली रात के समय जब ओस पड़ने से अँधियारी छाई हुई थी ऐसे वन-मार्ग से होकर जो गेहूं और यव से भरा हुआ था नाल-शेष नलिनी-शोभित ताल से कलसा भर कर जल ला रहे थे। एक और दिन देखते हैं कि चित्रकूट पर्वत की पर्णमाला से लेकर सरोवर तक मार्ग की पहिचान के लिए उन्होंने जगह जगह वृक्षों की ऊँची शाखाओं पर चिथड़े बाँध दिये थे। कभी वे कोमल दूब और पत्तों से रामचन्द्र के लिए शैया निर्माण करना चाहते थे, कभी देखते हैं कि कालिन्दी पार होने के लिए वे बड़े बड़े लक्कड़, सूखे वन और वेंत की लताओं से उसे पार कर उसके बीच में जामुन की साखों से सीता के बैठने के लिए सुखासन बनाते थे। रामचन्द्र ने पञ्च-वटी में पहुंच कर लक्ष्मण से कहा, "इस प्रकार सुन्दर तरु-राजिपूर्ण प्रदेश में पर्णकुटी बनाने के लिए एक स्थान तलाश कर लो।" लक्ष्मण ने कहा, "आप जिस स्थान को पसन्द करें दिखा दें, सेवक के ऊपर निर्वाचन का भार न दें।" प्रभु की सेवा में इस प्रकार अपने को भूल जानेवाला भृत्य और कहाँ दिखलाई पड़ेगा? रामचन्द्र ने स्थान बता दिया, लक्ष्मण

भूमि को बराबर कर कुदार हाथ में ले मिट्टी खोदने लगे।

और एक दिन का दृश्य याद आता है। घने वन में चारों ओर काले साँप बिचर रहे थे, मार्ग भूले हुए ये विपद्-ग्रस्त तीनों पथिक रात बिताने के लिए जंगल के एक कोने में वृक्ष के नीचे पड़े हुए थे और सीता का सुन्दर मुख निराहार और भ्रमण से श्रीहीन सा हो गया था। रामचन्द्र को इस दुःखमयी रजनी का कष्ट असह्य हो गया और वे लक्ष्मण को अयोध्या लौट जाने के लिए बारंबार तंग करने लगे, "यह कष्ट हमें और सीता ही को मिले, तुम लौट जाओ और शोक की दशा में हमारी माताओं को सान्त्वना देकर उनका पालन करो।" लक्ष्मण अपने स्नेह के सम्बन्ध में बहुत बातें कहना नहीं जानते थे। वे रामचन्द्र के इन कातर वचनों से दुःखित होकर बोले—

"नहि तातं न शत्रुघ्नं न सुमित्रां परन्तप।
द्रष्टुमिच्छेयमद्याहं स्वर्गञ्चापि त्वया विना॥"

"हम माता, पिता, शत्रुघ्न और क्या स्वर्ग भी तुम्हारे बिना देखना नहीं चाहते।"

कबन्ध मरा, जटायु मरा; हम देखते हैं कि लक्ष्मण ने चुपचाप चिता बना कर और उस पर लकड़ी चुन कर कबन्ध और जटायु का संस्कार किया। रात दिन उन्हें चैन नहीं था, भ्राता की सेवा करना ही उनके जीवन की परम आकांक्षा थी। इससे वन आते समय उन्होंने कहा था—

"भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंश्यसे।
अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते।
धनुरादाय सगुणं खनित्रपिटकाधरः॥"

"देवी जानकी के साथ पर्वत के नीचे आप विहार करेंगे, आप जागें चाहे सोवें मैं आपका सब काम करूंगा। हाथ में धनुष, कुदार और थापी लिये हुए मैं आपके साथ साथ चलूंगा।"

वनवास के अन्तिम वर्ष में विपद आ उपस्थित हुई; रावण सीता को हर ले गया। सीता के शोक में रामचन्द्र पागल हो गये और लक्ष्मण भी पागल की तरह सीता को इधर उधर ढूंढने लगे। रामचन्द्र की आज्ञा से बारंबार गोदावरी के तट पर सब जगह अच्छी तरह खोज कर वे लौट आये, इस प्रकार उन्होंने गोदावरी के तीर को पूरी तरह छान डाला पर राम ने तब भी यही कहा।—

"शीघ्रं लक्ष्मण जानीहि गत्वा गोदावरीं नदीम्।
अपि गोदावरीं सीता पद्मान्यानयितुं गता॥"

"हे लक्ष्मण शीघ्र जाकर गोदावरी नदी पर सीता की खोज करो। हो न हो, सीता गोदावरी ही को कमल लेने गई है।"

पुनः लक्ष्मण गोदावरी के तीर पर जाकर सीता को पुकारने लगे किन्तु उनका पता न पा कर वे बड़े भय से राम के पास आकर आर्तस्वर से बोले—

"कं नु सा देशमापन्ना वैदेही क्लेशनाशिनी॥"
"मालूम नहीं क्लेशनाशिनी वैदेही किस देश को गई है।"
"नैतां पश्यामि तीर्थेषु क्रोशतो न शृणोति मे।"

"गोदावरी के अन्तर्गत कहीं भी वे नहीं दिखाई दीं, पुकारने पर भी कहीं से कुछ उत्तर नहीं मिला।"

"लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दीनः सन्तापमोहितः।
रामः समभिचक्राम स्वयं गोदावरीं नदीम्॥"

'लक्ष्मण की बातें सुन कर सन्ताप-मोहित रामचन्द्र मरे हुए मन से स्वयं गोदावरी की ओर दौड़ने लगे।'

भ्राता के इस उद्दाम शोक को देख कर लक्ष्मण को जो कष्ट हुआ उसका अनुभव नहीं किया जा सकता। कई प्रकार से उन्होंने रामचन्द्र को सान्त्वना देने की चेष्टा की पर राम किसी प्रकार शान्त नहीं होते थे। लक्ष्मण के गले लग कर राम बारंबार कहते थे—

'हा लक्ष्मण, महाबाहो पश्यसि त्वं प्रियां क्वचित्।'

'हे लक्ष्मण, क्या तुम सीता को कहीं देखते हो?' यह शोकाकुल आर्तनाद सुन कर लक्ष्मण के नेत्रों में जल भर आता और मुख सूख जाता था।

दनु नामक शापग्रस्त गन्धर्व के निर्देशानुसार राम-लक्ष्मण पम्पा के किनारे सुग्रीव की तलाश में गये। रास्ते में कभी राम जल्दी जल्दी चलते थे, कभी मूर्च्छित होकर गिर पड़ते थे, कभी व्याकुल कण्ठ से "सीता सीता" पुकारने लगते थे, कभी "हा देवी, एक बेर आकर अपनी सूनी पर्ण-कुटी की दशा देख जाओ" यह कहते और रुदन करते करते अचेत हो जाते थे और कभी पम्पा में खिले हुए कमलों की सुगन्धित वायु से उल्लसित होकर बोल उठते,—

'निश्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहरः।'

"सीता के श्वास के समान मनोहर वायु चल रही है।"

जब अश्रुपूर्ण नेत्रों से चिरसुहृद् और चिरसेवक लक्ष्मण राम को इस अवस्था में पम्पा सरोवर पर ले गये उस समय

सुग्रीव के भेजे हुए हनूमान वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने उनसे परिचय करने की इच्छा से सम्भ्रम और आदरपूर्वक कहा, "आप में पृथ्वी के विजय करने की शक्ति है, आप चीर और वल्कल क्यों धारण किये हैं ? आप की गोल और सुडौल विशाल भुजाएँ सब भूषणों से भूषित होने के योग्य हैं, वे भूषणहीन कैसे हैं ?" यह आदरसूचक वाणी सुन कर लक्ष्मण का बहुत काल का रुका हुआ दुःख बाहर निकल पड़ा। जो मौन रहकर बहुत काल से अपने स्नेहार्द्र हृदय को रोके हुए थे, आज वे स्नेह के छन्द और भाषा को रोक नहीं सके। परिचय देने के बाद उन्होंने कहा, "दनुगन्धर्व के निर्देशानुसार आज हम सुग्रीव की शरण में आये हैं। जो राम शरणागतों को अकुण्ठित चित्त हो विपुल धन दान देते थे वही जगन्पूज्य राम आज वानराधिपति की शरण ग्रहण करने के लिए आये हैं । त्रिलोक-विश्रुत-कीर्ति दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र और हमारे गुरू रामचन्द्र स्वयम् इस समय वानराधिपति की शरण ग्रहण करने आये हैं। जिनका आश्रय पाकर सब लोग कृतार्थ होते थे, जो प्रजा की रक्षा और पालन करते थे आज वे आश्रय की भिक्षा के लिए सुग्रीव के निकट उपस्थित हैं। इस समय वे बड़े शोकाकुल और आर्त हैं, अब सुग्रीव अवश्य ही प्रसन्न होकर उन्हें शरण देंगे।" यह कहते कहते लक्ष्मण के बहुत काल से रुके हुए अश्रु बह निकले और वे रोकर मौन हो गये। रामचन्द्र की दुरवस्था दिखाने में लक्ष्मण के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उनका दृढ़ चरित्र करुणा से आर्द्र हो गया। यह दुःख में सदा सहायक भृत्य, सखा और कनिष्ठ भ्राता रामचन्द्र को प्राणप्रिय थे यह कहने की आवश्यकता नहीं। अशोकवन में

सीता ने हनूमान से कहा था, "भ्राता लक्ष्मण मेरी अपेक्षा राम को सर्वदा अधिक प्यारे हैं ।" रावण की शक्ति के लगने से जिस दिन युद्ध में लक्ष्मण मृतकल्प होकर गिर पड़े थे, उस दिन हम देखते हैं कि जिस प्रकार आहत शावक की सिंघनी रक्षा करती है उसी प्रकार राम लक्ष्मण को हृदय में दबा कर बैठ गये । उस समय रावण के असंख्य बाणों ने रामचन्द्र की पीठ को छिन्न-भिन्न कर दिया पर उस ओर दृष्टि-पात भी न करके रामचन्द्र लक्ष्मण की ओर सजल चक्षुओं से देखते हुए उनकी रक्षा करने लगे । जब बानरों की सेना ने लक्ष्मण की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया तब राम युद्ध में प्रवृत्त हुए और रावण जब पीठ दिखा कर चला गया तब मृतकल्प भ्राता को रामचन्द्र ने बड़े प्रेम से आलिङ्गन कर कहा, "तुम जिस प्रकार हमारे साथ वन में आये हो, उसी प्रकार हम आज तुम्हारे साथ यमराज के यहां चलेंगे, तुम्हारे बिना हम जीवित नहीं रह सकेंगे । बहुत खोजने पर सीता के समान स्त्री मिल भी सकती है किन्तु तुम्हारा सा भाई, मन्त्री और सहायक नहीं मिलेगा । देश देश में बन्धु और स्त्रियां मिल सकती हैं किन्तु ऐसा देश नहीं दिखाई देता जहां तुमसा भाई मिले । इस समय आंख खोल कर हमारी ओर एक बेर देखो; हम जब पर्वत पर अथवा वन में शोकार्त्त, प्रमत्त और विपन्न अवस्था में थे उस समय तुमने ही प्रबोध वाक्यों से हमें सान्त्वना दी, इस समय इस प्रकार मौन क्यों हो ?"

राम की आज्ञा पालन करने में लक्ष्मण ने कभी चींचपड़ नहीं की, उनकी आज्ञा न्यायसंगत हो या न हो, लक्ष्मण चुपचाप सदा उसे पालन करते थे । राम ने बहुत सी सेना

के बीच में सीता को पालकी त्याग कर पैदल चलने की आज्ञा की, सैकड़ों लोगों की दृष्टि पड़ने से सीता लज्जा के मारे मरी जाती थी और लज्जावती के सारे अङ्ग कांप रहे थे। लक्ष्मण इस दृश्य को देखकर व्यथित हुए किन्तु राम के कार्य का उन्होंने प्रतिवाद नहीं किया। जिस समय अग्नि में प्राण विसर्जन करने का संकल्प कर सीता ने लक्ष्मण को चिता तैयार करने की आज्ञा दी, उस समय लक्ष्मण ने राम के अभिप्राय को समझ कर सजल नेत्रों से बिना प्रति-वाद किए चिता तैयार की। भाई के स्नेह में वे अपने अस्तित्व को भूल गये थे। भरत के, यहां तक कि सीता के भी मृदु और तेजोव्यञ्जक व्यक्तित्व का उसके अत्यन्त गम्भीर स्नेह में हमें पता लग सकता है किन्तु रामचन्द्र पर लक्ष्मण का ऐसा स्नेह था कि उसमें वे अपने व्यक्तित्व और अस्तित्व तक को बिलकुल भूल गये थे। भरत ने रामचन्द्र के लिए जो सब दुःख सहे थे उनसे हमारे प्राणों पर आघात लगता है, उन जैसे व्यक्ति के लिए ऐसा आत्मत्याग करना हमारी समझ में एक अपूर्व पदार्थ कहा जायगा; भरत मानो स्वर्ग में रहनेवाले देवताओं के समान हैं। उनके क्रियाकलाप ठीक ठीक पृथ्वी पर रहने वाले लोगों के समान नहीं हैं, वे सदा ही एक उच्चभाव की ओर हमारे मनोयोग को बल-पूर्वक आकर्षित करते हैं। किन्तु लक्ष्मण का आत्मत्याग ऐसे साधारण रूप में व्यक्त हुआ है, वह वायु और जल के समान इतने सहज में मिल सकता है कि अनेक समय भरत के आत्म-त्याग के सामने लक्ष्मण के कुदार से मट्टी खोदने आदि सेवा के कार्यों में उनके सुगम्भीर प्रेम के गुरुत्व को हम अनुभव करना भूल जाते हैं; जो वस्तु सहज में मिलती है लोग उसकी

परवाह नहीं करते। तथापि यह निश्चय है कि लक्ष्मण के बिना हम राम की थोड़ी देर के लिए भी कल्पना करने में असमर्थ हैं। वह राम के प्राण और शरीर दोनों में एक होकर मिल गये थे। दीर्घ रात्रि के बाद जिस प्रकार बालसूर्य के उदय होने पर जगत उद्भासित होता है और जैसे पृथ्वी के निवासी उस स्वर्ग से आये हुए प्रकाश की छटा से पुलकित हो उन्मत्त हो जाते हैं, भरत का भ्रातृप्रेम कुछ कुछ वैसा ही है—कैकेयी के षड़यन्त्र और राम के वनवास के पश्चात् भरत की अचिन्तितपूर्व प्रीति प्रकाशित होकर सहसा हमें ऐसे आश्चर्य में डालती है जिसकी कि हम उनसे आशा नहीं करते! किन्तु लक्ष्मण का प्रेम हमारे नित्य काम में आने वाले वायु के प्रवाह के समान है। उनके विशाल अपरि-सीम स्नेह की तरंगें हमको सञ्जीवित रख रही हैं, किन्तु हर घड़ी हम वायु के समान इसे भूल जाते हैं। लक्ष्मण ने राम से कहा था, "जल से निकली हुई मछली के समान मैं एक घड़ी भी आपके बिना नहीं जी सकता।" वे इस असीम स्नेह का कुछ मूल्य नहीं चाहते थे, उनका स्नेह स्वयं ही अपना परम पारितोषिक था, वह अपने आप में सम्पूर्ण था, वह किसी से कुछ आशा नहीं करता था वरन दाता के समान वह सब को सब कुछ देता था। जब कभी राम अनेक कार्यों में व्यग्र हुए लक्ष्मण से कोई प्रेम की बात कहते, या कभी उन्हें आलिङ्गन करते तो लक्ष्मण पुलकित हो जाते और उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु से देख पड़ते किन्तु वे राम से कभी ऐसी आशा नहीं करते थे।

अब तक लक्ष्मण के चरित्र का एक ही अंश दिखाया गया पर उनके चरित्र का एक अंश और है। पूर्वोक्त बातें

पढ़ कर कोई कोई लोग समझते हैं कि लक्ष्मण कोई बहुत बड़े बुद्धिमान् नहीं थे। यह सत्य है कि वे बड़े भाई के पीछे पीछे चलने वाले थे पर इसमें सन्देह है कि राम को छोड़ कर और कोई उन्हें परास्त कर सकता हो। वे बहुत दिनों से राम की बुद्धि द्वारा चलते थे, सहसा अकेले संसार में जीवन व्यतीत करना उनके लिए बहुत कठिन होता इसी लिए वे रामगत प्राण होकर वन में गये थे। इस बात को तो हम मानेंगे ही नहीं और अच्छी तरह आलोचना करने पर विदित होगा कि लक्ष्मण ही रामायण में पुरुषार्थ के एक मात्र जीवन्त चित्र हैं। उनकी बुद्धि राम की बुद्धि से सदा ही मिल जाती हो यह बात नहीं है परन्तु जहाँ उनका मत नहीं मिलता था वहाँ वे अपनी बुद्धि को राम की प्रतिभा के सामने हतबल नहीं होने देते थे।

वे वनवास की आज्ञा को बड़ा भारी अन्याय समझते थे और पिता की आज्ञा को पालन करना धर्मविरुद्ध मानते थे। राम ने लक्ष्मण से कहा था, "क्या तुम इस कार्य को दैवशक्ति का फल न मानोगे? यदि आरम्भ किये हुए कार्य को नष्ट करके किसी असंकल्पित पथ में कार्यप्रवाह प्रवर्तित होने लगे तो उसे हम दैव का कार्य कहेंगे। देखो, कैकेयी सदा हमको भरत के समान प्यार करती थी, क्या उनके समान गुणशालिनी और ऐसे बड़े कुल में उत्पन्न हुई राजपुत्री इतरजनों के समान हमें कष्ट देने के लिए राजा को ऐसी प्रतिज्ञा में बाँधती? स्पष्ट ही यह दैव का कार्य है, इसमें मनुष्य का कुछ हाथ नहीं है।" लक्ष्मण ने उत्तर दिया। "अति दीन और अशक्त व्यक्ति ही दैव की दुहाई दिया करते हैं, पुरुषार्थ के द्वारा जो लोग दैव का सामना करते हैं वे

आपके समान क्षुब्ध नहीं होते। सीधे आदमी सदा पराजित होते हैं—"मृदुर्हि परिभूयते।" धर्म और सत्य का ढोंग दिखा कर पिता ने जो घोरतर अन्याय किया है क्या आप उसे नहीं जानते? आप देवता के समान सीधे और दान्त हैं और शत्रु भी आपकी प्रशंसा करते हैं। ऐसे पुत्र को वह किस अपराध से वन भेजते हैं? आप जिस धर्म को पालन करने के लिए व्याकुल हैं, उस धर्म को हम तो नितान्त अधर्म समझते हैं। स्त्री के वश में होकर निरपराध पुत्र को वनवास देना क्या यही सत्य-पालन और यही धर्म है? हम आज ही अपने बाहुबल से आपका अभिषेक करेंगे। देखें, कौन हमारे सामने आता है? आज हम पुरुषार्थ रूपी अंकुश से दैवरूपी मतवाले हाथी को अपने वश में करेंगे। जिसको आप दैव के नाम से पुकारते हैं उसे आप अनायास ही हरा सकेंगे। तब आप क्या तुच्छ और अकिञ्चित्कर दैव की प्रशंसा करते हैं?" अश्रुपूर्ण दुःखित लक्ष्मण इसके बाद—

"हनिष्ये पितरं वृद्धं कैकेय्यासक्तमानसम्।"

'कैकेयी में आशक्त वृद्ध पिता का हम वध करेंगे।' यह कह कर क्रुद्ध हो उठे। उस समय राम ने लक्ष्मण का हाथ पकड़ कर उनके क्रोध को शान्त करने की बहुत चेष्टा की किन्तु यह गर्हित आज्ञा-पालन धर्मसङ्गत है इस बात को वे किसी तरह लक्ष्मण को न समझा सके। लङ्काकाण्ड में कपट की रची सीता के कटे हुए सिर को देख कर शोकाकुल रामचन्द्र से लक्ष्मण ने कहा था। "हर्ष, काम, दर्प, क्रोध, शान्ति और इन्द्रियनिग्रह ये सब धन के आधीन हैं। हमारे मन में यही धर्म है; किन्तु आपने इस अर्थमूलक धर्म को

छोड़ कर समूल धर्म को लोप कर दिया है। आपके पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके वनवासी होने ही पर राक्षस सीता को हर ले गये ।" यह अत्यन्त तेजस्वी युवक अपने स्वाभाविक स्नेह के कारण ही अपने व्यक्तित्व को सर्वथा भूल गये थे ।

भरत का चरित्र रमणियों के योग्य कोमल मधुरता से भूषित और सात्विक वृत्ति के ऊपर अधिष्ठित है । रामायण में राम के समान बलशाली चरित्र और नहीं हैं किन्तु कभी कभी राम दुर्बल और मृदुभावापन्न हो गये हैं। राम का चरित्र बड़ा ही जटिल है। किन्तु लक्ष्मण के चरित्र में आदि से लेकर अन्त तक पुरुषार्थ की महिमा दृष्टिगोचर होती है। उसमें भरत के समान करुणरस की सी स्निग्धता और स्त्रियों की सी खेदमुखर कोमलता नहीं है। वे सर्वदा दृढ़ पुरुषोचित और विपद में निर्भीक थे। किसी दशा में भी लक्ष्मण नमित नहीं हुए। विराध राक्षस के हाथ में सीता को निःसहाय रूप से पड़ी देख कर रामचंद्र "हाय, आज माता कैकेयी की आशा पूर्ण हुई" कहकर व्याकुल हो गये। लक्ष्मण ने भाई को इस अवस्था में देख क्रुद्ध सर्प की तरह साँस लेकर कहा, "आप इन्द्र के समान पराक्रमी होकर क्या अनाथ की तरह विलाप करते हैं? हटिये, हम इस राक्षस का वध करेंगे।"

शक्ति लगने के बाद जब लक्ष्मण को चेत हुआ और वे आंख उघाड़ कर देखने लगे कि राम उनके विलाप में सजल चक्षुओं से स्त्रियों के समान विलाप कर रहे हैं उस समय उन्होंने उसी कातर अवस्था में राम के इस प्रकार पौरुषहीन और मोहग्रस्त होने के लिए उनका तिरस्कार किया। सीता

के विरह में राम को अत्यन्त विह्वल और व्यथित देख कर उन्होंने जो उपदेश किया वह एक ओर उनके जैसे अत्यन्त गम्भीर स्नेह का व्यञ्जक है वैसे ही दूसरी ओर उनके चरित्र की दृढ़ता का सूचक है। "आप उत्साह को न छोड़ें" आप को ऐसी दुर्बलता दिखानी उचित नहीं "आप पौरुष से काम लें" इत्यादि बातों से स्नेह का पद-दलित कर उन्होंने एक दिन कहा था,—"देवताओं के अमृत लाभ करने के समान महाराज दशरथ ने बड़ी तपस्या और अनेक कठिन व्रत और साधन करके आपको प्राप्त किया, यह सब कथा हमने भरत से सुनी है कि आप तपस्या के फल हैं यदि विपद् में पड़ कर आप जैसे धर्मात्मा कष्ट नहीं सह सकते तो फिर बेचारे साधारण लोग क्या करेंगे।

यह हम पहले ही कह चुके हैं कि राम के साथ चाहे कोई जान कर अन्याय करता चाहे बिना जाने लक्ष्मण उसे क्षमा नहीं करते थे। दशरथ के सब गुणों को वे अच्छी तरह जानते थे। क्रोध के वशीभूत हो उन्होंने चाहे जो कह दिया हो पर इस बात का उन्होंने पहले ही अनुमान कर लिया था कि राम के विरह में दशरथ प्राण छोड़ देंगे तथापि उन्होंने मन से दशरथ को क्षमा नहीं किया। विदा होते समय जब सुमन्त्र ने लक्ष्मण से पूछा कि "कुमार, क्या पिता से कुछ कहेंगे?" तब लक्ष्मण ने उत्तर दिया "महाराज से कहना राम को उन्होंने क्यों वन भेजा, निरपराध ज्येष्ठ पुत्र को क्यों परित्याग किया? हमने इस बात पर बहुत विचार किया पर हमारे समझ में कुछ न आया। "हम महाराज के चरित्र में पितापने की कोई बात नहीं देखते हैं। हमारे भाई, बन्धु, भर्ता और पिता सब रामचन्द्र हैं।"

"अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये ।
भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघवः ।"

भरत पर उनको बहुत सन्देह था। कैकेयी के पुत्र भरत अपनी माता के मतानुसार चलते थे इसका उन्हें अटल विश्वास था और केवल राम की ताड़ना के भय से वे भरत के लिए कठोर वाक्यों का प्रयोग नहीं करते थे । किन्तु जब जटाजूटधारी और अनशन से कृश भरत राम के चरणों में लोट धूल में लिपट गये उस समय लक्ष्मण उनको पहिचान कर स्नेह और लज्जा से दुःखित हो मर से गये । एक दिन जाड़े की रात में बहुत ओस पड़ रही थी, जाड़ा अधिक पड़ने से पक्षी अपने घोंसलों में चले गये थे ऐसे समय में लक्ष्मण का हृदय भरत के लिए तड़फड़ा उठा और उन्होंने राम से कहा, "ऐसे घोर जाड़े में धर्मात्मा भरत आपकी भक्ति में लीन होकर तपस्या करते हैं। राज, भोग, मान, विलास सब को छोड़ कर स्वल्पहारी भरत इस भयानक जाड़े की रात में पृथिवी पर सोते हैं। संन्यासी के नियम पालन कर नित्य भरत प्रातःकाल होने के पूर्व ही ब्राह्ममुहूर्त में सरयू में स्नान करते हैं। सदा सुख भोगने के योग्य राजकुमार ऐसे जाड़े में पिछली रात में कैसे स्नान करते होंगे।" इन्हीं लक्ष्मण ने पहले—

"भरतस्य वधे दोषं नाहं पश्यामि कश्चन" ।

'भरत के बध करने में हम कोई दोष नहीं देखते' कहकर अपना क्रोध प्रगट किया था। जिस दिन उन्हें जान पड़ा कि जैसे वे वन वन में फिर कर राम की सेवा कर रहे हैं वैसे ही अयोध्या की महासमृद्धि में रह कर भी भरत राम की भक्ति में लीन होकर कठिन तपस्या कर रहे हैं उसी दिन

से उनका स्वर इतना स्नेहार्द्र और विनम्र हो गया। किन्तु उन्होंने कैकेयी को कभी क्षमा नहीं किया। एक दिन राम से उन्होंने कहा, "दशरथ जिसके स्वामी और साधु भरत जिसके पुत्र हों वह कैकेयी ऐसी निर्दय और निठुर कैसे हुई?"

लक्ष्मण में क्षत्रिय-वृत्ति का बहुत अधिक प्रकाश हुआ था। राम के साथ अन्याय करनेवालों के लिए सहसा वे अग्नि के समान जल उठते थे। इस अपराध के लिए वे पिता, माता, भ्राता किसी को भी क्षमा करना नहीं जानते थे।

शरद् ऋतु में आसन और सप्तवर्ण के फूल खिल रहे थे, कचनार के लाल फूल भी विकशित हो रहे थे, माल्यवान पर्वत के समीप नदी धीरे धीरे बह रही थी। फूलों से शोभायमान सप्तच्छद वृक्ष को गीतशील भौंरे घेर रहे थे और पर्वत के नीचे बन्धुजीव के श्यामल फल दिखाई पड़ने लगे। वर्षा के चार महीने विरही रामचन्द्र को शरद के सर्पतों की तरह बहुत बड़े बोध हुए। शरद् ऋत में नदियों में जल कम होने से वानरों की सेना सहज में सीता का पता लगा सकेगी इसलिए वे—

"सुग्रीवस्य नदीनाञ्च प्रसादमभिकांक्षयन्"

'सुग्रीव और नदियों के प्रसन्न होने की आकांक्षा कर शरद् ऋतु के आने की प्रतीक्षा करने लगे।' शरद् ऋतु आगई किन्तु अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिए सुग्रीव को कोई उद्योग करते न देख राम क्रुद्ध हुए और समझने लगे कि मूर्ख सुग्रीव अपने गाँव में मौज की छान रहा है और उपकार करने पर भी प्रत्युपकार करने में ढिलाई कर रहा है।

लक्ष्मण को उन्होंने सुग्रीव के पास भेजा और बन्धु सुग्रीव को अपने कर्तव्य का स्मरण कराकर कार्य में प्रवृत्ति करने के लिए जो सब बातें कहीं उनमें कितनी ही क्रोध सूचक बातें थीं—

'न स सङ्कुचितः पन्था येन वाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः॥'

'जिस मार्ग से बाली गया है वह बन्द नहीं हो गया है, सुग्रीव, तूने जो प्रतिज्ञा की है उसे पूरी कर और बाली के पथ का अनुसरण मत कर, किन्तु लक्ष्मण के चरित्र को ज्ञान कर रामचन्द्र ने एक "पुनश्च" बढ़ा कर लक्ष्मण को सावधान कर दिया कि,—

"तां प्रीति अनुवर्तस्व पूर्ववृतल सङ्गतम्।
सामोपहितया वाचा रुक्षाणिपरिवर्ज्जने॥"

"प्रीति के अनुसार और पूर्व मित्रता को स्मरण कर रुखाई छोड़कर सान्त्वना वाक्यों से सुग्रीव से बातें करना।" इस प्रकार सावधान करने का कारण था क्योंकि कुछ पहले ही लक्ष्मण ने कहा था; "आज उस मिथ्यावादी का हम नाश करेंगे। बाली का पुत्र अंगद अभी बानरों को लेकर सीता की खोज करेगा।"

अन्याय के प्रति लक्ष्मण को जो क्रोध हुआ वह राम की बातों से शान्त नहीं हुआ। वे सुग्रीव को क्रुद्ध कण्ठ से डाँट कर क्रोध से होठों को पीसते हुए धनुष लेकर खड़े हो गये। भय से सुग्रीव ने अपने गले में पड़ी हुई मनोहर माला तोड़ कर उसी समय राम के उद्देश्य की सिद्धि के लिए यात्रा की। ऐसे तेजस्वी युवक से तेजस्विनी सीता ने जो कठोर वचन कहे थे उन्हें उन्होंने कैसे सहा यह देख कर

आश्चर्य होता है। मारीच राक्षस राम की सी बोली से आर्त-स्वर से "लक्ष्मण कहाँ है" यह कह कर चिल्ला रहा था। सीता ने व्याकुल होकर उसी समय लक्ष्मण को राम के पास जाने की आज्ञा दी लक्ष्मण राम की आज्ञा उल्लङ्घन कर जाने को राजी नहीं हुए और सीता को समझाने की चेष्टा की और कहा कि मारीच ने किसी दुष्ट उद्देश्य से ही इस प्रकार अपनी बोली बदल ली है। किन्तु सीता उस समय स्वामी की विपत्ति की आशङ्का से साश्रुनेत्रों और क्रोध से लक्ष्मण से बोली, "तुम भरत के दूत हो, प्रच्छन्न ज्ञातिशत्रु हो और हमारे लालच से राम के संग आये हो, यदि राम का कुछ अनिष्ट हुआ तो हम अग्नि में प्रवेश करेंगी" यह बात सुन कर लक्ष्मण क्षण भर के लिए स्तम्भित और विमूढ़ होकर खड़े रह गये। क्रोध और लज्जा से उनका चेहरा लाल हो गया और उन्होंने कहा, "हे देवि, तुम हमारे लिए देवता स्वरूप हो, तुमको हमसे कुछ भी कहना उचित नहीं। स्त्रियों की बुद्धि स्वाभाविक ही भेद बढ़ानेवाली होती है; वे धर्महीन, क्रूर और चपल होती हैं। तुम्हारी बातें हमारे कानों में गरम लोहे के बाणों की तरह छिदती हैं। हम उन्हें किसी प्रकार सह नहीं सकते। तुम्हारी आज निश्चय ही मृत्यु आई है, चारों ओर अशुभ लक्षण दिखाई देते हैं।" यह कह कर जाने से पहले सीता से उन्होंने कहा, "हे विशालाक्षि इस समय सब वनदेवता तुम्हारी रक्षा करें।" क्रोध से होंठ पीसते हुए लक्ष्मण राम की खोज में चले गये।

लक्ष्मण का पुरुषोचित चरित्र सर्वत्र तेजपूर्ण है और उनकी पौरुषद्दृप्त महिमा सर्वत्र प्रकाशमान् और शुभ्र हर-

सिंगार के समान अत्यन्त निर्मल और अत्यन्त पवित्र है। सीता के गिराये हुए गहनों को सुग्रीव ने उठा लिया था, वे जब राम-लक्ष्मण के पास लाये गये तब लक्ष्मण ने कहा, "मैं हार और कड़ों की ओर लक्ष्य नहीं रखता था इसलिए उन्हें नहीं पहचान सकता। उनके नूपुरों को देखता था और उन्हें ही पहचानता हूं।" किष्किन्ध्या की पहाड़ी गुफाओं में स्थित राजधानी में प्रवेश कर गिरिवासिनी रमणियों के नूपुरों और कौंदनियों के मनोहर शब्द सुन कर—

"सौमित्रि लज्जितोऽभवत् ।"

'लक्ष्मण लज्जित हुए।'

यह लज्जा प्रकृत पौरुष का लक्षण है और चरित्रवान् साधु पुरुषों ही में ऐसी लज्जा देखी जाती है। जिस समय मद से विह्वल नेत्रवाली रमणियाँ अपने अङ्गों को नवा कर चलती हुई लक्ष्मण के निकट आईं—जब उनके विशाल श्रोणियों पर लटकती हुई सोने की कौंदनियों की लड़ें कुछ कुछ हिलती, उस समय—

"अवाङ् मुखोऽभवत मनुजपुत्रः ।"

'लक्ष्मण अवाक् रह जाते।'

लक्ष्मण लज्जा से अपना मुख नीचा कर लेते। ऐसे दो एक संकेत-वाक्यों से हमें लक्ष्मण के साधुत्व की छवि भली भाँति दृष्टिगोचर होती है। उस समय स्वाभाविक ही मन में होता है कि उन्हें देवता की तरह पूजें।

रामायण में लक्ष्मण के समान पौरुष का उज्ज्वल चित्र और दूसरा नहीं है। वे सदा निर्भीक, विपद् में धीर और

तीक्ष्ण और पैनी बुद्धि होने पर भी भ्रातृस्नेह के वशीभूत हो कर अपने को सर्वथा भूल गये थे। बड़ी भारी विपत्ति में भी स्त्रियों के समान उनकी वाणी कभी कोमल या कातर नहीं होती थी। जिस समय वे कबन्ध राक्षस के पंजे में पूरी तरह फंस गये उस समय उन्होंने राम की ओर देख कर केवल यही कहा—"देखो मैं राक्षस के आधीन हो गया हूं आप राक्षस को हमारी बलि चढ़ा कर भाग जाइये। हमारा दृढ़ विश्वास है कि आपको सीता शीघ्र मिल जायंगी। उन्हें प्राप्त कर और पैतृक राज्य को पुनः स्थापित कर आप हमें स्मरण रखियेगा।" इस कथा में विलाप का छन्द नहीं है। इसमें राम के प्रति असीम प्रीति और अपने आत्मोत्सर्ग का अतुल्य धैर्य सूचित होता है।

क्षात्रतेज की इस ज्वलन्त मूर्ति और मौन भ्रातृभक्ति के इस आदर्श की भारतवर्ष में बहुत काल से पूजा हो रही है। बोध होता है कि "सीता-राम" शब्दों की अपेक्षा "राम-लक्ष्मण" ये शब्द इस देश में अधिक प्रचलित हैं। जब हम सौभ्रातृ के विषय में विचार करते हैं तो हम लक्ष्मण से अधिक प्रशंसनीय उपमा की कल्पना नहीं कर सकते। भरत भ्रातृभक्ति के मोहनभोग स्वरूप हैं और सुकोमल भाव के समृद्ध उदाहरण हैं किन्तु लक्ष्मण भ्रातृभक्ति की दाल-रोटी के सदृश जीवन प्रदान करनेवाले हैं। अभिप्राय यह कि मोहनभोग लोगों को सदा नहीं मिलता पर दाल रोटी नित्य मिलती है और मोहनभोग की अपेक्षा प्राण और स्वास्थ्य के लिए अधिक हितकर है। आज हम स्वयं अपनी इच्छा से अपने गृहों को लक्ष्मण-सून्य कर रहे हैं। आज बहुत स्थानों में सहधर्मिणियों की जगह स्वार्थरूपिणी पैसे

की यार निशाचरियों ने हमें फंसा कर हमारे गृहों में एकाधिपत्य स्थापन कर लिया है। जिन्होंने एक उदर में स्थान पाया है उन्हें आज एक गृह में स्थान नहीं मिलता ! हाय, यह कैसी दैव की विडम्बना है कि जिन लोगों को विश्वनियन्ता ने माता के गर्भ ही से परम सुहृद्रूप से उत्पन्न कर हमें प्रकृत सौहार्द्र की शिक्षा दी है उन्हें छोड़ कर हम पंजाब और पूना से अपने सुहृदों का संग्रह करें ! क्या हमारी यह बात विश्वास के योग्य है ? आज हमारे राम वनवास को जा रहे हैं, और लक्ष्मण महल पर खड़े मौज से तमाशा देख रहे हैं; आज लक्ष्मण को अन्न नहीं मिल रहा है पर राम सोने के थाल में सुन्दर सुन्दर पदार्थ मजे में उड़ा रहे हैं। आज हमें हमारे कष्ट, हमारी दरिद्रता और वनवास का दुःख ये सब दूनी पीड़ा दे रहे हैं । हम अपने लक्ष्मणों को भूल गये हैं और यह नहीं समझ रहे हैं कि वे हमारे दुःख में सहायक और सदा के संगी हैं। हे भ्रातृवत्सल, महर्षि वाल्मीकि तुम्हें अङ्कित कर गये हैं, चित्र के रूप से नहीं किन्तु हिन्दुओं के गृह में देवताओं के समान आज पर्यन्त तुम्हारी पूजा होती है। अब तुम फिर हिन्दुओं के गृह में आ विराजो, वैसे ही प्रेम और आनन्द से एक जगह बैठकर हम लोग भोजन करें, तभी स्वर्ग से हमारे पितर इस दृश्य को देख कर आशिर्वाद देंगे, हमारी दक्षिण बाहु नवीन बल से दीप्त हो उठेगी और हम देखेंगे कि हमारे इस दुर्दिन का अन्त हो गया ।

कौशल्या ।

जब भरद्वाज मुनि ने दशरथ की रानियों से परिचय करने की इच्छा प्रगट की तब भरत ने उँगली से कौशल्या को दिखा कर कहा, "भगवन् ये जो अनशन से कृश और देवता के समान शान्तिमूर्ति देख पड़ती हैं यह हमारी बड़ी माता कौशल्या हैं।"

हमने यह जो दीन-हीन व्रतोपासकृश देवी का चित्र देखा यही कौशल्या की चिरन्तन मूर्ति है। महाराज दशरथ की पटरानी होने पर भी स्वामी इनका आदर नहीं करते थे। रामचन्द्र के वनवास के समय उनके मन में रुके हुए कष्ट का वेग एकाएक बाहर फूट पड़ा, उस समय उन्होंने स्वामी के अनादर की बात यों कही थी कि—

"न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पतिपौरुषे"

"हमें महाराज से कोई सुख या कल्याण नहीं मिला।" स्त्रियों के लिए बड़ा सुख स्वामी का अनुराग है। उसे वे प्राप्त न कर सकीं।

"स्वामी प्रतिकूल हैं इसलिए कैकेयी का परिवारवर्ग हमें बहुत कष्ट दे रहा है।"

"अतो दुःखतरं किन्नु प्रमदानां भविष्यति।"

'अतः स्त्रियों को सौत की ऐसी लाञ्छना से बढ़ कर और क्या कष्ट होगा?'

'जो हमारी सेवा करते हैं वे कैकेयी के भय से सदा शङ्कित रहते हैं। हम कैकेयी की किङ्करियों के समान हैं अथवा उनसे भी नीचे गिरी हुई हैं।' कौशल्या ने बड़े दुःख में ये सब बातें कहीं थीं।

केवल मात्र राम जैसा पुत्र पाकर वे अपने जीवन को कृतार्थ मानती थीं; यह पुत्र उन्हें सहज में नहीं मिला,-पुत्र की कामना से उन्होंने बड़ी तपस्या की और अनेक शारीरिक कष्ट सहे। हम रामायण के आदिकाण्ड में देखते हैं कि पुत्र की कामना से एक बार उन्होंने यज्ञ के अश्व की परिचर्या कर सारी रात बिता दी। इस व्रतनिरत, क्षौमवास साध्वी का स्वभाव सदा नम्र, बड़ा कोमल और मधुर था। भगिनी के समान प्रेमपूर्ण व्यवहार से उसने कैकेयी की निठुरता सुधार दी थी; भरत ने कैकेयी को डाँट कर कहा था, "कौशल्या सदा ही तुमसे भगिनी के समान स्नेह करती है तुमने इस प्रकार उस पर वज्रपात क्यों किया?" क्षमाशील कौशल्या कैकेयी के सैकड़ों अत्याचारों और सब से बढ़ कर अत्याचार स्वामी के चित्त में एकाधिपत्य स्थापन कर लेने पर भी उसे बहिन के समान प्यार करती थी। बड़ी रानी की इस क्षमा और उदार स्निग्धता की तुलना कहाँ है? दशरथ अनेक समय कैकेयी के ही महल में विश्राम करते थे, यह बात हमने भरत के मुख से ही सुनी है;—

"राजा भवति भूयिष्ठमिहाम्बाया निवेशने"।

"राजा माता के महल में होंगे।" अतएव कौशल्या को हम जिसी समय देखते हैं उसी समय उनको व्रत पूजा और अर्चन आदि ही में रत देखते हैं, स्वामी के अनादर करने के

कारण उन्हें केवल एक इसी जगह शान्ति मिलती थी; जगत में उन्हें खड़े होने के लिए स्थान नहीं था। किन्तु जो अनाथों के नाथ और जिनके स्नेह-कोमल बाहु दुःखितों को सादर छाती से लगा कर शान्ति देते थे, उन्हीं परम देवता का कौशल्या ने आश्रय लिया था, इस लिए संसार के दुःख सह कर उनका चरित्र कठोर किंवा कटु नहीं हुआ वरन और भी अमृत रस से भर उठा। रामायण में देवताओं की सेवा में नियत कौशल्या को देख कर मन में होता है कि संसार के दुःखों से बचने के लिए ही वे भगवान की सेवा-पूजा में काल यापन करती थी।

इस दुःखिनी के लिए रामचन्द्र के समान पुत्र मिलना ही एक मात्र सुख था। जिस दिन रामचन्द्र ने उसे अपने अभिषेक का संवाद सुनाया उस दिन उसने बड़े ही प्रेम से देवताओं की अर्चना-पूजा की। उसने समझा कि हमारा सब पूजा-पाठ आज सार्थक हुआ। रामचन्द्र में सैकड़ों गुण होने पर भी वे जो पिता के बड़े स्नेह-भाजन हो गये थे इसे वह सब से बड़ा गुण समझती थी, इसके स्मरण से ही वह बड़ी प्रसन्न और विस्मित हुई—

"कल्याणे वत् नक्षत्रे मया जातोऽसि पुत्रक।
येन त्वया दशरथो गुणैराराधितः पिता॥"

'हे पुत्र तुमने बड़े ही शुभ समय में जन्म लिया है कि तुमने अपने गुणों से महाराज दशरथ को प्रसन्न कर लिया।' राजा दशरथ का स्नेह लाभ करना कैसे दुर्लभ भाग्य का फल है इसे साध्वी कौशल्या ने आजीवन तपस्या करके जाना था। शुभ अभिषेक के स्मरण होने पर रानी

अपने अञ्चल से गलदश्रुओं को पोंछ कर रामचन्द्र को आशिर्वाद देती थी।

राम का अभिषेक-उत्सव है; इतने दिनों में आज माता आनन्द के आह्वान से आमन्त्रित हुई है। किन्तु अमूल्य वस्त्र धारण कर और हर्ष और गर्व से दाँत निकाल कर उसने इस अवसर पर प्रगल्भा स्त्रियों के समान आचरण नहीं किया। मन्थरा शशांक-संकाश* महल पर खड़ी हुई मन ही मन में सोचने लगी कि—

"राममाता धनं किन्तु जनेभ्यः सम्प्रयच्छति।"

"यह कौशल्या दरिद्रों, ब्राह्मणों और याचकों को क्या धन सा देती है?" राम ने देखा कि वह पवित्र पीताम्बर धारण कर अग्नि में आहुति दे रही है और एकाग्र मन से विष्णु भगवान की पूजा कर रही है। देवार्चन कर धर्मिष्ठ कौशल्या की सब कामनाएँ सफल हुईं और देवार्चन में वह और भी आग्रह से लग गई।

इसी स्थान पर रामचन्द्र ने माता को वनवास का निष्ठुर संवाद सुनाया; इस संवाद ने पुत्रसम्बला† जननी के हृदय को विदीर्ण कर दिया।

"सा निकृत्तेव शालस्य यष्टि परशुनावने।
पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता॥"

"जैसे वन में कुल्हाड़ी से शाल का वृक्ष गिर पड़ता है, स्वर्ग से जैसे देवता गिर जाते हैं वैसे ही कौशल्या सहसा

---

* शशांकसंकाश=जहां से शशांक (चन्द्रमा) बहुत निकट मालूम पड़ता हो। † पुत्रसम्बला=पुत्र ही है सहारा जिसका।

पृथ्वी पर गिर पड़ी" गिर पड़ी सही पर दशरथ के समान उसने प्राण त्याग नहीं किया।

दशरथ ने प्रकृत पाप के फल से प्राण त्याग किया था। राम को वन भेजने से उन्हें बहुत शोक हुआ पर इससे भी अधिक मनस्ताप उन्हें इस बात से हुआ कि उन्होंने निरपराध पुत्र को ऐसा दण्ड दिया। यह निश्चय पूर्वक कहना बहुत कठिन है कि राजा शोक से मरे या लज्जा से अथवा चिर-सुखोचित कुमार को जटा-चीर-धारण किये देखकर ही उनका कष्ट असहनीय हो गया या कोई अपराध न करने पर भी निरपराध को अपराधिनी के कहने से निर्वासन का दण्ड देने के कारण ही लज्जा ने उन्हें दबा लिया। आजन्म तपस्विनी कौशल्या को पुत्र के विरह में बहुत शोक हुआ किन्तु दशरथ के समान सन्तप्त होने का उसके लिए कोई कारण नहीं था। विशेष कर दशरथ सदा सुख से रहने के अभ्यासी थे, उन्हें गार्हस्थ-जीवन में स्नेह का यह अभिशाप पहले ही पहल प्राप्त हुआ और वृद्धावस्था में उसे सहने की उनमें शक्ति नहीं थी। कौशल्या सदा ही से दुःखिनी, स्नेहवञ्चिता और देवताओं की पूजा में लगी रहती थी यह दुःख पूर्ववर्ती दुःखों का एक प्रकार भेद मात्र था, उसने स्नेहजनित अनेक कष्ट सहे थे, उन्हें सहते सहते धर्मशीला कौशल्या में अपूर्व सहिष्णुता उत्पन्न हो गई थी। उसने ऐसे महादुःख के समय जो अपूर्व सहिष्णुता दिखाई थी वह हमें आश्चर्य में डालती है।

वन जाने के सम्बन्ध में उसने रामचन्द्र से कहा, "तुमने पिता के सत्य की रक्षा करने के लिए वन जाना निश्चय किया है किन्तु क्या माता का ऋण तुम पर ऋण नहीं है? हम आज्ञा

देती हैं कि तुम यहीं रहकर इस वृद्धावस्था में हमारी सेवा करो इससे तुम धर्मभ्रष्ट न होगे। माता की आज्ञा उल्लंघन कर पिता की आज्ञा पालन करने के लिए वन जाना धर्मसंगत नहीं होगा।" श्रीरामचन्द्र ने कहा, "हम पहले ही प्रतिज्ञा कर चुके हैं, विशेष कर पिता तुम्हारे और हमारे दोनों के प्रत्यक्ष देवता हैं, पिता की आज्ञा से कण्डू ऋषि ने गोहत्या की थी, हमारे पूर्वज सगर के पुत्रों ने भी पिता की आज्ञा से अत्यन्त कठिन व्रत धारण कर आश्चर्य रूप से प्राण त्याग किया था, हम पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकेंगे। यदि उन्होंने काम अथवा मोह के वशीभूत होकर यह आज्ञा दी है तो हमें उस पर विचार करने का अधिकार नहीं है किन्तु उनकी प्रतिज्ञा पालन करना ही हमारा कर्तव्य है।" कौशल्या ने कहा, "देखो वन में गाय-भैंस भी अपने बछड़ों के पीछे २ जाती हैं, तुम्हारे बिना हम कैसे बचेंगी? तुम हमें साथ ले चलो, तुम्हारा मुख देख कर तृण खाकर जीवन धारण करना भी हमारे लिए श्रेष्ठ है।" राम ने कहा, "पिता आपके भी प्रत्यक्ष देवता हैं, उनकी सेवा-सुश्रूषा करना ही आपके जीवन का श्रेष्ठ व्रत है, आप स्वल्पाहारी रह कर इस धर्मानुष्ठान में चौदहवर्ष व्यतीत करें, चौदह वर्षों के बाद शीघ्र ही हम आकर आपके श्रीचरणों की वन्दना करेंगे।" लक्ष्मण ने घोर वाग्वितण्डा उपस्थित करके इस अन्यायपूर्ण आज्ञा-पालन करने का निषेध किया। सजल नेत्रों से आसुओं को आँचल से पोंछती हुई कौशल्या सभी बातें सुन रही थीं। उसके सामने धर्मावतार, सौम्य-मूर्ति और माता के दुःख से दुःखी रामचन्द्र ने धर्म के लिए, पवित्र प्रतिज्ञा के पालन करने के लिए बड़ी मधुरता, प्रेम

और दृढ़तापूर्वक अपने प्राण उत्सर्ग करने का जो अटल संकल्प प्रगट किया और क्रुद्ध लक्ष्मण का हाथ पकड़ कर उनका क्रोध शान्त करने के लिए सविनय उनसे राम ने जो बातें कहीं उससे देवीस्वरूपिणी कौशल्या देवतुल्य पुत्र के अपूर्व धर्मभाव को देख कर विलक्षण रूप से सहिष्णु हो उठीं; कौशल्या के हृदय में धर्म की कथा व्यर्थ जानेवाली नहीं थी। सहसा पुत्रशोकार्त महिषी धीर-गम्भीर मूर्त्ति धारण कर उठ खड़ी हुई और राम के वनगमन का अनुमोदन कर अश्रुगद्गद् कण्ठ से आशिर्वाद करने लगीः—

"गच्छ पुत्र त्वमेकाग्रो भद्रन्तेऽस्तु सदा विभो।
पुनस्त्वयि निवृत्ते तु भविष्यामि गतक्लमा॥
पितुरानृण्यतां प्राप्ते स्वपिष्ये परं सुखं।
गच्छेदानीं महाबाहो क्षेमेण पुनरागतः।
नन्दयिष्यसि मां पुत्र साम्ना श्लक्ष्णेन चारुणा॥"

"पुत्र, तुम एकाग्र चित्त से वन को जाओ, तुम्हारे लौटने पर हमारे सब दुःख दूर होंगे। तुम्हारे इन चौदह वर्ष तक व्रत धारण करके पिता के ऋण से मुक्त होने पर हम बड़े सुख से सोवेंगी। वत्स, अब तुम जाओ और फिर लौट कर हृदयहारी निर्मल सान्त्वना-वाक्यों से हमको आनन्दित करना।" इस करुण शोकध्वनि, धर्मपूर्ण सङ्कल्प और क्रोध की बहुत सी बातों से गुञ्जरित महल में कौशल्या देवी का यह चित्र सहसा बड़ा ही महत्वपूर्ण हो गया है। कौशल्या देवी जिन देवताओं की राम के अभिषेक के लिए पूजा करती थीं, उन्हीं की वे वन में राम का मङ्गल करने के लिए फिर पूजा करने

लगीं। कृताञ्जलि होकर राम के वनवास होने के समय वह इस प्रकार मंगल कामना करने लगीं,—"हे धर्म, हमारे पुत्र ने तुम्हारा ही आश्रय लिया है। तुम्ही इसकी रक्षा करना। हे देवताओ, हे चैत्य‡ और आयतनसमूहो,‡ राम ने तुम्हारी नित्य पूजा की है तुम उसकी रक्षा करो। हे विश्वामित्र से दिये गये देवप्रभाववाले सब अस्त्र, तुम राम की रक्षा करो। राम ने माता-पिता की सेवा कर जो पुण्य सञ्चय किये हैं, वे सब पुण्य वनाश्रित राम की रक्षा करें।" अश्रुपूर्ण चक्षुओं से धर्मशील कौशल्या ने एक एक करके सब देवताओं से रामचन्द्र की मंगलकामना की। पुत्र के सिर पर हाथ धर कर वे इस प्रकार शुभाशिर्वाद करने लगीं, "हमारे मुनिवेशधारी फलमूलोपजीवी राजकुमार की राक्षस और दानवों से रक्षा हो; डांस, मच्छर, विच्छू, कीड़े और सर्प इनके शरीर को स्पर्श न करें; सिंह, व्याघ्र हाथी, सूअर, गाय भैंस और मनुष्यहारी राक्षस धर्माश्रित और पिता के सत्य की रक्षा करने में तत्पर इस बालक से द्रोह न करें।" यह कहते कहते धर्मशीला रानी गौरवदीप्त होकर पूजा की सामग्री लेकर ध्यान में मग्न हो गईं, उनका धर्मविश्वास जरा भी शिथिल नहीं हुआ। उन्होंने जो पवित्र यज्ञ की अग्नि अभिषेक की शुभकामना से प्रज्वलित की थी उसी में वे पुत्र के वन जाने के समय मङ्गल कामना करके पुनः घृत की आहुति देनेलगीं और हाथ जोड़कर पुनः इस प्रकार प्रार्थना करने लगीं "वित्रासुर के नाश करने के समय देवाधिपति इन्द्र

‡ चैत्य=देवमन्दिर, आयतन-यज्ञस्थान।

को जिन मङ्गलों ने आश्रय लिया था वे ही सब राम की रक्षा करें; अमृत प्राप्त करने के लिए कठोर तपस्या करने के बाद देवताओं को जो मङ्गल प्राप्त हुए थे रामचन्द्र को वे ही मङ्गल प्राप्त हों; स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक का आक्रमण करने के समय वामन रूपधारी विष्णु भगवान का जिन मङ्गलों ने आश्रय लिया था वे ही मङ्गल वनवासी रामचन्द्र का आश्रय लें।"

सहसा धर्मप्राण कौशल्या ने धर्म की अपूर्व गम्भीर शान्ति लाभ कर ली। उसने स्थिर और स्नेहगद्गद् कंठ से रामचन्द्र से कहा, "तुम सुख पूर्वक वन को जाओ, रोगशून्य शरीर से अयोध्या को वापस आना। इन चौदह वर्षों को हम कृष्ण पक्ष की अँधियारी रात के समान बिता देंगे, अयोध्या के राजपथ में तुम पूर्णचन्द्र के समान उदय होगे और हम तुम्हें पाकर सुखी होंगी। जब तुम पिता को ऋण से उद्धार कर सब सिद्धि प्राप्त कर वापस आओगे हम उसी शुभ दिन की प्रतीक्षा करती हुई जीवन धारण करती रहेंगी।"

इसके पश्चात् जब रामचन्द्र अन्तिम विदा लेने के लिए राजा के पास आये उस समय सब रानियाँ और मंत्री लोग उपस्थित थे। उन लोगों ने कैकेयी की निन्दा और दशरथ की अन्यायपूर्ण प्रतिज्ञा पर कटाक्ष कर बहुत वितण्डावाद उपस्थित किया, जितने लोग थे उतनी ही बातें कही जाने लगीं। ऐसे समय में कैकेयी ने राम लक्ष्मण और सीता को मुनियों के से चीरवस्त्र पहिरने को दिये; अभिषेकव्रतोज्ज्वल राजकुमार राजवस्त्र उतार कर जटा और वल्कल धारण कर खड़े हो गये। उस समय यह मर्मविदारक दृश्य वृद्ध सचिव सिद्धार्थ सुमन्त्र और कुल पुरोहित वशिष्ठ की आँखों में असह्य हो गया और वे कैकेयी की तीव्र निन्दा करने लगे। उस घोर तर्क

और वाग्वितण्डापूर्ण महल के एक कोने में अश्रुमुखी कौशल्या बैठी थीं, उन्होंने कुछ भी नहीं कहा । उनकी ओर देख कर रामचन्द्र ने राजा से कहा—

"इयं धार्म्मिक कौशल्या मम माता यशस्विनी ।
वृद्धाचाक्षुद्रशीला च न च त्वां देव गर्हते ॥
मया विहीनां वरद प्रपन्नां शोकसागरम् ।
अदृष्टपूर्वव्यसनां भूयः संमन्तुमर्हसि ॥"

"हमारी उदार स्वभावा. यशस्विनी वृद्धामाता आपकी किसी प्रकार निन्दा नहीं करती हैं । हमारे वियोग में ये शोक के समुद्र में डूब जायँगी, इन्होंने पहले कभी ऐसा दुःख नहीं देखा, आप इनका पहले से अधिक सन्मान करियेगा ।"

इन्हीं देवी का दशरथ ने अनादर किया था पर क्या वे इनकी प्रकृत मर्यादा को नहीं जानते थे? कौशल्या उनके लिए कैसी आदरणीय थी दशरथ यह जानते थे । कैकेयी से उन्होंने कहा था—

"हमारे राम के वनवास देने पर कौशल्या हमसे क्या कहेगी? ऐसा बुरा काम करके हम उसको क्या उत्तर देंगे?"

"यदा यदा च कौशल्या दासीवच्च सखीव च ।
भार्य्यावद्भगिनीवच्च मातृवच्चोपतिष्ठते ॥
सततं प्रियकामा मे प्रियपुत्रा प्रियंवदा ।
न मया सत्कृता देवी सत्कारार्हा कृते तव ॥"

"कौशल्या दासी की तरह, सखी की तरह, स्त्री की तरह, भगिनी की तरह और माता की तरह हमारी सेवा किया करती है । वह हमारी सदा ही हितैषिणी, प्रिय भाषिणी

और प्रिय पुत्र की जननी है, वह सर्व प्रकार सम्मान करने के योग्य है, हमने तुम्हारे कारण उसका आदर नहीं किया।" तब कैकेयी ने क्रोध करके कहा कि—

"सह कौशल्यया नित्यं रन्तुमिच्छसि दुर्मते।"

"हे दुर्मते, तुम नित्य कौशल्या के साथ रमण करने की इच्छा करते हो।" किन्तु अयोध्या छोड़ कर जब राम वन को चले गये, जिस समय कौशल्या मौन भाव से दशरथ के साथ साथ रामचन्द्र के रथ के पीछे पीछे चली और अचेत होकर गिर पड़ी थी उस समय से दशरथ का अपने जीवन के शेष दिनों में कौशल्या के प्रति असीम आदर और स्नेह हो उठा था। दशरथ मार्ग में मूर्च्छित होकर गिर पड़े थे किन्तु होश में आने पर उन्होंने कहा, "हमें महारानी कौशल्या के महल में ले चलो, हमें और जगह शान्ति नहीं मिलेगी।" आधी रात के समय शोक से विकल होकर उन्होंने कौशल्या से कहा, "हे देवि, रामचन्द्र के पथ की धूल की ओर टकटकी लगा कर देखते देखते हम दृष्टिहीन हो गये हैं, हम तुम्हें देख नहीं सकते हैं। तुम अपने हाथ से हमको स्पर्श करो।"

एकान्त स्थान में दशरथ को पाकर कौशल्या ने उनसे कटुवचन कहे। प्राणोपम पुत्र के वनवास होने पर माता की निदारुण और कातर वेदना और सौत के बस में हुए स्वामी के इस व्यवहार को उसने लोगों के सामने चुपचाप सह लिया था किन्तु आज वह उस कष्ट को और नहीं सह सकी और रोतो रोतो दशरथ से बोली, "पृथ्वी में सर्वत्र तुम यशस्वी, प्रियवादी और वदान्य के नाम से प्रसिद्ध हो। बताओ तो तुमने क्या समझ कर दोनों पुत्रों और सीता को

त्याग दिया है? सुकुमारी और सदा सुख से रहनेवाली जानकी किस तरह घाम और शीत सहेगी? रसोइयों द्वारा बनाये गये अनेक सुन्दर सुन्दर पदार्थों के भोजन करने का जिन्हें अभ्यास है वे वन के कसैले फल खाकर कैसे जीवन धारण करेंगे?—रामचन्द्र के सुकेशान्त पद्मवर्ण और पद्म-गन्ध-श्वास-युक्त मुख को क्या हम इस जीवन में और देखेंगी?" इस प्रकार विलाप करते करते कौशल्या अधीर होकर स्वामी से यों कटुवचन कहने लगीं,—'जल के जीव जिस तरह अपने बच्चों को छोड़ देते हैं आपने भी उसी तरह किया है। तुमने राज्यनाश और प्रजा का सर्वनाश किया है। मंत्री लोग एक बार ही निश्चेष्ट और विमूढ़ हो गये हैं, मैं भी पुत्र के साथ प्राण दे दूंगी'—

"गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः।
तृतीया ज्ञातयो राजन् चतुर्थी नैव विद्यते॥"

"हे राजन् नारियों की प्रथम गति पति है, दूसरी गति पुत्र है और तीसरी गति जातिवाले हैं। नारियों के लिए और कोई चौथी गति नहीं है।"

कौशल्या के मुख से इतनी कड़ुवी बात सुनकर दशरथ क्षण भर दुःखित होकर मौन रहे और मानो संज्ञाशून्य हो गये। होश में आने पर अश्रु बहते हुए नेत्रों से पास में कौशल्या को देख कर वे लम्बी लम्बी तप्त श्वास छोड़ने तथा पुनः चिन्ता करने लगे और मौन हो गये। वे अपने पूर्व अपराध को स्मरण कर शोक से दग्ध होने लगे और अश्रु-पूर्ण चक्षुओं से नीचा मुख करके हाथ जोड़ कर कांपते हुए

शरीर से कौशल्या को प्रसन्न करने के लिए इस प्रकार गिड़गिड़ा कर बोले, "हे देवि, तुम हम पर प्रसन्न हो जाओ, तुम स्नेहशील हो और शत्रुओं पर भी क्षमा कर सकती हो। स्वामी गुणी हो या मूर्ख स्त्रियों के लिए सदा ही पूज्य है। हम दुःख के समुद्र में डूब रहे हैं और तुम्हारे स्वामी हैं, ऐसा मन में सोच कर अब तुम हमसे अप्रिय बातें मत कहो।" राजा को हाथ जोड़े, उनकी आंखों में आंसू और उनका गिड़गिड़ाना और दीनता देख कर कौशल्या का कण्ठ रुद्ध हो गया और उसके चक्षुओं से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उसने राजा के अञ्जलिबद्ध करकमलों को अपने मस्तक पर रख लिया और रुद्ध कण्ठ से बोली—"हे नाथ, मैं तुम्हारे चरणों की दासी हूं। मैं प्रार्थना करती हूं कि आप मुझ पर प्रसन्न होइये। आपने मेरे सामने जो हाथ जोड़े इसके पाप से मेरा यह लोक और परलोक दोनों बिगड़ेगा, मैं तुम्हारी क्षमा की पात्र भी न रहूंगी। चिराराध्य स्वामी जिसको इस तरह मनाते हों उस स्त्री ने कुलस्त्री की मर्यादा लंघन कर दी। अब उसका कुलस्त्री के नाम से परिचय नहीं दिया जा सकता। धर्म क्या है उसे मैं जानती हूं। यह भी जानती हूं कि तुम सत्य के अवतार-स्वरूप हो। पुत्र के शोक में विह्वल होकर मैंने तुमसे कटुवचन कहे। मुझ पर प्रसन्न होइये। शोक में धैर्य नष्ट हो जाता है, शोक में धर्म का ज्ञान जाता रहता है। शोक में सर्वनाश होता है और शोक के समान शत्रु नहीं है। अयोध्या से राम को गये पांच रात बीत गई। हमें ये पांच रात पांच वर्षों के समान लगी हैं।" ये बातें हो ही रही थीं कि सूर्यभगवान अपनी किरणों को हलका करके आकाश में विलीन हो गये और धीरे २ रात्रि आ उपस्थित

हुई। दशरथ को कौशल्या की बातों से चैन मिला और उन्हें निद्रा आगई।

दम्पति के इस चित्र में कौशल्या की अपूर्व स्वामिभक्ति प्रदर्शित हुई है। यह दृश्य यहाँ संक्षेप में संकलित हुआ है पर मूलकाव्य में यह अंश करुणरस से भरे झरनों के समान है।

दूसरे दिन रात को दशरथ की जीवनलीला समाप्त हुई, उस समय पुत्र-शोक विह्वल कौशल्या पर निद्रा ने अधिकार कर लिया था—और उसे यह नहीं मालूम पड़ा कि पति की मृत्यु हो गई है। दूसरे दिन प्रातःकाल होने पर उस दुःखमय राजमहल की चिरप्रथा के अनुसार बन्दीजन स्तुति करने लगे और वीणा की मधुर झंकार से शाखाविहारी और पिंजड़ों में बैठे हुए पक्षी जाग कर चहचहाने लगे। उस समय सोई हुई कौशल्या के मुख पर विवर्णता और कालिमा छाई हुई थी।—

"निष्प्रभा च विवर्णा च सन्ना शोकेन सन्नता।
न व्यराजत कौशल्या तारेव तिमिरावृता॥"

"निष्प्रभ, विवर्ण और शोक से मुरझाई हुई कौशल्या अन्धकाराच्छन्न ताराओं के समान शोभा नहीं पाती थी।" पिछली भीषण रात्रि की दुर्घटना का चित्र उद्घाटन कर जिस समय उषा देवी ने दर्शन दिया उस समय मृत स्वामी को देखकर रानियां व्याकुल होकर रोने लगीं। अश्रुपूर्ण चक्षुओं से कौशल्या स्वामी का मस्तक धारण कर कैकेयी की ओर देख कर बोली,—

"सकामा भव कैकेयी भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम्।"

"हे कैकेयी, तेरी कामना सफल हुई अब तू निष्कण्टक राज्य भोग।"

"राम वनवासी हो गये, राजा शरीर छोड़ कर चल दिये, अब हम और क्या लेंगी ?—

"इदं शरीरमालिंग्य प्रवेक्ष्यामि हुताशनं ।"

"इस प्रिय देह को आलिंगन कर हम अग्नि में प्राण विसर्जन करेंगी।" इसके पीछे भरत आकर उपस्थित हुए। वे इस दुर्घटना की कोई बात नहीं जानते थे; वे कैकेयी के मुख से सब वृत्तान्त सुनकर शोकार्त कण्ठ से उसे धिक्कार देकर विलाप करने लगे। बगल में दूसरे महल से कौशल्या ने भरत की बाणी सुन उन्हें सुमित्रा से आवाज दिला कर बुलवाया। भरत कौशल्या के पास जब आये तब उसने कहा, "तुम्हारी माता ने राज्य की कामना से हमारे पुत्र को चीर-वस्त्र और वल्कल पहिराकर वन भेज दिया है, राजा स्वर्ग को चले गये, अब मैं किसी तरह नहीं रह सकती। तुम धन-धान्य-शालिनी अयोध्यापुरी पर अधिकार कर लो और हमें राम के पास वन में भेज दो!" भरत नितान्त दुःखित होकर बोले, "आर्ये, क्या आप बिना जाने हमसे ऐसा वचन कहती हो,—हम राम के सदा से अनुरागी हैं हम पर सन्देह मत करो।" ऐसा कह कर उद्विग्न-चित्त भरत नाना प्रकार की शपथ खाने लगे। राम के प्रति यदि उनकी विद्वेष-बुद्धि हो तो महापातकियों के समान उन्हें अनन्त नरक में स्थान मिले। इस प्रकार अनेक तरह की विलापपूर्ण बातें वे करने लगे। विलाप करते करते अश्रुधारा से अभिषिक्त होकर परिश्रान्त भरत शोक के आवेग में मौन होकर जैसे के तैसे रह गये। कौशल्या बोली, "वत्स, तुम शपथ खाकर हमें क्यों मर्मवेदना पहुंचा रहे हो? भाग्यवश तुम्हारा स्वभाव धर्मभ्रष्ट नहीं हुआ

किन्तु हमारे दुःख का वेग इस समय और भी प्रबल हो गया।" यह कह कर कौशल्या भरत को स्नेह से गोद में लेकर उच्चस्वर से रुदन करने लगी।

भरत सब अयोध्यावासियों को लेकर राम को लेने गये, शोकशीर्णा कौशल्या संग गईं थीं। शृंगबेरपुरी में राम का तृणशैया देखकर भरत शोक से अज्ञान हो गिर पड़े; उनका मुख सूख गया, वे बहुत काल तक बातें नहीं कर सकते थे। भूमि पर लोट कर भरत अश्रु विसर्जन कर रहे थे,—किसी के कुछ जिज्ञासा करने पर कुछ उत्तर नहीं देते थे, उस समय कौशल्या ने उस दशा में भरत को देखकर उनसे दीन और आर्तस्वर से बड़े प्रेमपूर्वक कहा,—

"पुत्र व्याधिर्न ते कश्चिच्छरीरं प्रतिबाधते ।
त्वां दृष्ट्वा पुत्र जीवामि रामे सभ्रातृके गते ॥"

"पुत्र, तुम्हारे शरीर में कोई व्याधि तो नहीं है, राम भाई को लेकर वन को चले गये हैं इस समय मैं तुम्हारा ही मुख देखकर जीती हूं।"

प्रकृत पक्ष में भी राम के वन जाने पर भरत कौशल्या के गर्भ से उत्पन्न हुए पुत्र की जगह हो गये थे,—इस समय कैकेयी उनकी विमाता की जगह हो गई। चित्रकूट पर्वत पर रामचन्द्र से मिलाप हुआ। कौशल्या सीता के मुख की उज्ज्वल कान्ति को धूप से मुरझाई हुई देखकर रोने लगी। सीता अश्रु बहते हुए नयनों से सास के पैरों लग कर चुपचाप एक किनारे खड़ी हो गई, उस समय कौशल्या बोली, "जो मिथिलाधिपति जनक की कन्या, महाराज अवधेश की पुत्रवधू और रामचन्द्र की पत्नी है वह क्या निर्जन वन में इतना

दुःख पा रही है? हे पुत्रि, धूप से सताये हुए कमल और धूल से लिपटे हुए सोने के समान तुम्हारे मुख की श्री फीकी पड़ गई है। तुम्हारा यह मलिन मुख देख कर हमारा हृदय दग्ध हो रहा है।"

रामचन्द्र ने इंगुदी के फलों से पिता को पिण्ड दान दिया था,–भूमि पर रक्खे हुए कुशा के ऊपर दिये हुए इंगुदी फलों के पिण्ड देखकर कौशल्या विलाप करती हुई बोलीं, "रामचन्द्र ने यह जो इंगुदी फलों से पिता को पिंड दिया है यह दृश्य हमसे देखा नहीं जाता।"

"चतुरास्तां महीं भुक्त्वा महेन्द्रसदृशो भुवि।
कथमिंगुदिपिण्याकं स भुंक्ते वसुधाधिपः॥
अतो दुःखतरं लोके न किञ्चित् प्रतिभाति मे।
यत्र रामः पितुर्दद्यादिंगुदीक्षोदमृद्धिमान्॥"

"जो इन्द्रतुल्य पराक्रमी महाराज दशरथ समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पर राज्य कर चुके हैं वे इंगुदी फल कैसे खायेंगे? रामचन्द्र ने पिता को इंगुदी फल का पिंड प्रदान किया इससे बढ़कर और दुःख हमारे लिए कोई नहीं है।" साधारण बात को लेकर इन सब विलापपूर्ण बातों में एक ओर पुत्र के वनवास से जननी ने दारुण दुःख प्राप्त किया और दूसरी ओर स्वामी के वियोग से साध्वी को बड़ी भारी मर्मवेदना उत्पन्न हो रही थी।

यह कौशल्या का चित्र भारत की आदर्श जननी और आदर्श रमणी का चरित्र है। इस समय भी हर गांव में हिन्दू बालक यह स्नेह और आत्मत्याग प्राप्त कर धन्य होते हैं। इस समय भी सैकड़ों स्नेहमयी कौशल्याएँ हिन्दुस्तान के हर

पेड़-पत्तों की छाया में अपनी कोमल भुजाओं में आश्रित बालकों का पालन करती हैं और उनकी मङ्गल कामना के लिए अनेक कठोर व्रत, उपवास और देवताओं की आराधना कर निरन्तर स्नेह में लीन होकर आत्मविसर्जन करती हैं। इस समय भी वंगदेश के कवि "एसे जाय फिरे फिरे आकुल नयननीरे"* प्रभृति वन्दना गीतों से उस स्नेह-प्रतिमा की अर्चना करते हैं। किन्तु कौशल्या के समान कितनी जननियाँ इस समय ऐसी हैं जो धर्मव्रत में आत्मसुख-विसर्जनकारी और वल्कल धारण करनेवाले अपने पुत्र से यह कह सकें कि—

"न शक्यसे वारयितुं गच्छेदानीं रघूत्तम।
शीघ्रञ्च विनिवर्तस्व वर्तस्व च सतां क्रमे ॥
यं पालयसि धर्म्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु ॥"

'वत्स, तुमको हम किसी प्रकार नहीं रोक सकतीं, अब तुम जाओ किन्तु शीघ्र-लौट आना और सत्पुरुषों के मार्ग पर चलना। तुम प्रीति और नियमपूर्वक जिस धर्म के पालन करने में प्रवृत्त हुए हो वही धर्म तुम्हारी रक्षा करे।" हमारी चिर-पूजनीया शची† माता भी कटिबद्ध होकर इस प्रकार की बातें नहीं कह सकतीं।
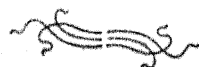
*अर्थ=और नयनों में नीर भरे और स्नेह से व्याकुल होकर इधर से उधर आती जाती है। †शची=इन्द्राणी।

कैकेयी।

अयोध्या से आये हुए दूतों से भरत ने अपनी माता के कुशल संवाद पूछने के समय इस प्रकार कैकेयी का उल्लेख किया था,—

'आत्मकामा सदा चण्डी क्रोधना प्राज्ञमानिनी'

"कैकेयी सदा बड़ी अभिमानिनी, चण्डी, क्रोधिन और अपने को पण्डिता मानती है।"

कैकेयी ने अपने जीवन में जो इच्छा की वही पूरी हुई। उसकी कोई कामना रोकी नहीं गई इसलिए जैसे बड़े आदर और प्रेम से पाला गया बालक इच्छित वस्तु के न पाने से किसी तरह भी शान्त नहीं होता वही दशा कैकेयी की बड़ी अवस्था में भी थी। आत्मसंयम—मन को रोकना—तो उसने सीखा ही न था। इसपर भी वह अपने को बड़ी बुद्धिमती समझती थी; अपनी बुद्धि पर उसे बहुत भरोसा था; अतएव प्रौढ़ा की दृढ़ता और बालकों का असंयम—मन का न रोकना—ये दोनों बातें उसके चरित्र में विद्यमान थीं। रामचन्द्र के वनवास होने के बहुत पहिले ही से भरत को माता के चरित्र के सम्बन्ध में ऐसी ही धारणा थी।

महाराज दशरथ के विशेष आदर करने से कैकेयी के इस प्रकार चरित्र गठित होने में सहारा मिल गया था। देवासुर संग्राम में अति सङ्कटापन्न दशरथ की बड़ी भारी सेवा-शुश्रूषा करना और रामचन्द्र के वनवास के लिए षड़-

यन्त्र रचना-ये दोनों परस्पर विरुद्ध घटनाएँ उसके चरित्र की विशेषता को बड़े ही स्पष्ट भाव से प्रगट करती हैं। उस के चरित्र की यह विशेषता ध्यान देने के योग्य है। जैसे पहली घटना से उसके उदात्त स्वभाव के माहात्म्य की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है वैसे ही दूसरी घटना से उसकी नीचता की जितनी निन्दा की जाय थोड़ी है। इस प्रकार का चरित्रवाला व्यक्ति सर्वदा बड़ी उत्तेजना से कार्य करता है, वह केन्द्र पर नहीं टिकता किन्तु परिधि के एक सिरे से दूसरे सिरे तक बड़ी ही शीघ्रता से दौड़ लगाता रहता है। जिस समय मन्थरा ने रामचन्द्र के अभिषेक का समाचार कहकर कैकेयी पर आनेवाली विपत्ति का एक शोचनीय चित्र अङ्कित किया और अनेक युक्तियों से उसके सम्बन्ध में उसकी उदासीनता का तीव्र प्रतिवाद किया, उस समय कैकेयी ने मन्थरा की उन सब बातों पर कुछ भी ध्यान न दे आकाश में उदित पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रसन्नमुख से पलंग पर पड़े पड़े करवट लेकर अपने गले से मोती का हार उतार कर और मन्थरा को प्रदान कर बोली, "तूने जो अमृततुल्य प्रिय वाक्य कहे हैं उनसे अधिक प्रिय मुझे कुछ भी नहीं है इसलिए तुझको पुरस्कार देना उचित है; तू मुझसे जो माँगे मैं वही दूं।"

यह चित्र या तो महत्व के उच्चशिखर पर प्रतिष्ठित होगा नहीं तो नीचता के अत्यन्त नीचे गड्ढे में पतित होगा किन्तु यह बीच में रहने का नहीं।

हिन्दू-समाज में गृहलक्ष्मियाँ जिस केन्द्र पर प्रतिष्ठित रह कर पारिवारिक जनों को प्रीति से वश में रखती हैं और असम वस्तुओं को एकता से समता प्रदान करती हैं, अयो-

ध्या के अन्तःपुर में महारानी कौशल्या को भी वही स्थान था, वह स्थान कैकेयी को किसी प्रकार नहीं मिल सकता। अच्छे गुणों के रहने पर भी स्वेच्छाचारिणी रमणियां हमारे समाज में निन्दित समझी जाती हैं। रमणी की यह इच्छा है, वह इस वस्तु को चाहती है, इतना सुनते ही परिवार भर में हलचल मच जाती है क्योंकि पारिवारिक जनों की मनस्तुष्टि और आज्ञा-पालन करने ही से हम लोग उनकी पूजा कर सकते हैं।

रामचन्द्र के वनवास होने के बहुत पहले ही कैकेयी के चरित्र की दुष्टता अनेक अंशों में प्रगट हो गई थी। कौशल्या ने रामचन्द्र से कहा था, "मैं कैकेयी के दास-दासियों से सर्वदा कष्ट पाती हूं, हमारी सेवा करता हुआ कोई भी सेवक कैकेयी के अन्तरंग परिजन को देखकर नितान्त भयभीत हो जाता है।"

कौशल्या ने ये सब बातें कभी स्वामी से नहीं कहीं थी वह सपत्नी कैकेयी को सहोदरा भगिनी के समान प्रेम से देखती थी यह बात हमने दशरथ के मुख से सुनी है। कैकेयी ने स्वयं रामचन्द्र के विषय में उल्लेख करके कहा था,—

"कौशल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु।"

"राम कौशल्या से भी अधिक मेरी सेवा करता है"

अतएव चारों ओर के आदर, यत्न और नम्रता के कारण उसके चित्त का असंयम भाव और भी बढ़ गया था। यह असंयम-भाव, उस स्निग्ध और धर्मभीरु राजपुरी में अलक्षित भाव से आश्रय पा कर दुष्परिणाम के लिए शक्ति सञ्चय कर रहा था। एक अमृत के घड़े में पड़कर उसके चरित्र

का क्रूर अंश बहुत दिन तक छिपा हुआ था-वह समय समय पर अलक्षित भाव से कौशल्या के हृदय को विदीर्ण करता था पर कोई इसे नहीं जानता था। राजा दशरथ स्वयं तरुणी भार्या को प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। सौन्दर्य के मोह में पड़ कर कैकेयी के चरित्र का सच्चा परिचय उन्हें नहीं मिला था। रामाभिषेक सम्बन्धी षड्यन्त्र से उनके नेत्र सहसा खुल गये और भय से किंकर्तव्यविमूढ़ होकर उन्होंने कहा था कि, "ऐ क्रूर हृदये, मैंने तुझे न जानकर अब तक कण्ठ से लगा रखा था।"

कैकेयी की माता अपने पति की हत्या करने के लिए प्रवृत्त हुई थी और माता ही से कैकेयी के चरित्र में क्रूरता आई थी। सुमन्त्र ने राजसभा में प्रकाशरूप से इस घटना का उल्लेख किया था। रामचन्द्र के वनवास के लिए हम लोग मन्थरा ही को सर्वदा अपराधी ठहराते हैं किन्तु अनिष्ट का बीज कैकेयी के चरित्र में पहले ही से बोया हुआ था और मन्थरा उस बीज को अङ्कुरित करने के लिए उपलक्ष मात्र थी। किन्तु जिस कैकेयी ने—

"रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।"
"यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा॥"

"मैं राम और भरत में कुछ भी भेद नहीं देखती। मेरे निकट जैसे राम हैं वैसे ही भरत हैं। यदि राम का राज्य है तो वह भरत का भी है," इत्यादि वचनों में चित्त की इतनी उदारता दिखाई थी वही मन्थरा की किस युक्ति से बुद्धि-भ्रष्ट हो गई यह विचार करने की बात है।

राजा दशरथ ने अश्वपति से यह प्रतिज्ञा कर कैकेयी का पाणिग्रहण किया था कि कैकेयी के पुत्र को राज्य देंगे।* कदाचित् वही प्रतिज्ञा दशरथ को स्मरण थी इसीलिए उन्होंने रामचन्द्र से कहा था, "भरत तुम्हारा अनुगत और परम धार्मिक है किन्तु उसके मामा के यहां रहने ही रहते तुम्हारा राज्याभिषेक हो जाय यही हमारी इच्छा है क्योंकि धार्मिक पुरुष का चित्त भी विचलित हो सकता है।" किन्तु इक्ष्वाकुवंश के नियमानुसार ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता है इस लिए यह आशङ्का उनके मन में क्यों उत्पन्न हुई इसकी और कोई व्याख्या हमें ढूंढ़ने से भी नहीं मिली। कदाचित् पूर्व प्रतिज्ञा के भय से ही उन्होंने अश्वपति और राजा जनक को निमन्त्रण नहीं दिया और रामचन्द्र से कहा "इन्हें इस समय निमन्त्रण देने की आवश्यकता नहीं है। यदि उस समय महाराज अश्वपति पहली प्रतिज्ञा के पालन करने के लिए महाराज दशरथ को बाध्य करते तब राजर्षि जनक अपने दामाद की भावी शुभकामना के लिए भी कभी न्यायपथ से नहीं हटते। मालूम होता है कि दशरथ के हृदय में ऐसी ही आशङ्का ने स्थान कर लिया था।" इस अभिषेकव्यापार में एक जगह छिद्र था उसे किसी प्रकार ढक कर दशरथ बड़ी दुविधा मे पड़कर और त्रस्त होकर इस कार्य में अग्रसर हुए थे। किन्तु कैकेयी इस प्रतिज्ञा करने की कोई बात नहीं जानती थी इसलिए राजा के मन में उसके प्रति कोई सन्देह नहीं हुआ।

---

* अयोध्या काण्ड १०७ सर्ग २-३ श्लोक।

कैकेयी ने बारम्बार मन्थरा की सब आशङ्काओं को हँसी में उड़ा दिया था किन्तु दो बातों से उनके मन में सन्देह हो गया।—

प्रथम—"राजा ने भरत को मामा के यहां क्यों रख छोड़ा है? ऐसे अवसर पर उन्हें न बुलाना अस्वाभाविक है फिर शत्रुघ्न भरत के भक्त हैं उनको भी राजा ने दूर ही रक्खा था। जैसे लकड़हारा कटीले वृक्ष को काटने के लिए जा कर भी काँटों के भय से लौट आता है वैसे ही शत्रुघ्न के उपस्थित होने पर राजा अनेक प्रकार के भय से इस काम से अलग रहते; यदि राजा का मन उदार होता तो कभी वे उनको इस समय काँटे की तरह दूर न रखते।" पहले कहा जा चुका है कि राजा के इस कार्य में न्यायपरता का अभाव था इसलिए इस युक्ति ने कैकेयी के हृदय में सन्देह उत्पन्न किया।

दूसरे—"तुमने कौशल्या को बहुत दिनों से अनेक प्रकार का कष्ट दिया है, उसके पुत्र का अभिषेक होने से वह बदला लेने की अवश्य चेष्टा करेगी और उस समय अयोध्या तुम्हारे लिए कण्टकशैया हो जायगी।" इस कथन ने भी कैकेयी पर अपना पूरा असर डाला।

मन्थरा की और भी कितनी ही युक्तियाँ थीं किन्तु सम्भवतः इन्हीं दो बातों से कैकेयी के हृदय में सन्देह उत्पन्न हुआ। कैकेयी इस बात की मीमांसा न कर सकी कि ऐसे बड़े और समारोह के कार्य में कौन उसके दोनों पुत्रों को इस समय दूर रख कर अभिषेक की तैयारी करने में इस प्रकार व्यस्त हो रहा है: इस बात से उसके हृदय पर सहसा बड़ी चोट लगी। दूसरी युक्ति ने आत्म-दोष-जनित आशङ्का जाग्रत हुई, जिस पर वह बहुत काल से अत्याचार कर रही

थी वह अवसर मिलने पर बदला न लेगी इस बात पर उसे विश्वास नहीं होता था।

इन दो बातों से उसके भीतर कोप और आत्मसुखप्रिय प्रवृत्ति जागृत हो उठी, चिरकाल से जो जगत को अपने सुख का क्रीड़ास्थल समझती थी, जिसके कुटिल दृष्टिपात से महारानी कौशल्या सदा विचलित रहती थी और स्वयं महाराज "अहञ्च हि मदीयाश्च सर्वे तव वशानुगाः"—"मैं और मेरे सब परिजन तुम्हारे आधीन हैं," कहते हुए हाथ जोड़ कर पसीने से लथपथ हो जाते थे, जो संसार में जहाँ तक सूर्य नारायण का प्रकाश होता है वहां तक सब राज्यों को लेकर सागराम्बरा पृथिवी के एक मात्र अधीश्वर के मुकुट की सर्वश्रेष्ठ मणि थे—जिसकी आज्ञा से राजा "अवध्यो वध्यतां को वा" कहकर निरपराध को दण्ड देने के लिए अकुण्ठित चित्त से हाथ उठाने के लिए तैयार थे,—वही प्रबल-प्रतापान्विता, सौन्दर्याभिमानिनी महारानी कैकेयी इस अभिषेक के हो जाने के बाद नितान्त निष्प्रभ, विगतश्री और मानहीना होकर महाराणी कौशल्या की कृपाभिखारिणी अथवा अप्रीतिपात्री होकर सताई जायगी इस बात को स्मरण कर उसका हृदय धधक उठा और उसकी सारी प्रकृति विद्रोहपूर्ण हो गई—जो कुछ भ्रम और मङ्गल का हेतुभूत था वह सब दूर होकर आशङ्कातुर क्रूरता स्पर्द्धित और वर्द्धित हो उठी। कैकेयी सर्वदा वर्तमान काल की उत्तेजना के वशीभूत होकर कार्य करती थी। वह फलाफल पर विचार नहीं करती थी, रमणीजाति का संकल्प कहां तक क्रूर, कहां तक निर्भीक और प्रचण्ड हो सकता है कैकेयी ने इस विषय का ज्वलन्त उदाहरण दिखाया था।

भूलुण्ठित पुष्पित लता की तरह कैकेयी क्रोधभवन में पड़ी हुई थी, मैले वस्त्रों, पीठ पर लटकती हुई वेणी और भूषणहीन देहश्री से वह बलहीन किन्नरी की तरह दिखाई पड़ती थी। उसने गृह के चित्र, गले का हार और फूलों की मालाएँ तोड़ कर फेंक दीं और ये सब चीज़ें भी उसीकी तरह अनादर से पृथ्वी पर पड़ी हुई थीं। दशरथ ने उसके खुले हुए केशकलापों को हाथ से पकड़ कर पागल की तरह कहा,

"बलमात्मनि पश्यन्तो न विशङ्कितुमर्हसि।"

"हम पर तुम्हारा कितना ज़ोर है यह तुम जानती हो, अतएव तुम्हें आशङ्का करने का कोई कारण नहीं है।"

आदर से वर्द्धित कैकेयी की इच्छा अनिवार्य थी, किन्तु उसकी इच्छा के आवेग में बालकों के समान चञ्चलता नहीं थी किन्तु उसमें प्रौढ़ा की सी दृढ़ता थी। उसने दशरथ को धीरता पूर्वक देवासुर संग्राम के समय दिये हुए दो वरों की कथा स्मरण करा दी। दशरथ अपनी प्रियतमा के आंसुओं के इन्द्रजाल में फँस गये। "तुम जो मांगोगी वह हम तुम्हें देंगे" यह प्रतिज्ञा करने पर कैकेयी धीरे धीरे उठ कर खड़ी हो गई और उसकी स्थिरता और उसके दृढ़ सङ्कल्प ने नारी-मूर्ति को एक अपूर्व भीषणता प्रदान की। चन्द्र, सूर्य, मेदिनी, दिक्पाल आदि को आह्वान करके कैकेयी धीर गम्भीर कण्ठ से बोली, "सत्यसन्ध, धर्मज्ञ, परम पवित्र महाराज दशरथ ने जो प्रतिज्ञा की है उसे तुम सब सुनो," फिर वज्रतुल्य दो भीषण वर मांग कर उसने वृद्ध राजा को एक दम पागल कर दिया। इसके बाद हम देखते हैं कि राजा

बड़े व्यथित हृदय और विह्वल दृष्टि से अपनी प्रियतमा महिषी के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हुए हैं; कभी उसके पैरों पर गिरे हुए हैं, कभी राजा धुंधले आकाश में तारागणों के प्रति टकटकी लगा और हाथ जोड़ कर रात्रि से प्रार्थना करते हैं कि वह इस लज्जा के दृश्य पट को सदा के लिए छिपाले, कभी अपनी भावी मृत्यु और श्यामच्छवि रामचन्द्र की दुर्गति की बातें स्मरण करा कर कैकेयी के हृदय में थोड़ी बहुत दया उत्पन्न कराने की चेष्टा करते हैं किन्तु क्रूरता और अटल संकल्प की जीवित मूर्ति के समान कैकेयी ने राजा को उनकी अयोग्यता के लिए धिक्कार दिया और क्रूर वाक्य कह कर राजा के हृदय में घाव पर नोन छिड़कने के समान बड़ी चोट पहुंचाई। वह बारंबार क्रोध भरे नेत्रों से महाराज दशरथ की ओर देख कर कहती "महाराज अलर्क ने सत्य की रक्षा के लिए अपनी आंखें निकाल कर फेंक दी थी, महाराज शिवि ने सत्य के पालन करने के लिए बाज पक्षी को अपना मांस दे दिया था, यदि तुम सत्य का पालन न करोगे तो मैं विष खाकर अपने प्राण दे दूंगी और तुम राज-सभा में बैठकर अपनी सत्य रक्षा की कथा का खूब प्रचार किया करना।" जिस प्रकार भूखी व्याघ्रिन के पास कोई मृतःप्राय शिकार पड़ी हो और उसकी ओर वह व्याघ्रिन अपने तीव्र चक्षुओं से दृष्टि डालते ही उसके प्राण हर लेती है, उसी प्रकार कैकेयी के सामने राजा दशरथ पड़े हुए थे। यह उसने क्या अनर्थकारी सङ्कल्प किया! ऐसे समय में भी वह राजा से मज़ाक करने में नहीं चूकी, इस घोर और असहनीय सङ्कट में उन्हें सारी रात जागते ही बीती। प्रातः-काल होने पर जब सुमन्त्र राजा के पास आये तब महाराज

आर्त और निष्प्रभ नेत्रों से सुमन्त्र की ओर टकटकी लगाकर देखने लगे और उनकी शुष्क रसना* कुछ भी बोल नहीं सकती थी। उस समय कैकेयी ने उनसे कहा—

"सुमन्त्र राजा रजनीं रामहर्षसमुत्सकः।
प्रजागरपरिश्रान्तो निद्रावशमुपागतः॥"

"हे सुमन्त्र, राजा रामचन्द्र के अभिषेक के आनन्द में कल रात को सोये नहीं, इस लिए रात में जागने से थकावट आने से सो गये हैं"।

यह व्यंग कैसा भीषण है!

रामचन्द्र ने बुलाये जाने पर कैकेयी के मुख से वरदान की बात सुन कर कहा—

"एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहं त्वितः।
जटाचीरधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन्॥"

....

....

"अलीकं मानसस्त्वेकं हृदयं दहतीव मे।
स्वयं यन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनं॥"

"हां ठीक है, मैं आज ही राजा की प्रतिज्ञा पालन करने के लिए जटाचीर धारण कर वन को जाऊंगा किन्तु राजा ने स्वयं मुझ से भरत के अभिषेक के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा इस दुःख से मेरा हृदय जल रहा है।"

पीछे राजा की आज्ञा न मान कर कदाचित् रामचन्द्र वन को न जांय और राजा नितान्त विचलित अवस्था में

*रसना=जीभ।

कुछ न बोल सकें इस आशङ्का से कैकेयी ने रामचन्द्र से कहा, "राजा दशरथ मारे लज्जा के तुम से कुछ नहीं कह सकते हैं इस लिए तुम मन में कुछ ख्याल मत करना।"—

"यावत्त्वं न वनं यातः पुरादस्मादतित्वरन्।
पिता तावन्न ते राम स्नास्यते भोक्ष्यतेऽपि वा॥"

"तुम शीघ्र जब तक यहाँ से वन की यात्रा न करोगे तब तक तुम्हारे पिता न स्नान करेंगे और न कुछ खायँगे।" सत्य में अधिक झूठ मिला कर अपना मतलब गाँठने से कैकेयी बाज नहीं आई, रामचन्द्र को उसके द्वारा—

"कशयेव हतो वाजी वनं गन्तुं कृतत्वरः।"

"जैसे तेज घोड़े के चाबुक लगाई जाती है वैसे ही वन को जल्दी भेजने के लिए ताड़ना दी जाने लगी।" वह बारंबार—

"तव त्वहं क्षमं मन्ये नोत्सुकस्य विलम्बनम्।"

"तुम वन जाने के लिए उत्सुक हो इस लिए मैं तुम्हारे जाने में और विलम्ब करना उचित नहीं समझता।" कैकेयी ऐसी बातों से रामचन्द्र को ताड़ना दे रही थी।

इसके पश्चात् रामचन्द्र के विदा होने का दृश्य है। सभा-गृह में महाराज दशरथ अचेत पड़े हुए थे। एक ओर वशिष्ठ, सुमन्त्र, सिद्धार्थ प्रभृति सचिव बैठे थे, दूसरी ओर शोक के अनबोल चित्रपट की तरह कौशल्या देवी म्रियमाण थीं और उन्हींके पास शोकविह्वल अश्रुमुख रानियाँ उपस्थित थीं। सामने कैकेयी थी। वहाँ आये हुए जो लोग उपस्थित थे वे एक स्वर से कैकेयी का तिरस्कार कर रहे थे पर वह उनकी ओर भ्रक्षेप तक नहीं करती थी। उसके हृदय में कालिमा

भरी हुई थी और ऐसे घोर सङ्कट के समय में भी वह अपनी बात से ज़रा भी विचलित नहीं हुई। वह अपने कार्य का करुण और शोचनीय फल प्रत्यक्ष करके जरा भी लज्जित नहीं हुई। कैकेयी ने रानियों के समान प्रभुतासूचक वाणी और विद्रोहियों के समान स्पर्द्धित भाव से सैकड़ों लोगों के विरोध की भी कुछ परवा नहीं की। उनकी युक्तियों और तर्कों को उसने खंड-विखंड करके और सत्य का ध्वजा को उखाड़ कर पाप की अभिसन्धि को आश्रय दिया था। उस दिन उसकी उद्दाम प्रतिभा ने अनिष्ट और अकल्याण की जीवन्त मूर्ति के समान अनिवार्य रूप धारण कर लिया था; किन्तु उसमें जो एक दुर्दान्त सङ्कल्प था वह हमको हर घड़ी स्तम्भित करता है और ऐसा मालूम होता है मानों हम एक प्रबल प्रतापान्विता सम्राज्ञी के समीप खड़े हैं और वह क्षण भर के लिए भी इसे भूलने का अवसर नहीं देता। सुमन्त्र ने दांत पीस कर और हाथ पर हाथ पटक कर कहा था कि, इसकी माता ने भी ऐसे ही अपने स्वामी के बध करने का उपाय किया था, माता का गुण कन्या में आता ही है, इसमें आश्चर्य ही क्या है? आम के पेड़ काटे जाने पर हम नीम का आश्रय कभी स्वीकार नहीं करेंगे,—

"भर्तुरिच्छा हि नारीणां पुत्रकोट्या विशिष्यते।"

'स्त्रियों के लिए स्वामी की इच्छा करोड़ पुत्रों से भी अधिक माननीय है।' वह ऐसे ही पति का बध करने के लिए कटिबद्ध हुई है। जब राम जायँगे, तब हम भी जायँगे, अयोध्या वन हो जायगी और वन राजधानी बन जायगी।" वशिष्ठ ने क्रोध करके कहा कि, "यदि भरत दशरथ से

उत्पन्न हुआ है तो पितृवंश के चरित्र का जानेवाला वह कभी राज्य ग्रहण नहीं करेगा ।" इस प्रकार सैकड़ों निन्दा-पूर्ण कथा सुनने पर भी—

"नैव सा क्षुभ्यते देवी न च स्म परिदूयते ।
न चास्या मुखवर्णस्य लक्ष्यते विक्रिया तदा ॥"

"वह कुछ भी क्षुब्ध या विचलित नहीं हुई और उसके मुख का वर्ण ज़रा भी विकृत नहीं हुआ ।"

उसकी दृढ़ और अविचलित मूर्ति इस प्रकार सब को बड़ी भयानक लगने लगी । जब शुद्ध भाव से राजा ने कहा कि "सारा खजाना खाली करके रामचन्द्र को देना होगा और वे उसे वन में ऋषियों को यज्ञ करने के लिए दान कर देंगे; सैनिकगण, मिष्टभाषिणी गणिकाएँ और विपुल धन सहित वणिक लोग इनके संग जाकर वन की शोभा बढ़ावेंगे: और बड़े बड़े कारीगर और पहलवान लोग जाकर वन को एक नई राजधानी बनावेंगे और शोभा-सम्पद्-वर्जित एकान्त निर्जन अयोध्या में भरत राज्य करेंगे ।" उस समय कैकेयी क्षण भर के लिए भीत और विचलित हो गई । किन्तु मुहूर्त भर में ही कैकेयी अपने को संभाल कर क्रुद्ध राजा से दुगनी क्रुद्ध हो कर बोली कि "यदि ऐसा होगा तो पीतसारांश* सुरा के समान इस राज्य को मेरा पुत्र उसी समय छोड़ देगा । तुम सत्य का उल्लङ्घन करना चाहते हो तो करो किन्तु तुम्हारे ही पूर्वपुरुष राजा सगर ने अपने ज्येष्ठ पुत्र असमञ्ज को वनवास दे दिया था । हा ! सत्य रक्षा के लिए तुम कार्य

*पीतसारांश=सार अंश पी लिया गया है जिसका ।

करते हुए इतने भयभीत होते हो, तुम्हें धिक्कार है।" राजा हतबुद्धि होकर संज्ञाशून्य हो गये, उस समय महामात्र सिद्धार्थ ने कहा, "असमञ्ज प्रजा के बालकों को पकड़ पकड़ कर खेल के बहाने उन्हें ले जाकर सरयू में डुबो डुबो कर मार डालता था। पीड़ित प्रजा के कहने पर राजा ने उसे वनवास दिया था। किन्तु राम का क्या अपराध है उसे तुम बताओ।" कैकेयी ने इन सब बातों पर कान भी नहीं दिया और राम के लिए चीर और वल्कल ले आई। रामचन्द्र की विषयनिःस्पृह और उदार वचनावली इस क्रोध और उत्तेजनापूर्ण गृह में स्वर्गीय वाणी की तरह बड़ी प्रेमपूर्ण और अपूर्व बोध होती थी :—

"नैवाहं राज्यमिच्छामि न च सुखं न च मेदिनीम्।
"मा विमर्शो वसुमती भरताय प्रदीयताम्॥"

"मैं राज्य सुख अथवा पृथ्वी का अभिलाषी नहीं हूं आप निस्सङ्कोच होकर यह राज्य भरत को दे दें" यह कह कर राम बारंबार राजा से वन जाने के लिये आज्ञा मांगने लगे। यह उदार दृश्य स्वार्थान्ध कैकेयी के हृदय को आकर्षित नहीं कर सका। सीता ने वन जाने के समय कौशल्या से कहे हुए स्वामिभक्ति के उपदेश को नम्रतापूर्वक ग्रहण कर के कहा,

"नातन्त्री विद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः।
नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा॥"

"बिना तार की वीणा और बिना पहिये का रथ जैसे व्यर्थ है, वैसे सौ पुत्र होने पर भी पति के बिना स्त्रियों का जीवन व्यर्थ है, उनके सुख का पति को छोड़ कर और कोई

मूल नहीं है।" इस समय राजा दशरथ मृत्युतुल्य दुःख पा कर क्षण क्षण में मूर्च्छित हो गिर पड़ते थे, पतिभक्ति का यह जीवन्त दृश्य, पति की आसन्न मृत्यु, वैराग्य कठोर रामचन्द्र का सङ्कल्प और मंत्रियों और प्रजा का आर्तनाद और क्रन्दन ये सब कैकेयी पर कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सके। निर्लज्ज कैकेयी पर अयोध्यावासी जो आक्षेप करते थे उन पर उसने बिलकुल कान नहीं दिया। यह दृश्य एक अन्तिम दृश्य है, उसकी नृशंसता और उद्देश्य की अटलता भयमिश्रित विस्मय उत्पन्न करती है।

कैकेयी की दृष्टि दूसरी ओर थी, इसलिए सामने के सब दृश्य उस पर कुछ प्रभाव नहीं डाल सके। पुत्र की भावी शुभचिन्ता ने उसके सङ्कल्प को दृढ़ कर दिया था। स्वामी ने उसे परित्याग कर दिया था, प्रजा उसका नाम सुन कर भय से काँप उठती थी और सारे संसार से ताड़ना की जाने पर केवल मात्र मन्थरा उसकी सङ्गिनी रह गई। इस अनर्थ के कर चुकने पर उसकी अवस्था विपरीत हो गई, वह सारी दुर्दशा को अपने सिर पर अपने हाथों से बुला कर सम्राज्ञी की तरह बड़े दम्भ पूर्वक अड़ी रही। केवल जिसके बालों की शोभा बढ़ाने के लिए अयोध्या का सारा राजकोष खाली कर दिया जा सकता था, आज वह अपनी इच्छा से आदर के बन्धन को छिन्नभिन्न कर के सर्वथा आश्रयहीन होकर खड़ी हुई थी। "निष्ठुरा" "पापचरित्रा" "कुलपांशनी" आदि विशेषणों को अपने अङ्ग का भूषण बना कर कैकेयी आज अयोध्या के राजमहल में बड़े अभिमान में चूर हो रही थी। भरत राजा होकर जब सिंहासन पर बैठेंगे तब उसके दुर्दिन रूपी बादल दूर होकर सुख रूपी सूर्य का उदय होगा इस

आशा से वह स्वामी की मृत्यु होने से भी विचलित नहीं हुई। जिस पुत्र के लिए उसने इतना सहा वह आकर उसके चरणों पर गिर कर स्नेह से विगलित चित्त होकर उसकी पूजा करेगा, उसकी मातृभक्ति उमड़ पड़ेगी इस आशा से आनन्दित होकर वह भरत के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी।

भरत आगये। स्वर्णासन पर बैठी हुई स्नेहार्द्र चक्षुओं से देख कर कैकेयी ने पुत्र का प्रेम उत्पन्न करने के लिए उन्हें सब कथा कह सुनाई। जिसने अयोध्या के विद्वेष को अकुण्ठित चित्त से सह लिया, आज भरत के विद्वेष से उसी का हृदय टुकड़े टुकड़े हो गया। ज़ोर से रोते रोते भरत जिस समय 'मा' 'मा' कह कर कौशल्या की गोद में गिर पड़े और कैकेयी को छोड़ कर चले गये उस समय कवि ने भी उसे परित्याग कर दिया। इस उच्च स्पर्द्धा का पतन और आकाश-चुम्बी आत्मगरिमा का भूलुण्ठन चित्रित करने में वाल्मीकि भी साहसी नहीं हुए और इस दृश्य पर अन्धकार का एक परदा डाल कर उन्होंने बिदा ले ली। केवल दो एक बार घटना के भँवरजाल में हवा के वेग से हिलते हुए परदे की ओट में से दिखाई देते हुए धुन्धले चित्र की तरह हम महाकाव्य के निगूढ़ प्रदेश में देखते हैं कि भरद्वाज मुनि के आश्रम में वे ऋषि के चरणकमलों में प्रणाम कर रही हैं। उसी जगह ये श्लोक कहे गये हैं कि—

"असमृद्धेन कामेन सर्वलोकस्य गर्हिता।
कैकेयी तस्य जग्राह चरणौ सव्यपत्रपा॥
तं प्रदक्षिणमागम्य भगवन्तं महामुनिम्।
अदूरात्भरतस्यैव तस्थौ दीनमनास्तदा॥"

"व्यर्थमनोरथा, सलज्जा और सर्व लोकनिन्दिता कैकेयी ने उनके चरणों में प्रणाम किया और वह उन भगवान् महामुनि की प्रदक्षिणा करके दुःखित मन से भरत से दूर खड़ी हुई थी।" और एक जगह वर्णन किया गया है कि भरत ने आँख उठाकर "दीनां मातरम्" "दीन माता" को देखा, यह दीनता और लज्जा कैसी भयानक है उसे हम कल्पना कर सकते हैं। अयोध्या के उद्विग्न, शोकपूर्ण और सौन्दर्यहीन राजमन्दिर के एक कोने में आत्मीयजनों की दृष्टि से वर्द्धित घृणा, लज्जा और दीनता से मुँह छिपाए वह किस तरह अपने को छिपाती फिरती थी, उस चित्र को रह रह कर कल्पना रूपी नेत्रों से देख कर हम काँप उठते हैं। सीता के अलक्तराग-वर्जित कमल के समान प्रभायुक्त युगल चरणों में कांटों के छिदने से जो गरम गरम साँसे निकलती थीं, सेवापरायण लक्ष्मण के वन्य-जीवन के कठोर कर्तव्य को स्मरण करके जो अश्रुविन्दु गिरते थे, कमलनयन रामचन्द्र की मलिन कान्ति को स्मरण करके सारे राज्य में जो आर्तनाद हो रहा था; साधुवेशधारी फलमूलाहारी भरत की दीनता देख कर प्रजा के वाष्परुद्ध कण्ठ जिस वेग से अधीर हो उठते थे, अयोध्या और नन्दिग्राम भर में अपार करुणा-समुद्र में जो एक अत्यन्त घृणा और क्रोध का भाव हर घड़ी क्रोध से लाल नेत्र कर के विधवा रानी कैकेयी की ओर घूर घूर कर अवज्ञा की वर्षा कर रहा था, उस अवज्ञा और घृणा से अपनी रक्षा करने के लिए अभिमानिनी और प्रबल प्रतापान्विता रानी ने किस परदे के भीतर किस गुप्त गृह में रह कर चौदह वर्ष किस तरह काटे, यह जान नहीं पड़ता। कवि ने उस पर्दे को नहीं उठाया किन्तु हमारे देश के आधुनिक

लोग अन्त में कुछ न देख कर सन्तुष्ट नहीं हैं। सारङ्गी के मृदु मधुर स्वर के साथ ऊँचे स्वर से वैष्णव गायक को गाते सुना है कि वनवास से लौटे हुए राम को छाती से लगा कर कैकेयी कहती है कि,

"एत दिनेर परे घरे आलि रे रामधन।
मा वले डाके ना भरत, मुख देखे ना शत्रुघ्न॥"

"इतने दिनों बाद रामचन्द्र रूपी धन आज गृह में आये हैं, माता कह कर भरत बोलते नहीं और शत्रुघ्न (मेरा) मुख नहीं देखते।"

सीता ।

रामचन्द्र ने कैकेयी से स्पर्द्धापूर्वक कहा था कि,
"विद्धि मां ऋषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममास्थितम्'
"हमें ऋषियों के समान विमल धर्म में आश्रित समझो।"

उन्हें जब वनवास की आज्ञा सुनाई गई तो उनके मुख पर कुछ भी विकार उत्पन्न नहीं हुआ और उसे उन्होंने नीचा सिर करके प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण किया और उस समय भी उनके मुख पर से शान्ति रूपी श्री विलीन नहीं हुई। किन्तु "इन्द्रियनिग्रह" द्वारा जो दुःख उन्होंने हृदय में छिपा रक्खा था वह कौशल्या के समीप आने पर प्रबल वेग से बाहर निकल पड़ा। वे परिश्रान्त हाथी के समान लम्बी लम्बी सासें छोड़ने लगे,—"निश्वसन्नपि कुञ्जरः"। माता से मर्मच्छेदी संवाद कहते समय उनका कण्ठ शङ्कान्वित और कम्पित हो रहा था और उनके कथन का श्रीगणेश ही सन्तापसूचक है कि—

"देवि नूनं न जानीषे महद्भयमुपस्थितम्।'

"हे देवि, तुम नहीं जानती हो कि बड़ा भय उपस्थित हुआ है।"

माता के अश्रुओं और शोक के वेग को उन्होंने चुपचाप खड़े होकर सह लिया और अप्रतिहत अङ्गीकार की श्री ने उनकी बातों को एक अपूर्व नैतिक महिमा प्रदान की किन्तु

सीता के पास जाकर उनके हृदय का वेग प्रबल हो गया, उसे वे रोक नहीं सके। चिरानुरक्ता स्त्री को शीघ्र ही यौवन में चिर-विरह के दारुण दुःखसागर में डुबो कर चले जायंगे, यह बात कहने के लिए मानो उनका कण्ठ रुक गया। अभिषेकोत्सव की प्रतीक्षा में सीता का मन प्रफुल्लित हो रहा था, ऐसी दशा में अकस्मात् वज्राघात के समान यह दारुण संवाद कुसुम से कोमल रमणी के प्राणों को कितना चकित और व्यथित करेगा यह मन में सोच कर रामचन्द्र विचलित हो गये और उनके मुख की ज्योति फीकी पड़ गई। सीता ने उनको देखते ही जान लिया कि कोई भारी अनर्थ हुआ है। "आज सौ-तान-वाला, जल के फेना सा शुभ्र राजच्छत्र तुम्हारे शिर पर शोभा नहीं पा रहा है; हाथी, घुड़सवार और वन्दीजन तुम्हारे आगे आगे नहीं आये, तुम्हारा मुख खिन्न है, किस बात से तुम दुःखित और विकल हो गये हो, तुम्हारा रंग फीका पड़ गया है।" स्वभाव-सौम्य रामचन्द्र का वह प्रशान्त भाव कहाँ गया! रमणी के अञ्चल के पार्श्ववर्ती होने से वे ऐसे विह्वल क्यों हो गये? वे सीता के उच्च पितृकुल के संयम और उसके सर्व-जन-प्रशंसित चरित्र का स्मरण करा कर उसे आसन्न परीक्षा के निमित्त उपयोगिनी बनाने की चेष्टा करने लगे। उनके वन जाने पर राजमहल में सीता कैसे जीवन व्यतीत करें, इस विषय में उन्होंने अनेक नैतिक उपदेशों से भरी हुई एक अच्छी वक्तृता दे डाली। किन्तु उनकी आशङ्का व्यर्थ थी। सीता उनकी सब बातों का उपहास करके बोली, "तुम्हारे वन जाने पर मैं तुमसे आगे कुशाच्छन्न और कण्टकाकीर्ण मार्ग में पैदल वन को जाऊँगी।" जिन्होंने रामचन्द्र

के वन जाने की बात सुनी थी उन सब ने कुछ न कुछ आक्षेप किया था । रामचन्द्र सीता के मुख से भी कुछ न कुछ वैसा आक्षेप सुनने की आशा से आये थे और उस आक्षेप को शान्त करने के लिए मन ही मन में उन्होंने बहुत कुछ उपदेश सोच लिया था, किन्तु सीता ने एक भी आक्षेप की बात नहीं कही, उसने एक बार भी दशरथ को स्त्रैण नहीं कहा और कैकेयी पर भी कुछ कटाक्ष नहीं किया, यहाँ तक कि यह सुन कर भी कि रामचन्द्र जटा-वल्कल धारण करेंगे वह शोक से विदीर्ण नहीं हुई। परन्तु उसने अपने यौवन की कल्पना को माधुरी दे कर उसके द्वारा वनवास का एक सुरम्य चित्र खींचा और मन में राज्य का सुख अत्यन्त तुच्छ समझने लगी। साधुपुष्पित कमलनियों से पूर्ण सरोवर, फेन से अट्टहास करती हुई नदियों के प्रवाह और वन के सुन्दर शिलाखंड इन सब को देखती हुई वह सौभाग्यवती पतिव्रता स्वामी के साथ भ्रमण करेगी, इस सुख की आशा से वह सब दुःख भूल गई। सीता स्वामी के संग पहाड़ों के झरनों को देख और वन की स्वच्छ वायु सेवन कर विचरेगी, इस आनन्द के उत्साह में रामचन्द्र के वनगमन का क्लेश जाता रहा पर रामचन्द्र प्रायः हतबुद्धि हुए खड़े थे। सीता दृढ़ता पूर्वक बोली, "हमारे लिए इस सुरम्य अयोध्या की समृद्ध सौधमाला की छाया की अपेक्षा प्रियतम स्वामी के चरणों की छाया ही अधिक श्रेष्ठ है।" रामचन्द्र ने समझा कि स्वभावतः यह आनन्द अनभिज्ञता का फल है और वनवास के कष्ट कहने पर सीता वन को न जायगी। किन्तु जिसे वे अनभिज्ञ आनन्द की कल्पना समझते थे वह साध्वी का अटल प्रण था। रामचन्द्र उसे हज़ारों

तरह से वन के कष्ट समझाने लगे। सीता क्या कष्टों से डर गई? वह तीर्थयात्रा करनेवाली रमणियों के समान वृथा उत्सुका नहीं थी; स्वामी को छोड़ कर साध्वी नहीं रह सकेगी यही उसका स्थिर संकल्प था। रामचन्द्र ने उस समय वन की भीषणता का एक चित्र सीता के सामने खींचा और काले साँप, वनवृक्षों की कण्टकपूर्ण शाखाएँ, फलमूलाहार और अनशन, कीचड़ से भरे जलाशय, व्याघ्र, सिंह और राक्षसों के उत्पात प्रभृति सैकड़ों भयावनी बातें कह कर वे सीता को डराने लगे। सीता ने घृणा पूर्वक उन सब बातों की उपेक्षा करके कहा, "तुमने क्या मुझे तुच्छ शय्यासङ्गिनी समझ रक्खा है?—

"द्युमत्सेनसुतं वीरं सत्यव्रतमनुव्रतां।
सावित्रीमिव मां विद्धि॥"

'हमको द्युमत्सेन के पुत्र सत्यव्रत की अनुव्रता सावित्री के समान समझो'। और फिर बोली,—"हम ब्रह्मचर्य पालन करके तुम्हारे सङ्ग वन में विचरेंगी। जो इन्द्रियासक्त हैं वे ही प्रवास में कष्ट पाते हैं, हमें कष्ट कैसे मिलेगा?" तौभी रामचन्द्र ने अनेक प्रकार के भयों की आशङ्का करके उसे रोकने की चेष्टा की। सीता क्रोधाविष्ट होकर बोली, "जिसे अपने पास अपनी स्त्री रखते डर लगे ऐसे नारीरूप पुरुष के हाथ में पिता ने हमें क्यों सौंप दिया?" उसने इससे भी अधिक कटु बातें रामचन्द्र से कही थीं:—

"शैलूष इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि।"

"हे राम, तुम शैलूष के समान मुझे औरों को देना चाहते हो।" इस स्थान पर जीवनसुलभ अनेक कमनीय

बातों का संगठन भी दिखाई पड़ता है—"तुम्हारे साथ रहने से, तुम्हारा श्रीमुख देखने से हमारी सब ज्वाला दूर होगी। पथ के कुशकण्टकों को हम राजमहल के बिछौनों से अधिक कोमल समझेंगी।" इस प्रकार विनय और प्रेम-सूचक अनेक बातें कह कर सीता स्वामी के कण्ठ से लग कर रोने लगी। उसके दोनों कमलपत्र नेत्र अश्रुजल से ढक गये। यदि स्वामी सङ्ग न ले जायँगे तो वह प्राण दे देंगी यह संकल्प प्रगट कर लता के समान रामचन्द्र के अङ्ग से लिपट कर वह उदास हो अश्रुपात करने लगी। साध्वी की ऐसी अश्रुतपूर्व दृढ़ता देखकर रामचन्द्र उसे भुजाओं से आलिङ्गन कर बोले,—

"न देवि तव दुःखेन स्वर्गमप्यभिरोचये।"

'हे देवि, हम तुम्हें दुःखी कर के स्वर्ग की भी इच्छा नहीं करते।' और साथ में ले चलने की आज्ञा दे कर बोले, "तुम्हारे पास जो कुछ धन, आभूषण, रत्न हैं उन्हें वितरण कर चलने के लिए तैयार हो जाओ।" इस रमणीरत्न के अलङ्कारों की सन्दूक की सैकड़ों बद्धमुष्टि अदृश्य यक्ष रक्षा करते थे किन्तु सीता कैसे प्रसन्न मन से हार, कड़े आदि सखियों को बाँट रही थी यह देखने ही योग्य था! वशिष्ठ के पुत्र सुयज्ञ की पत्नी को उसने सोने की ज़ंजीर, करधनी और अनेक अमूल्य द्रव्य प्रदान किये और सखियों को अपना पलङ्ग, सुनहरी चादर और नाना अलंकार प्रदान कर मुहूर्त भर में ही वह निराभरण सुन्दरी वनवास के लिए तैयार हो गई। जब रामचन्द्र ने माता पिता और सुहृदों के सामने जटा-वल्कल धारण किया उस समय सीता के पहिनने के लिए कैकेयी ने उसके हाथ में चीरवस्त्र प्रदान किये। सीता सजल नेत्र और

भीतकण्ठ से रामचन्द्र की ओर झाँक कर बोली, "हम नहीं जानतीं कि चीरवस्त्र किस तरह पहिने जाते हैं, हमें बता दो!" सुमन्त्र जिस दिन रथ लेकर गंगा के तट पर से अयोध्या को लौट रहे थे उस दिन उन्होंने सीता से कहा था, "क्या आप अयोध्या को कोई संदेसा भेजेंगी?" सीता उस समय कुछ न बोल सकीं, उसके दोनों चक्षुओं से निरन्तर अश्रुबिन्दु गिरने लगे। इन सब अवस्थाओं में सीता की मूर्ति लज्जावती लता के समान थी किन्तु इस विनयनम्र मधुरभाषिणी के चरित्र में जो प्रखर तेज और दृढ़ संकल्प विद्यमान था उसका पूर्वाभास इसके पहिले ही हमें मिल चुका है।

इसके पश्चात् दोनों राजकुमार और राजबधू वन को जा रहे हैं। जिसकी राजान्तःपुर के परकोटे में यत्नपूर्वक रक्षा होती थी, जिसके महल की शिखर पर तोते और मोर नाचते थे और सोने के पलङ्ग पर अत्यन्त कोमल चर्माच्छादित बिछौना बिछा रहता था, रात्रि में सोते हुए जिसके रूप की माधुरी को स्वर्णदीपक निर्निमेष नेत्रों से टकटकी लगा कर देखते थे, आज वही सब की दृष्टि में पड़ती हुई कण्टकाकीर्ण पथ में पैदल जा रही थी। पद्मपुष्पों के समान उसके युगल चरणों में लगा हुआ महावर फीका नहीं पड़ा था, उसके वे ही युगल चरण अपने लीलारूपी नूपुरशब्दों से इस समय भी वनप्रदेश को मुखरित करते हुए चल रहे थे। चित्रकूट के पास पहुँच कर सीता भीषण जीवजन्तुपूर्ण वन में अंधेरी रात में भयभीत हो गई। मार्ग में थकी हुई सीता डर डर कर और चौंक चौंक कर पैर रखने लगी और उसकी चाल बिलकुल धीमी पड़ गई। परिश्रान्त होकर जिस समय वह इंगुदी के पेड़ के नीचे सो गई उस समय

रामचन्द्र तृणशैयाशायिनी के सुन्दर वर्ण को धूप से तपा हुआ और उपवास के कारण उसके मुख को श्रीहीन और कुम्हलाया हुआ देखकर दैव को धिक्कार देने लगे। किन्तु यह कष्ट स्थायी नहीं हुआ। प्रातःकाल चित्रकूट पर्वत के शिखर पर वन-तरुओं की पुष्पसमृद्धि दिखा कर रामचन्द्र सीता का आदर करने लगे। सीता उस आदर और सोहाग में पुनः प्रफुल्लित हो गई। सीता कमलों को हटाती हुई मन्दाकिनी में स्नान करती थी और मन्द मन्द वायु से चलती हुई लहरों की झंकार उसके लिए सखियों के आह्लाद के समान बड़ी ही मनोरम बोध होने लगी। इस प्रकार से सीता स्वामी के साथ प्रकृति की रम्य शोभा का दर्शन कर अयोध्या के राज्यसुख को तुच्छ समझने लगी।

वनवास के तेरह वर्ष बीत गये, राजवधू वनदेवताओं के समान वनपुष्प धारण कर रामचन्द्र के मन को प्रसन्न करती थी। केवल एक दिन रामचन्द्र के धनुष की टंकार से कम्पित शान्त वनभूमि में चंचलता देखकर वह रामचन्द्र से बोली, "तुम बिना प्रयोजन का बैर छोड़ो, तुम परिव्राजक की तरह वन में आये हो, इस समय राक्षसों के साथ शत्रुता करना समयोचित नहीं है; हमें यही भय है कि इससे कहीं तुम्हारे निष्कलंक चरित्र में पीछे से निष्ठुरता न आ जाय।"

"कदर्य्यकलुषा बुद्धिर्जायते शस्त्रसेवनात्।
पुनर्गत्वा अयोध्यायां क्षत्रधर्मं चरिष्यसि॥"

"शस्त्र-चर्चा से बुद्धि कलुषित होती है, तुम अयोध्या लौट कर फिर क्षत्रिय-धर्म का आचरण करना।"

सीता कभी ऋषिकन्या अनुसूया के पास बैठ कर अनेक बातें करती थी; कभी गद्‌गद नाद करती हुई गोदावरी के

तट पर अपनी गोद में मस्तक रक्खे हुए मृगया-श्रान्त स्वामी के मुख की हवा करती थी; कभी सुकेशी अपने कर्णावलम्बित चूर्ण कुन्तलों को कनैल-पुष्पों के जूड़े से सजाती थी। अयोध्या की राजलक्ष्मी इस प्रकार वनलक्ष्मी के रूप में स्वामी के संग कालयापन करती थी।

सुतीक्ष्ण ऋषि से साक्षात्कार करके रामचन्द्र अगस्त्य के आश्रम में गये। उस समय जाड़ा आ गया था, तुषारमिश्रित चाँदनी और हलकी धूप ने निष्पत्र तरुओं और जौ-गेंहू छिटके हुए वन के भाग को बड़ा सुन्दर और विचित्र कर रक्खा था। और उस समय विराध राक्षस के हाथ से छुटकारा पाकर सीता स्वामी के साथ दाक्षिणात्य पर्वत के निम्नप्रदेश में उपस्थित हुई। वन में लगी हुई पीपलों की तीव्र गन्ध से वन्य वायु खौल रही थी। चावल-धान सब की खजूर के फूलों के गुच्छों के समान तण्डुलपूर्ण बालें नम्र होकर स्वर्ण के समान शोभा दे रही थीं। वनोन्मत्ता मैथिली नदीतट के हिमाच्छन्न प्रान्त और कास के फूलों से शोभायमान वनप्रदेश में खुली हुई वेणी को पीठ पर लटकाती हुई फल-पुष्पों की खोज में घूमती फिरती थी और कभी वह तपस्वियों की कन्याओं से स्पर्धा पूर्वक कहती कि, "हमारे स्वामी पर स्त्री मात्र ही को माता के तुल्य समझते हैं।" धर्मप्राण स्वामी का गुणकीर्तन करते करते उसका कण्ठ भर आता था। पञ्चवटी में जाकर सीता एक बार संगिनीशून्य हो गई। उस समय पास में ऋषि का कोई आश्रम नहीं था। इसी जगह शूर्पनखा के नाक कान काटे गये और रामचन्द्र के बाण से खरदूषण आदि चौदह सहस्र राक्षस मारे गये। दण्डकारण्य के राक्षसों में मनुष्यों का अभूतपूर्व भय समा

गया। अकम्पन राक्षस ने रावण से कहा था कि, "भयभीत राक्षस लोग जिस जगह भाग कर जाते हैं, उसी जगह उन्हें धनुष्पाणि रामचन्द्र की विकराल मूर्ति ही दिखाई पड़ती है।" मारीच ने रावण से कहा था, "वृक्ष के पत्ते पत्ते में हमें यमराज के समान हाथ में फाँसी लिए राम ही राम दिखाई पड़ते हैं।" अपने अधिकारस्थ जनस्थान की ऐसी अवस्था सुनकर रावण ने उसी क्षण सीताहरण के निमित्त दण्डकारण्य की ओर प्रस्थान किया।

सीता ने बड़े कटुवचन कहकर लक्ष्मण को ताड़ना दी थी। मायावी मारीच ने मरते समय राम की आवाज़ की पूरी तरह नकल की थी; उसकी आर्तवाणी सुन कर सीता पागल हो गई। लक्ष्मण राक्षसों के छल को बहुत अच्छी तरह जानते थे, इस लिए सीता के कहने से उन्होंने आश्रम छोड़ कर जाना स्वीकार नहीं किया। स्वामी की विपत्ति से भयातुर होकर सीता ने समझा कि लक्ष्मण की अस्वीकृति और दृढ़ सङ्कल्प में कपट भरा हुआ है और वे किसी गूढ़ और बुरे अभिप्राय से ऐसा कर रहे हैं। उस समय भी सीता के कान में "सीता तू कहाँ है, लक्ष्मण तू कहाँ है, यही आर्तवाणी सुनाई पड़ती थी; उन्मत्त मैथिली लक्ष्मण से "तुम भरत के छिपे हुए दूत हो; बुरे अभिप्राय से भाभी के साथ आये हो?" प्रभृति कटुवचन बोलने लगी। "हम रामचन्द्र को छोड़ कर किसी अन्य पुरुष को स्पर्श न करेंगी और अग्नि में प्राण होम देंगी।" ये सब दुर्वचन सुन कर लक्ष्मण ने एक बेर ऊपर देख कर देवताओं के ऊपर सीता की रक्षा का भार अर्पण किया और क्रोध से होंठ पीसते हुए आश्रम छोड़ कर रामचन्द्र की तलाश में चल दिये। उस समय

गेरुवे वस्त्र पहिने, शिखाधारी, छत्र लगाये और जूता पहने एक संन्यासी 'ब्रह्म' 'ब्रह्म' करता हुआ सीता के सामने आ उपस्थित हुआ। रावण ने सीता को सम्बोधन कर जो सब बातें कहीं वे ठीक ऋषियों की सी नहीं थीं। किन्तु सरल प्रकृति सीता को कुछ भी सन्देह नहीं हुआ। उसने ब्रह्मशाप के भय से रावण को अपना परिचय दे दिया और अतिथि समझ कर उसे आश्रम में विश्राम करने का अनुरोध कर जिज्ञासा की—

"एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि द्विजः।"

"हे द्विज, तुम इस दण्डक वन में अकेले क्यों विचरते हो?"

रावण ने शब्दों का आडम्बर न कर एक बार ही अपना अभिप्राय प्रगट कर दिया कि, "मैं राक्षसराज रावण हूं, त्रिकूट पर्वत के ऊपर लङ्का मेरी राजधानी है तथा अनेक देशों से संग्रह कर मैं सोलह सौ सुन्दरियों को लाया हूं और तुमको उन सब की पटरानी बना दूंगा। राजा दशरथ ने मन्द-वीर्य ज्येष्ठ पुत्र को सिंहासन से उतार कर अपने प्रिय कनिष्ठ-पुत्र को सिंहासन दिया है। उनके सङ्ग रहने से तुम्हें कोई लाभ नहीं। त्रिकूट पर्वत के शिखर पर स्थित वनमालिनी लङ्का के सुपुष्पित पेड़ों की छाया में हमारे सग निवास कर तुम रामचन्द्र को कभी मन में भी स्मरण न करोगी।" सीता को हमने तपस्वियों की पत्नियों के समक्ष एक सुकुमार लता के सदृश देखा है। उसका लज्जायुक्त और सुन्दर मुख कुछ कुछ म्लान हो गया था किन्तु उस लज्जित और मृदु छवि में जो प्रखर तेज छिपा हुआ था उसका पूर्वाभास हमें उसके वनवास के सङ्कल्प के समय मिल चुका है। किन्तु इस समय उस तेज का विकाश पूर्ण रूप से दिखाई पड़ा। रावण बड़ा

तेजस्वी और महापराक्रमी था। उसके भय से पञ्चवटी के पेड़-पत्ते हिलते डुलते नहीं थे, पास में गोदावरी का प्रवाह मन्द होकर बहने लग गया था और अस्ताचल पर रहने-वाला सूर्य भी मानो रावण के भय से एक दिशा के कोने में छिप गया था। यह भयानक असुर जिस समय परिव्राजक का वेश त्याग कर सहसा रक्त माला पहिन कर अपनी प्रभुता और शक्ति का गर्व करने लगा उस समय सीता ल्युकेशिया के समान अथवा काटी हुई लता की तरह भूमि पर लोट नहीं गई। जो लता के समान कोमल थी, जो चीरवस्त्र धारण करते समय सजल नेत्रों से स्वामी की ओर देख कर खिन्न हो गई थी, जो मृदु भाषा में अपने मन की बात कह कर रामचन्द्र के कानों में अमृत सींचती थी वही पुष्पों के अलङ्कारों से शोभित दुबली पतली सीता बिजली की तरह तेजस्विनी हो गई। जिसके भय से जगत काँपता था, सती उसी को भय की देने वाली हो गई। किसने इस खिले हुए कुसुम-सदृश कोमल रूप में यह विजयश्री और ऐसा तेज प्रदान कर दिया? किसने उसकी भाषा में क्रुद्ध अग्नि के समान ऐसी ज्वालामयी बातें भर दीं?—"हमारे स्वामी पर्वत के समान अटल हैं, इन्द्र के तुल्य पराक्रमी हैं, हमारे स्वामी जगत्पूज्य चरित्रशाली हैं, जगत को भय देने वाले तेज से दृप्त हैं और हमारे स्वामी सत्यप्रतिज्ञ और विश्रुतकीर्ति हैं; हे राक्षस, तू वस्त्र से अग्नि पकड़ने की इच्छा करता है, जीभ से तलवार की धार चाटना चाहता है और कैलाश पर्वत को अपने हाथों से उठाने की चेष्टा करता है। तू राम की स्त्री को स्पर्श करे, तेरी यह शक्ति नहीं। सिंह और शृगाल में, सोने और लोहे में जो अन्तर है उससे भी अधिक राम-

चन्द्र और तुझ में अन्तर है। इन्द्रपत्नी शची को भी हर लेने पर तेरी रक्षा हो सकती है किन्तु हमें स्पर्श करने पर तेरी मृत्यु होना निश्चय है।"-वक्र केशकलाप सीता के तेजोमय मुख पर चारों ओर लहरा रहे थे और जिस समय कुछ गर्दन हिला कर उसने खिले हुए कमल के सदृश रक्त मुख-मण्डल को उठा कर रावण को तीव्र भाषा में धिक्कार दी उस समय हमने सीता की मूर्ति देखा। भारतवर्ष के श्मशानों में मृत स्वामी के समीप ही जलती हुई चिता पर बैठी हुई वन-पुष्प-सुन्दर और स्थिरप्रतिज्ञ रमणी के मुख पर सतीत्व की जो श्री हमारी आखों में विराज रही है; जिस श्री को श्मशान की अग्नि जला नहीं सकती और जिस श्री ने भारत के प्रत्येक ग्राम और नदीपुलिन को एक अशरीरी* पुण्यप्रवाह के बल से सदा के लिए तीर्थ बना दिया है और स्वामी के समक्ष मरने पर जिस सतीत्व ने माँग को भर कर हिन्दू रमणियों के सिन्दूर-विन्दुओं को अक्षय्य सौन्दर्य प्रदान किया है—आज जीवन में हम सीता की उसी चिरपूजनीया सतीमूर्ति को देख कर कृतार्थ हुए हैं।

रावण सीता की यह मूर्ति देखने के लिए प्रस्तुत न था; वह जितनी रमणियों के केश आकर्षण कर उन्हें सर्वनाशिनी लङ्कापुरी में लाया था उन सब ने कितने ही दीन वचन और विनय करके उसके हाथ से छुटकारा पाने की भिक्षा माँगी थी। रावण स्त्रियों की करुण कण्ठध्वनि सुनने का अभ्यासी था। किन्तु इस अलौकिक रूपलता में वैसी मृदुलता का लेश भी नहीं था और पद्मपत्र नेत्रों में एक भी अश्रुविन्दु

* अशरीरी=शरीररहित, अदृष्ट।

नहीं था। जीवन में यही पहली बार रावण के भीतिदायक प्रभाव का मुकाबला किया गया ! जो जान जाने से डरता है, वह जान लेने वाले से भी डरेगा किन्तु सीता ने अपने को असहाय समझ कर कहा था कि, "बाँधो चाहे मारो हमारे इस शरीर में इस समय दम नहीं है। हे राक्षस, अब इस शरीर या जीवन की और रक्षा करना हमें उचित नहीं है।"

"ललाटे भ्रुकुटीं कृत्वा रावणः प्रत्युवाच ह ।"

सीता की अभिमान भरी बातें सुन कर विस्मित हुआ रावण ललाट पर भृकुटी चढ़ा कर बोला कि वह कुबेर को जीत कर पुष्पक विमान लाया है और जगत के सब प्राणी उससे मृत्यु के तुल्य भय करते हैं,—

"अंगुल्या न समो रामो मम युद्धे स मानुषः ।"

"रामचन्द्र युद्ध में हमारी उँगली के बराबर भी नहीं है" किन्तु उसने वाग्वितंडा में वृथा समय नष्ट करना युक्तियुक्त न समझ कर बांये हाथ से सीता के केशों का जूड़ा और दाहिने हाथ से कमर पकड़ कर उसे रथ पर बैठा लिया। सहसा वह पञ्चवटी की वनश्री मलीन हो गई, पेड़ चुपचाप मानो रोने लगे और पक्षीगण व्याकुल होकर उड़ नहीं सकते थे। उस वनलक्ष्मी को रावण हर ले गया। उस लहलहाते हुए वन की शोभा श्रीहीन हो गई। सीता का आर्तनाद और चिल्लाना सुन कर उस निर्ज्जन वन में स्वाभाविक ही एक महाजन लट्ठ लेकर खड़ा हो गया, उसके केश हंस के परों की तरह सफेद हो गये थे और दण्डकारण्य में बहुत बरस निवास कर बुढ़ापे के कारण वह जीर्ण-शीर्ण हो गया था। उसने दूसरों के कलह को अपने सिर ले रावण से युद्ध कर

अपना प्राण दे दिया। जटायू तू धन्य है। आज इस भारत-वर्ष में ऐसा कौन है जो अन्याय के विरुद्ध खड़ा होकर तेरे समान अपना प्राण दे दे? सीता आर्तनाद करके बोली,—"राम, तुमने देखा नहीं, वन के मृग-पक्षी भी हमारी रक्षा करने के लिए दौड़ते हैं।" जिन कनैल के फूलों को लाने के लिए वह वन वन में फिरती थी उन्हीं को लक्ष्य करके बोली—

"क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः"

"हे कर्णिकार के पुष्पो तुम रामचन्द्र से शीघ्र कह दो कि रावण सीता को हर ले गया।" हंस-सारस-युक्त और भँवर से शोभित गोदावरी को उसने पुकार कर कहा—

"क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः"

स्त्रीरूपी दिशाओं की स्तुति करके वह बोली—

"क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः"

रथ क्रमशः लंका के पास पहुंचा, सीता अपने गहनों को देह से उतार कर फैंकने लगी। उसके चरणों के नूपुर बिजली के समान छमछम करते थे और ऐसा मालूम होता था मानों उसके गले में पड़ा सफेद मोतियों का हार गंगा की पतली धार के समान आकाश से गिर कर आया हो। रावण के समीप उसका मुख दिन के चन्द्रमा के समान मलीन दिखाई देने लगा,—सीता की लाल रंगी हुई आधी धोती रावण के रथ के पास उड़ रही थी। उस शोकविमूढ़ सीता की दुरवस्था देख कर मानो सारा जगत क्रुद्ध होकर मन ही मन में कह रहा था कि, "जिस संसार में रावण सीता को हर ले जाय उस जगह धर्म की जय नहीं है, उस

जगह पुण्य नहीं है" रावण सीता को लङ्कापुरी में ले आया। लङ्का में संसार के विलास की सब सामग्री उपस्थित थी। नेत्र और कर्णों के प्रसन्न करने के लिए जो वस्तुएं कल्पना में आ सकती हैं वे सब वहाँ उपस्थित थीं। इसी ऐश्वर्य-संपन्न लङ्कापुरी को सीता को दिखा कर रावण बोला, "तुम हम पर प्रसन्न हो जाओ, यह सारी प्रभुता तुम्हारे चरणों के तले है। तुम्हारा अश्रुक्लिन्न मुखपङ्कज हमको पीड़ा दे रहा है। क्या तुम्हारा सुन्दर मुख शोकार्त होने के योग्य है? तुम्हारे स्निग्ध और पल्लवकोमल चरणों में मैं अपना सिर रखता हूं। रावण ने इस तरह अभी तक किसी रमणी के प्रेम की भिक्षा नहीं की। तुम हम पर प्रसन्न हो जाओ।" सीता ने इन सब बातों को कान नहीं दिया। वह पागल हो गई थी, रावण की ओर क्रोध भरी लाल लाल आंखों से बारबार देख कर सीता ओठ पीस कर और लाल चेहरा करके बोली— "क्या चाँडाल की सामर्थ्य है कि यज्ञ में ब्राह्मण के मन्त्र से पवित्र की गई और पुष्पमाला और पत्रों से शोभित वेदी को स्पर्श करे? राक्षस तू अपनी मृत्यु को आपही बुला रहा है।" रावण की ओर घृणा से पीठ करके सीता मौन हो गई, वंदनीय सीता के सारे अङ्ग से घृणा और अलौकिक तेज प्रकाशित होता था। रावण जब सब उपाय करके हार गया तब राक्षसियों से बोला, "इसको अशोक वन में ले जाओ और चाहे बल से, चाहे छल से, चाहे मीठे वचनों से, चाहे भय दिखा कर किसी भी उपाय से इसे हमारे बस में करो।"

उस अशोक वन में फूलों के भार से झुकी हुई शाखाएं ऐसी मालूम होती थीं मानो भूमि को चुम्बन कर रही हैं,

पास ही एक विशाल राजमहल था, उसके सङ्गमरमर के हज़ार खंभों पर एक एक सिंह की मूर्ति खुदी हुई थी। वह उपवन अनेक विचित्र विचित्र मूर्तियों से शोभायमान था। चम्पक, उद्दालक, सिन्धुवार और कोविदार के पेड़ों ने निरन्तर पुष्पों को खिलाकर उस वन को समृद्ध कर रक्खा था। उस वन में एक सुन्दर सरोवर बनाया गया था और उसमें सुन्दर सुन्दर मणियों की सीढ़ियां लगाई गईं थीं और उस के तट पर लगे हुए वन के पेड़ों से गिरे हुए पुष्पों से वह सरोवर कुछ कुछ कम्पित होता था, इस रमणीय उद्यान में सीता को रखना निश्चय हुआ। इस आरण्य दृश्य के पार्श्व में विपन्न और मलिन-श्री सीता देवी की जो मूर्ति वाल्मीकि अंकित कर गये हैं वह अपने सर्वथा निश्शब्द माधुर्य, दुष्ट राक्षसियों के बीच में रह कर भी अटल सतीत्व के गर्व और करुण शोकाश्रुओं द्वारा हमारे चित्त को विशेष रूप से आकृष्ट करती है।

उनकी सहचारिणी राक्षसियां बुरे स्वप्न में दिखाई दिये यमराज के दूतों के समान थीं, वे विभीषिका की जीवन्त मूर्तियां थीं। उनमें किसी के आँख नहीं थी, किसी के ओंठ लम्बे थे, कोई शङ्कुकर्णा थी, कोई स्फीतनासा—और कोई "ललाटोच्छ्वासनासिका" थी। ये सब अपने पिङ्गल चक्षुओं से सीता को निरन्तर डराती थीं। विनता नाम की राक्षसी ने कहा, "सीता, स्वामी पर तुम्हारे स्नेह की पराकाष्ठा हो गई, अब और आवश्यकता नहीं है, अब तुम "रावणं, भज भर्तारं" 'रावण को पति बनाओ' नहीं मानोगी तो—

"सर्व्वान्त्वां भक्षयिष्यामहे वयम्।"

"हम तुम्हें सारी को खा जायंगे"

लंङ्कितस्तनी विकटा नाम की राक्षसी मुष्टि दिखा कर सीता को डराती थी और कहती थी--"इन्द्र की सामर्थ्य नहीं कि जो इस पुरी से तुम्हें निकाल ले जाय। स्त्रियों का यौवन सदा नहीं रहता। हे मदिरेक्षणे, जितने दिन यौवन है उतने दिन सुख भोग ले ; रावण के सङ्ग सुरम्य उद्यान, उपवन और पर्वत पर विचरण कर। यदि नहीं मानेगी तो—

"उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि मैथिलि।"

"हे मैथिली, तेरा हृदय फाड़ कर हम खा जायंगी।" क्रूरदर्शना चण्डोदरी नाम की राक्षसी इस समय "भ्रामयन्ती महच्छूल" सीता के सामने बड़ा भारी शूल फिरा कर बोली. "इस त्रासोत्कम्प पयोधरा मृगशावकनयना को देखकर हमें बड़ा लोभ होता है। इसके यकृत, प्लीहा और छाती को फाड़ कर मैं खाऊंगी।" प्रघसा राक्षसी ने भी इस बात का अनुमोदन किया और अजामुखी बोली, "मद्य ले आओ हम सब बाँट कर इसे पीवें।" फिर शूर्पनखा भाँड़ों की तरह नाच कर बोली. ठीक बात है "सुरा चानीयतां क्षिप्रम्।"

इस विभीषिका-पूर्ण राज्य में उपवास-कृश मैथिली ये सब भयप्रद बातें सुनकर "धैर्य्यमुत्सृज्य रोदति" उसके दोनों नेत्र आँसुओं से विकल हो गये और वह सुन्दरी "धैर्यहीन होकर रोने लगी।"

सीता का सुन्दर मुख आँसुओं से भीग रहा था, जिसके भूषण पहिरने पर शिल्पी का परिश्रम सार्थक होता था वह भूषणहीन थी, जो सदा सुख से रहती थी वह चिरदुःखिनी हो रही थी—"

"सुखार्हा दुःखसन्तप्ता मण्डनार्हा अमण्डिता।"

"जो सुख से रहने के योग्य होने पर भी दुःखसन्तप्ता और भूषण धारण करने के योग्य होने पर भी भूषण हीन थी।" एक मैले गेरुए वस्त्र ने उसके उपवास से कृश अङ्ग को ढक रक्खा था। पूर्णमासी की चाँदनी के समान वे सारे संसार को सुख देती थीं। शोकजाल में उनका असली रूप छिप सा गया, धूवें से भरी अग्नि की लौ की तरह प्रकाशित होने पर भी उनका रूप प्रकाशित नहीं होता था, सन्दिग्ध स्मरण शक्ति की तरह वह रूप अस्पष्ट था। अशोक के वृक्ष के नीचे अचेत शरीर से ध्यानमयी क्या चिन्ता करती थी? इस लङ्का का ऐसा विकट तेज और विक्रम और असामान्य ऐश्वर्य है. यहां सौ योजन दूर से केवल भ्राता ही की सहायता से जटावल्कलधारी रामचन्द्र इस दुर्गम स्थान में कैसे आवेंगे? राक्षसी एक वाक्य होकर कहती थीं कि यह असम्भव से भी असम्भव है। रावण ने उसे बारह महीने का समय दिया था, उसमें दस महीने बीत गये थे और दो महीने बीतने पर रावण के कलेवा करने के लिए रसोइये उसकी देह के टुकड़े टुकड़े कर डालेंगे। सीता इस असहाय राक्षसपुरी में अपने स्वजनों का मुख न देख सकी, केवल राक्षसियाँ उसे अनेक अनसुने भयंकर रूप दिखातीं और डराती थीं। इधर रावण प्रायः ही इस जगह आकर कभी भय दिखाता और कभी मधुर भाषा में बोलता कि—"तुम्हारे सुन्दर अङ्ग पर जिस समय हमारी आँख पड़ी उस समय ही वह वहाँ की वहीं रह गई। तुम्हारे समान सर्वाङ्गसुन्दरी हमने देखी नहीं; तुम्हारे सुन्दर दाँतों और मनोहारी युगल नयनों ने हमें उन्मत्त कर दिया है। तुम्हारी मैली गेरुवी धोती हमें बड़ा

कष्ट देती है, लङ्का का सारा राज्य तुम्हारे चरणों के तले है। हे विलासिनि तुम प्रसन्न हो जाओ।" किन्तु अनशन से कृश, शोकाश्रुपूर्णनेत्र और गेरुवी मैली धोती पहने वह तपस्विनी क्रोध से लाल मुख करके बोली, "हमारी ओर जिस बुरी आँख से तू देखता है वह इस समय भी निकल कर पृथिवी पर क्यों नहीं गिर पड़ती! महाराज दशरथ की पुत्रवधू और पुण्यश्लोक रामचन्द्र की धर्मपत्नी के प्रति जिस जिह्वा ने ये सब बातें कहीं क्या इस समय भी वह कट कर नहीं गिर पड़ी? तेरे काल रामचन्द्र आते हैं, यह अनुपमेय ऐश्वर्य-शालिनी लङ्का शीघ्र ही सदा के लिए अन्धकार में लीन हो जायगी।" यह कह कर होंठ पीसती हुई सीता घृणा और उपेक्षा से रावण की ओर पीठ करके बैठ गई। उसकी पीठ पर लटकती हुई एक मात्र वेणी राक्षस-कुल-संहारक महा-सर्प के समान फुंकार मार रही थी।

रावण क्रोधान्ध होकर सीता को मारने के लिए उद्यत हुआ, उस समय लटक रही है सोने की करधनी जिसके और मद से विह्वल अङ्गवाली धान्यमालिनी नाम की रावण की स्त्री उसे आलिङ्गन कर गृह को लिवा ले गई।

इसके पीछे सीता के ऊपर राक्षसियों ने जो तीव्र शासन किया, वह अनुभव किया जा सकता है, किन्तु सब अत्याचार और कष्ट सहने ही पड़ेंगे यह समझ कर किसने इस क्लिन्न देह और कोमल लता को असाधारण व्रत और तेज से दीप्त कर दिया था? इस फूल के सदृश रमणी को शूल के समान 'कठोरता' प्रदान कर कौन उसकी रक्षा करता था? किसने इस अनशन, छिन्नवास और भूशैया से क्लिष्ट नवनीत सी

कोमल देह के भीतर ऐसी अपूर्व अलौकिक बिजली की शक्ति भर दी थी ? किस स्वर्गीय आशा ने उसके कानों में असम्भव रामागमन और राक्षसों के ध्वंस का पूर्वाभास गुँजा कर अशान्ति में शान्ति के कण प्रदान किये थे ? किसने इस ऐश्वर्य और विलास को घृणा और उपेक्षा करना सिखा कर सीता को पवित्र यज्ञाग्नि के समान प्रदीप्त करके हमारे अन्तः-पुर का आदर्श बना रक्खा था ? इन सब प्रश्नों का एक बात में उत्तर दिया जाता है उससे हमारा भ्रम दूर हो जायगा। इस दीनता के मध्य में यह जो आश्चर्यमय ऐश्वर्य और इस कोमलता के बीच में यह जो असम्भव दृढ़ता जहाँ से सञ्चारित होती थी उसका नाम है विश्वास। विश्वास के व्रत का फल होना अवश्यम्भावी है, उसी के बल से सीता मानो दूर भविष्य के गर्भ को विदारण कर पुण्य के विजय को प्रत्यक्ष कर इतनी तेजस्विनी हुई थी।

किन्तु भारी विपत्ति की दशा में हर समय धीरज बना रहना सम्भव नहीं है। कभी कभी सीता भूमि पर पड़ी पड़ी निरन्तर रोती थी; वह दुःख का अन्त न देखकर बड़ी बिकल हो गई। कभी सोचती कि रावण के कहे दो महीने बीत गए हैं, अब रसोईदार उसकी देह के टुकड़े टुकड़े कर उससे रावण के लिए भोजन बनावेंगे; कभी समझने लगती कि चौदह वर्ष तो पूरे हो गए हैं, हो न हो रामचन्द्र तो अयोध्या चले गए हैं और वहाँ वे विशाल नेत्रवाली रमणियों के साथ आनन्द से कालयापन करते होंगे। यह बात सोचते हुए उसके हृदय में बड़ी भारी चोट लगी। वह अपने सूखे मुंह से जब अपने को निराश्रय समझकर चारों ओर दृष्टि दौड़ाती, उस समय

उसका सौंदर्य प्रकाश होकर भी मानो प्रकाश नहीं होता था—

"पद्मिनी पङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च।"

"वह पङ्कदिग्धा कमलिनी के समान प्रकाश होकर भी मानो प्रकाशित नहीं होती थी"

कभी मन में सोचती कि रामचन्द्र तो उसके लिए शोकाकुल होंगे नहीं क्योंकि उनका हृदय योगी के समान है, संसार के सुख दुःख से छूटने के लिए वे पूजा-पाठ और सत्कर्म करते हैं वे स्वयं किसी के लिए कभी व्याकुल नहीं होते। यह सोचकर उसका हृदय धुकड़ पुकड़ करने लगा और वह अपने को सर्वथा निराश्रय समझने लगी। अथवा कभी राक्षसियों की ताडना असह्य होने पर वह क्रुद्ध स्वर से उनसे कहती कि, "राक्षसियो, तुम अधिक क्यों बकती हो, चाहे हमें काटो चाहे हमारे टुकड़े टुकड़े कर डालो, चाहे अग्नि में जलाओ हम किसी तरह रावण के वश में नहीं होंगी!" इस प्रकार वे एक दिन दुःख की चरम सीमा पर पहुंच गई थीं, अशोक वृक्ष की एक शाखा का सहारा ले खड़ी हुई वे सोच विचार कर रहीं थीं और उनका प्राण बड़ा व्याकुल हो रहा था। ऐसे समय में किसने उसे शिंशिपा वृक्ष के अग्रभाग से चिरमधुर राम नाम सुनाया! वह नाम सुन कर अकस्मात् उनका चित्त गद्गद् हो कर उनके नेत्रों में अश्रुओं के कण दिखाई पड़े, वह सजल नेत्र हो बिखरे बालों को एक हाथ में पकड़ कर ऊंचा मुख करके अपने प्राणप्रिय पति के नाम का कीर्तन करने वाले को देखने लगी। वर्षा न होने से सन्तप्त पृथिवी जैसे जल की बूंदों के

पड़ने की बड़ी उतकण्ठा से प्रतीक्षा करती है, उसी प्रकार रामचन्द्र की मधुर कथा सुनने के लिए सीता बड़ी व्यग्र हो रही थी ।

हनूमान ने हाथ जोड़ कर कहा, "हे क्लिन्न कौषेयवासिनि, आप जो अशोक की शाखा का सहारा लिए खड़ी हैं कौन हैं आपके पद्मपलाश-चक्षु जलभार से क्यों व्याकुल हो गये हैं ! आप क्या वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती हैं जो स्वामी से कलह करके यहाँ आगई हैं अथवा चन्द्रहीन होकर चन्द्रमा की रमणी ने पृथिवी पर अवतार लिया है ? आप यक्ष, रक्ष, वसु इनमें से किसकी रमणी हैं ? आप भूमि को स्पर्श कर रहा हैं, आप के अश्रुजल दिखाई पड़ता है इसलिए हम आपको देवता भी नहीं समझ सकते, यदि आप राम की पत्नी सीता हैं, यदि दुरात्मा रावण ने आप को जनपद से हर लाकर आपकी ऐसी दुर्दशा की है तो यह बात कह कर हमें कृतार्थ करें ।" सीता ने संक्षेप में अपना परिचय देकर हनूमान को पास आने की आज्ञा दी । वे नीचे उतर आये, हनूमान को देखकर वे डरीं और सहसा सोचने लगीं कि कहीं यह कपट रूपी रावण न हो ? जो क्षण भर पहले अपने प्रियतम के समाचार जानने की आशा से प्रफुल्लित हो गई थीं वे यकायक भय से विह्वल हो गईं और भय के कारण अशोक की शाखा से उनकी बहुरूपी लता निकल पड़ने पर वे पृथ्वी पर गिर पड़ीं ।

"यथा यथा समीपं स हनुमानुपसर्पति ।
तथा तथा रावणं सा तं सीता परिशङ्कते ॥"

"ज्यों ज्यों हनूमान् पास आते थे त्यों त्यों सीता उन्हें रावण समझ कर डरती थी ।"

किन्तु इस सन्देह को दूर करना हनूमान के लिए सहज हो गया, रामचन्द्र के समाचार पाकर सीता का मुख प्रसन्न हो गया, कृशांगी के चक्षुओं में जल भर आया, वह इस बात को अनेक संकेतों द्वारा हनूमान से बारंबार जानना चाहती थीं कि रामचन्द्र उनके लिए शोकातुर हैं या नहीं? हनूमान ने उन्हें समझाया कि 'जो पर्वत के समान अटल हैं, वे शोक में उन्मत्त हो गये हैं और उनका गांभीर्य चूर्ण हो गया है। रात दिन उनको चैन नहीं है, फूलों के पेड़ों को देखकर वे उन्मत्त होकर आपके लिए फूल तोड़ते हैं। जब कमल के पुष्पों से सुगन्धित होकर मन्द मन्द वायु चलती है तब उसे आपका कोमल श्वास समझते हैं, स्त्रियों की कोई प्रिय वस्तु देखकर उन्मत्त होकर वे आपकी बातें करने लगते हैं, जागते हुए आपकी कथा छोड़ कर और कुछ नहीं बोलते और सोने पर भी—

"सीतेति मधुरां वाणी व्याहरन् प्रतिबुध्यते।"

"सीता, यह मधुर शब्द कहते हुए उठते हैं। वे प्रायः ही उपवास में दिन व्यतीत करते हैं—

न मांसं राघवो भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते।"

"रामचन्द्र मांस नहीं खाते और न मधु का सेवन करते हैं।" यह कथा सुनते सुनते सीता और कुछ न सह सकीं और साश्रु नेत्रों से बोल उठीं,—

'अमृतं विषसंपृक्तं त्वया वानर भाषितं।"

"हे हनूमान तैंने विषमिश्रित अमृत वाणी कही है" तब हनूमान ने राम की दी हुई अंगूठी सीता को चिन्ह-स्वरूप प्रदान की—

"गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषितं।
भर्तारमिव सम्प्राप्ता सा सीता मुदिताभवत्॥

"अपने पति की दी हुई अँगूठी को लेकर सीता देखने लगी और सीता को स्वामी से मिलने के सदृश ही प्रसन्नता हुई।"

उस समय उस सुन्दरी के बहुत दिनों के दुःख दूर होने के कारण से जिस आनन्द-प्रवाह से उसके दोनों गण्डस्थल उल्लसित हो गये थे, उसे हम चित्रित नहीं कर सकते। उस अँगूठी के सुखस्पर्श से बहुत दिनों की बातें, कितने ही सुख दुःख; गद्गद नाद करनेवाली गोदावरी के तट पर रामचन्द्र के संग विचरना, कितनी ही आदर और स्नेह की बातें याद आ गईं और उसके काली पलकों से छाये हुए चक्षुओं के कोनों से बराबर आंसू टपकने लगे। हनूमान सीता को पीठ पर चढ़ाकर रामचन्द्र के पास ले जाना चाहते थे किन्तु सीता ने स्वीकार नहीं किया। वह बोली, "जो राक्षस मेरा पीछा करेंगे तो मैं समुद्र में गिरकर प्राण दे दूंगी किन्तु अपनी इच्छा से पर पुरुष को स्पर्श न करूंगी।"

और एक दिन का चित्र स्मरण आता है। राक्षसों का नाश हो गया था और विभीषण सीता को रामचन्द्र के पास ले जाने के लिए आया था। अनेक रत्नों और सुन्दर वस्त्रों को देखकर सारे अङ्ग में धूल से लिपटी हुई सीता बोली—

"अस्नाता द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसेश्वर।"

'हे विभीषण, मैं बिना स्नान किये हुए ही भर्ता को देखना चाहती हूं।" जब सीता की सहचारिणी राक्षसियों को हनूमान ताड़ना देने लगे तो क्षमाशीला सीता ने उन्हें

रोक कर कहा, "स्वामी की आज्ञा से इन्होंने जो कुछ किया है इसके लिए इन्हें दण्ड देना उचित नहीं।"

इसके बाद विशाल सेना के समक्ष रामचन्द्र ने सीता से जो अत्यन्त कठोर वचन कहे थे, उन्हें सुन कर लज्जा के मारे लज्जावती मर सी गई किन्तु तेजस्विनी की महिमा एक दम प्रकाशित हो उठी। रामचन्द्र के कठोर वचन साधारण पुरुषों के से थे, यह समझ कर साध्वी का कण्ठ दुविधा से कम्पित नहीं हुआ; पति के चरणों में अशेष प्रेम प्रगट करके मरने के लिए तैयार हो गईं और आये हुए अश्रुओं को पोंछ कर नीचा मुख कर बैठे हुए स्वामी की प्रदक्षिणा करके जलती हुई चिता पर बैठ गईं।

इसके पश्चात् तपाये हुए स्वर्ण की प्रतिमा के समान अग्नि ने इस देवी को रामचन्द्र के हाथों में अर्पण करके कहा, "जो आजन्म से शुद्ध है उसे हम और क्या शुद्ध करेंगी?"

उत्तरकाण्ड का अन्तिम दृश्य हृदयविदारक है। लक्ष्मण सीता को वन में छोड़ने के लिए ले गये थे, किनारे पर लगे वृक्षों से सुशोभित गंगा के तीर पर पहुंच कर लक्ष्मण बालक की तरह रोने लगे। लक्ष्मण का रोना सुन कर सीता विस्मित हुईं और यह न समझ सकीं कि गंगा के इस सुन्दर तट पर आकर लक्ष्मण की क्या मनोबाधा उठ-खड़ी हुई। वह लक्ष्मण से बोलीं कि, "तुमने दो रात से रामचन्द्र का मुखारविन्द नहीं देखा, क्या उस क्षोभ से रोते हो?"—बिना किसी प्रकार के संदेह के सीता ने स्वाभाविक सरलता से यह प्रश्न किया था किन्तु अन्त में जब लक्ष्मण उनके चरणों में लोट कर बोले कि "आज हमारी मृत्यु हो जाती तो अच्छा होता" और उन्होंने कठोर कर्तव्य के अनु-

रोध के वशीभूत हो उन्हें विसर्जन करने का मर्मच्छेदी संवाद सुनाया। स्थिर देवमूर्ति के समान सीता खड़ी रहीं। उस समय मानो गंगा के जल से सींचे तीर के तरुओं के पुष्पपराग से समृद्ध सुगन्धित वायु सीता के माथे के पसीने और आँखों के आँसू को पोंछने के लिए उसको धीरे धीरे स्पर्श कर रही थी। गंगा के तीर पर खड़ी होकर पत्थर की मूर्ति के समान उसने यह दुःसह संवाद सहन कर लिया और क्षण भर बाद ही बिकल होकर लक्ष्मण से बोली, "लक्ष्मण, रामचन्द्र के संग जो वनवास का आनन्द देखा है, आज रामचन्द्र के बिना यह वनवास कैसे सहेंगी ?" उसके कपोलों पर होकर निरन्तर अश्रुबिन्दु गिरने लगे। सीता उन आंसुओं को पोंछे बिना बोली, 'यदि ऋषि लोग हमसे पूछेंगे कि तुम्हें क्यों वनवास हुआ है, तो हम क्या उत्तर देंगी ? प्रभो, तुमने हमको निर्दोष जान कर भी इस विपद्-रूपी समुद्र में डाला, आज यह गंगा का गर्भ ही हमारे लिए एकमात्र शान्ति का स्थान है। किन्तु मैं तुम्हारी सन्तान धारण करती हूं इस दशा में आत्महत्या करना उचित नहीं।"

गंगा के तीर पर खड़ी हुई सीता चुपचाप अश्रु मोचन करने लगी और शेष में बोली—

"पतिर्हि देवता नार्य्याः पतिर्बन्धु पतिर्गुरुः ।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तुः कार्यं विशेषतः ॥

"पति ही स्त्रियों का देवता, पति ही बन्धु और पति ही गुरू है। उसका कार्य हमें प्राणों से भी अधिक प्रिय है।" उसने अश्रुरुद्ध गद्गद् कण्ठ हो लक्ष्मण से कहा —" लक्ष्मण,

इस दुःखिनी को छोड़ कर चले जाओ और राजा की आज्ञा पालन करो।"

इसके अनेक दिनों बाद एक समय भरी सभा में रामचन्द्र ने सीता को परीक्षा देने के लिए आह्वान किया। उस दिन छिन्न कौषेयवसना करुणामयी दुःखिनी सीता हाथ जोड़ कर बोली, "हे माता वसुन्धरे, यदि हमने मनसा वाचा कर्मणा पति की अर्चना की हो तो हमें अपने गर्भ में स्थान दे।"

सीता की कथा दुःख पवित्रता और त्याग की कथा है। इस सतीचित्र को वाल्मीकि सदा के लिए जीवन्त कर गए हैं। इसका विशाल चित्र भारतवर्ष के घर घर में अब भी सुशोभित है। अलक्षित भाव से सीता के सतीत्व ने भारतवर्ष की पत्नियों में अपूर्व सतीत्व बुद्धि का सञ्चार करके हमारी गृहस्थियों को पवित्र कर रक्खा है। नूतन सभ्यता के स्रोत में नूतन विलास-कला-मय चित्र को देखकर उस स्थायी और अमर चित्र के प्रति हम श्रद्धाहीन न हों! आओ माता आओ! तुमने सहस्रों वर्षों से हिन्दुओं के गृह में जो पुण्यशक्ति का संञ्चार कर रक्खा है उसे पुनरुद्दीपन करो, और घर घर में तुम्हारे लिए मंगलकलस प्रतिष्ठित हों। तुम भारतवासिनियों की लज्जा, तुम ही विनय और तुम ही दैन्य हो। तुम उनकी कठोर सहिष्णुता में, उनके प्राणों की भी परवा न करने के समय और उनके पवित्र आत्म-समर्पण के बीच में विराजो। तुम्हारे सुकोमल अलक्तक राग-रञ्जित युगल चरणों के नूपुरमुखर सञ्चालन से गृह गृह में स्वर्गीय सतीत्व की बातें सुनाई पड़ें। तुम हमारी आदर्श नहीं हो, तुम हमें प्राप्त हो चुकी हो। तुम कवि की सृष्टि नहीं हो,

तुम्हें भगवान् ने हम लोगों को दे रखा है। हमारे नाना दुःख और विडम्बनाओं में तुम्हारी ही प्रतिच्छाया अलक्षित भाव से प्रकाशित हो विचरती है और उससे ही सब दुःख दारिद्रय के होते हुए भी स्वल्प आहार और फटी पुरानी गुदड़ी में सोना भी हमें पूर्ण सुखप्रद प्रतीत होता है।
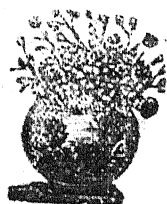
हनूमान ।

गृहस्थी में जैसे माता, पिता, भाई और पत्नी का स्थान है, वैसेही भृत्य वा सचिव का भी स्थान है। यह विचित्र प्रीति का सम्बन्ध त्याग के भाव से महिमान्वित हो गृहधर्म को कैसा अखण्ड सौन्दर्य प्रदान कर सकता है, रामायण काव्य में यह बड़ी ही उत्तमता से दिखाया गया है।

हनूमान पहले सुग्रीव के सचिव के रूप में राम लक्ष्मण के पास आये। इनमें सचिव के योग्य अनेक अच्छे २ गुण विद्यमान थे; उनका प्रथम अलाप सुन कर ही रामचन्द्र ने मुग्ध होकर लक्ष्मण से कहा था कि—' यह व्यक्ति व्याकरण शास्त्र में विशेष पारदर्शी मालूम होता है, इसकी बहुत सी बातों में एक भी अपशब्द सुनाई नहीं पड़ा।''—

''बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम् ।''

'ऋक्, यजु और सामवेद में पारदर्शी हुए बिना कोई ऐसी बातें नहीं कह सकता। इसके मुख, नेत्र और भौंएं दोषशून्य हैं और कण्ठ से उच्चारण की हुई वाणी हृदय-हारिणी है।'' अशोक वन में सीता से परिचय होने के पहले वे मन ही मन में यह तर्क-वितर्क करने लगे कि वे उससे संस्कृत भाषा में बात चीत करें या नहीं। समुद्र के तीर पर जाम्बवान् ने इनको शास्त्र पण्डितों में वरणीय कह कर ...श किया था।

अतएव देखा जाता है कि ये शास्त्रदर्शी और सुपण्डित थे। किन्तु केवल पाण्डित्य ही सचिव का प्रधान गुण नहीं है, अटल प्रभुभक्ति भी उसके लिए अत्यावश्यक गुण है।

सुग्रीव वालि के भय से जगत में मारा मारा फिरता था। भीत चित्त सुग्रीव कहीं सूर्य की प्रखर किरणों से शोभित यवद्वीप में, कहीं दुरतिक्रम्य महासागर के खजूर और सुपारी के वृक्षों से पूर्ण लाल किनारे पर और कहीं दक्षिण समुद्र की सीमान्त में स्थित खुले हुए बादलों की तरह पुष्पित पर्वत पर, इस प्रकार वह पृथ्वी की नाना दिशाओं में घूमता फिरता था। उस समय जो कई विश्वस्त अनुचर सर्वदा उसके साथ रहते थे उनमें हनूमान सर्वप्रधान थे। सुग्रीव पर अटल भक्ति होने का उन्होंने अनेक तरह से परिचय दिया था। यहाँ एक दृष्टान्त का उल्लेख किया जाता है।

समुद्र के किनारे आ कर एक बार वानरों की सेना बिलकुल हताश हो गई थी। सीता का कोई पता नहीं लगा। सुग्रीव का एक महीने का निर्दिष्ट समय बीत गया इस लिए सुग्रीव की आज्ञा से उनका सिर अवश्य उड़ा दिया जायगा इस भय से वानरों की सेना बड़ी व्याकुल हो गई थी। वे थक गये थे, भूख प्यास से व्याकुल हो रहे थे, निराशा से ग्रस्त थे और मृत्यु के दण्ड से भयभीत हो रहे थे। प्यास से व्याकुल इधर उधर घूमते फिरते एक जगह उन्होंने पद्म-रेणु-रक्तांग चक्रवाक के दर्शन और जलभाराद्र शीतल वायु के स्पर्श से यह अनुमान किया कि पास ही कोई जलाशय है और आगे बढ़ने लगे। प्राणों का भय छोड़ कर उन्होंने कई कोस लम्बी एक अंधेरी गुफा में जल की

तलाश में घूमते घूमते नीचे पृथ्वी पर एक ऐसे मनोरम राज्य का आविष्कार किया जहाँ पुष्प खूब खिल रहे थे और बहुत से तालाब और बावड़ियां थीं। भूख प्यास मिटने पर वे प्राणों की आशङ्का से पुनः विकल हो गये। उस समय युवराज अङ्गद और सेनापति अपने समस्त वानरों को सुग्रीव के विरुद्ध उत्तेजित करने लगे। उन्होंने कहा,—"किष्किन्ध्य लौटने पर क्रूरप्रकृति सुग्रीव के हाथ से हमारी मृत्यु होना निश्चय है। आओ, हम इस सुरक्षित पर्वत की अधित्यका भूमि में वास करें, अब स्वदेश लौटने का प्रयोजन नहीं है।" वानरों की सारी सेना ने इस प्रस्ताव का समर्थन करके कहा "सुग्रीव उग्रस्वभाव हैं और रामचन्द्र स्त्रैण हैं। निर्दिष्ट समय बीत गया है, अब रामचन्द्र को प्रसन्न करने के लिए सुग्रीव अवश्य ही हमारी हत्या करेगा।" जब हनूमान ने सुग्रीव को धर्मज्ञ कह कर उसका उल्लेख किया, उस समय अङ्गद ने उत्तेजित होकर कहा, "जो व्यक्ति बड़े भाई की जीवित दशा ही में जननी के समान उसकी पत्नी को ग्रहण करे वह बड़ा जघन्य है। बालि ने इस दुराचारी को रक्षक रूप से घर पर नियुक्त कर गुफा में प्रवेश किया था किन्तु यह दुष्ट पत्थर से गुफा का मुँह ढक कर चला आया, इस लिये उसे और कैसे धर्मज्ञ कहेंगे? सुग्रीव पापी, कृतघ्न और चपल है। उसने स्वयं हमें युवराज का पद नहीं दिया, वीर रामचन्द्र ही हमारे युवराज होने के कारण हैं, वह राम के निकट प्रतिज्ञा करके उस प्रतिज्ञा को भूल गया था। लक्ष्मण के भय से जानकी को ढूंढ़ने के लिए उसने हम लोगों को भेजा है, बस उसका यही धर्मज्ञान है? उसने धर्मशास्त्र का उल्लंघन किया है, इस समय बिरादरी में कोई उस पर

विश्वास और नहीं करेगा। वह गुणवान् हो चाहे निर्गुण वह हमारी अवश्य हत्या करेगा क्योंकि हम शत्रु के पुत्र हैं।" अङ्गद की इन सब बातों से बंदर अत्यन्त उत्तेजित हो गये। वे क्रमानुसार बालि की प्रशंसा और सुग्रीव की निन्दा करने लगे।

इस उत्तेजित बंदरों की सेना में हनूमान अपने अटल संकल्प पर आरूढ़ थे। उन्होंने दृढ़ स्वर से कहा "युवराज, आप यह न समझें कि यह बंदरों की मंडली लेकर आप इस जगह राज्य कर सकेंगे। बंदर स्वभाव से ही चञ्चल होते हैं, वे इस जगह स्त्री पुत्रों को छोड़ कर कभी आपकी आज्ञा नहीं मानेंगे। हम मुक्तकण्ठ से कहते हैं कि इन जामवान्, सुहोत्र, नील और हमें आप साम दाम आदि राजगुणों का क्या उत्कट दण्ड का प्रयोग करने पर भी सुग्रीव से अलग नहीं कर सकेंगे। आप तारा के कहने से इस गुफा में रहना निरापद समझते हैं किन्तु लक्ष्मण के बाण से इसका नष्ट होना बहुत छोटी सी बात है।"

विपत्ति काल में ऐसे धैर्य और तेज को प्रगट कर उन्होंने बंदरों की मंडली की आपस के कलह और गृह-विच्छेद से रक्षा की।

हनूमान सुग्रीव के केवल मात्र आज्ञा पालन करने वाले भृत्य नहीं थे किन्तु वे सदा सत्परामर्श द्वारा उनकी कर्तव्य बुद्धि को प्रबुद्ध करते रहते थे। मातङ्ग मुनि के आश्रम के निकट ऋष्यमूक पर्वत पर बालि का आना निषिद्ध है, यह इन्हीं ने जगत में भ्रमण करने से क्लान्त हुए सुग्रीव को समझा दिया था। बालि के बध होने के बाद जब वर्षा के बीतने और शरद के आरम्भ होने पर पहाड़ी नदियां मन्द गति से

बहने लगीं तो नदियों के किनारे धीरे धीरे जगमगाने लगे. रेती पर शोभायमान श्याम सप्तच्छद तरु के परुण पल्लव और असन और कोविदार वृक्षों का कुसुमित सौन्दर्य गगनावलम्बित होकर मानो गिरिसानुदेश में चित्रपट के समान अंकित हो गया। ऐसे सुखमय शरद काल में किष्किन्ध्यापुरी रमणियों के सम ताल और पदाक्षर-वाले वीणा के गानवाद्य से विलास के पर्यङ्कों पर सुखस्वप्न में मग्न थी। सुग्रीव के शुभ्र प्रसाद का शिखर कौन्दनियों की भन भन और सोने की ज़ंजीरों की हिल्लोरों से स्वप्नाविष्ट हो रहा था। उस समय किष्किन्ध्या की गिरिगुफा में एक स्थान पर ध्रुव तारे के समान कर्तव्य की स्थिर चक्षु जागृत थी और वह विलास के मोह में क्षण भर के लिए भी आच्छन्न नहीं हुई, और उसका सर्वदा स्वामी के हित-मार्ग की ओर लक्ष्य लगा हुआ था। किष्किन्ध्या में लक्ष्मण के प्रवेश करने के बहुत पहले और शरद काल के आते ही हनूमान ने सुग्रीव को रामचन्द्र से उसने जो प्रतिज्ञा की थी उसका स्मरण करा दिया और सब बंदरों की सेना को रामचन्द्र के कार्य के लिए इकट्ठे होने के लिए आज्ञा जारी करवा दी। वह आदेश यह है कि—

"त्रिपञ्चरात्रादूर्ध्वं यः प्राप्नुयादिह वानरः।
तस्य प्राणान्तिको दण्डो नात्र कार्या विचारणा॥

"जो बंदर पंद्रह दिन के बाद किष्किन्ध्या में आवेंगे उन्हें प्राणदण्ड मिलेगा और इसमें कुछ भी विचार नहीं होगा।"

इसके बाद क्रोध से होठ पीसते हुए लक्ष्मण ने किष्किन्ध्या में प्रवेश किया। विलासी सुग्रीव ने पूरी तरह विपत्ति को न समझ कर क्रूर कटाक्ष से अङ्गद की ओर देख कर कहा था—

"न मे दुर्व्याहृतं किञ्चिन्नापि मे दुरनुष्ठितम्।
लक्ष्मणो राघवभ्राता क्रुद्धः किमिति चिन्तये॥
न खल्वस्तु मम त्रासो लक्ष्मणान्नापि राघवात्।
मित्रं त्वस्थानकुपितं जनयत्येव सम्भ्रमम्॥
सर्व्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं प्रतिपालनम्।

'हमने किसी तरह का अन्याय या दुर्व्यवहार नहीं किया; रामचन्द्र के भाई लक्ष्मण क्यों क्रुद्ध हैं यह हम नहीं समझे, राम हों चाहे लक्ष्मण हों हमें किसी से भय नहीं किन्तु बिना कारण मित्र क्रुद्ध हुए हमें केवल यही आशङ्का है, मित्र करना बहुत सहज है किन्तु मित्रता की रक्षा करना बड़ा कठिन है।"

उस समय बड़ा गड़बड़ाध्याय देख कर हनूमान ने काम के वशीभूत हुए सुग्रीव को पास ही फूले हुए सप्तच्छद के वृक्ष दिखा कर शरत्काल का आविर्भाव समझा दिया कि— "रामचन्द्र और लक्ष्मण आर्त्त हैं, वे कष्ट पा रहे हैं, आप प्रतिज्ञा पालन करने में तत्पर नहीं हुए। उन्होंने दुःख में पड़कर जो क्रोध की बात कही हो उसका आपको ख्याल नहीं करना चाहिये। आप यदि अपने परिवार की और अपनी कुशल चाहते हों तो लक्ष्मण के पैरों पर गिर कर उन्हें मनाओ नहीं तो उनके बाण से किष्किन्ध्या का नाश हो जायगा।" हनूमान की बातों से डर कर सुग्रीव ने अपने गले में पड़ी हुई मनोहर माला तोड़ कर फेंक दी और लक्ष्मण को प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगा।

इससे विदित होता है कि हनूमान सुग्रीव को सत्परामर्श द्वारा अन्याय के पथ पर चलने से रोकते थे। वे केवल उनकी आज्ञा सुन कर ही उसका पालन नहीं करते

थे। दूसरी ओर यदि सुग्रीव के विरुद्ध कोई षड्‌यन्त्र रचा जाता तो वे अकेले सौ आदमियों के समान अटल रूप से दृढ़ होकर उसे निवारण करते थे। सुग्रीव पर विपत्ति आने पर उसके सारे क्लेशों का अधिक भाग वे स्वयं सहते थे। किष्किन्ध्या की विलास की तरंगें उनके चक्षुओं के सामने प्रवाहित होती थीं किन्तु वे कर्तव्य में बद्धलक्ष्य चक्षु को क्षण भर के लिए भी विलास के मोह में फँसने नहीं देते थे।

सुग्रीव का यह कर्तव्यनिष्ट भृत्य, शास्त्रदर्शी और शुभाकांक्षी सचिव रामचन्द्र से पहले ही पहल साक्षात्कार होने पर उनके गुणों से मुग्ध और उनका बड़ा भारी पक्षपाती हो गया था। राम-लक्ष्मण के प्रथम दर्शन से ही उसके हृदय में जो भाव उत्पन्न हुआ वह उसके प्रथम आलाप ही में प्रगट हुआ है कि—

"आप जो विशाल नेत्रों से पम्पा के किनारे पर लगे वृक्षों को देखते भालते जा रहे हैं सो आप कौन हैं ? आपकी भुजाएँ लम्बी, सुडौल और परिघ के तुल्य हैं। आप दो जने सारी पृथिवी को विजय करने में समर्थ हैं। आपका सुन्दर शरीर सब भूषणों के धारण करने के योग्य है, आप भूषणहीन क्यों हैं ?"

राम और सुग्रीव में मित्रता हुई। जब सुग्रीव ने सारी सेना सीता को ढूँढ़ने के लिए भेजी तब राम ने हनूमान को चिन्ह-स्वरूप अपनी नामांकित अंगूठी सीता के लिए दी। राम ने अपने मन में अच्छी तरह समझ लिया कि इस कार्य में हनूमान ही को सफलता प्राप्त होगी।

अनेक दिशाओं में घूमने पर बंदरों की सेना को सीता का कोई पता नहीं लगा; बन्धु वृक्ष की पर्ण-पुष्प-हीन एक

पहाड़ी गुफा को लाँघ कर वे समुद्र के तट पर पहुँचे। इस समय वे अनशन से प्राण त्याग करने का संकल्प कर पीड़ित हो रहे थे कि सहसा जटायु के छोटे भाई संपाति ने उन्हें यह पता दिया कि सीता दूर समुद्र पार लङ्कापुरी में स्थित है और बन्दरों में से जब तक कोई वहाँ न जायगा तब तक सीता का हाल मिलना असम्भव है।

समुद्र के तीर खड़े होकर वे विस्मय-पूर्वक भयविह्वल चक्षुओं से अपार जलराशि को देखने लगे। मेघों में चूर्ण तरंगें मिल गई थीं और सीमाहीन विशाल सरित्पति का ताण्डव-नर्तन और उन्मादन-मय फेन-युक्त भँवर ललाई लिये हुए आकाश से स्पर्श कर रहे थे। वे भय से व्यथित हो गये कि कौन इस अथाह महासागर को पार करेगा? शरभ, मयन्द, द्विविद प्रभृति सेनापति एक एक करके उठे और अस्फुट वाक् से अनन्त जलराशि के विशाल कल्लोल को सुन-कर स्तम्भित हो बैठ गये। अङ्गद ने खड़े होकर कहा, "मैं उस पार जा सकता हूँ पर लौटकर आ सकूंगा कि नहीं इसमें सन्देह है।" निराशा से विह्वल भयग्रस्त बन्दरों की सेना समुद्र के किनारे पर एकत्र होकर किसी २ वीर के पराक्रम का बढ़ावा देती थी किन्तु यही विदित होता था कि उस हवा से टकराती हुई लहरोंवाले विपुल जलाशय का पार करना सब की सामर्थ्य के बाहर है। बन्दरों की सेना में हनूमान चुपचाप एक जगह बैठे हुए थे, वे बन्दरों की अनेक आशङ्काएँ और विक्रमसूचक बातें चुपचाप सुनते थे। वे स्वयं कोई बात नहीं कहते थे! जामवान ने उनकी ओर देख कर कहा—

"वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदांवर।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनूमन् किं न जल्पसि ॥"

"हे बंदरों में सर्वश्रेष्ठ वीर, सर्वशास्त्रज्ञ पण्डितों में श्रेष्ठ हनूमान तुम बिलकुल चुप क्यों हो? इस विपन्न सेना से और कौन उत्साह भरी बातें कहेगा। तुम्हें छोड़ कर इस कार्य का भार और कौन लेगा?"

हनूमान यह जानते थे कि यह कार्य उन्हीं का है पर वे केवल इस बात की इच्छा करते थे कि इसके करने के लिए कोई उनसे कहे। जामवान् की बात का उत्तर न देकर वे सचल हिमालय पर्वत के समान खड़े होकर यात्रा के लिए प्रस्तुत हुए। असीम साहस और अपनी शक्ति में विपुल आस्था ने उनके ललाट पर एक प्रदीप्त शिखा अङ्कित कर दी थी।

उन्होंने कैसे समुद्र पार किया था यह कवि की कल्पना से जटिल होकर हमें स्पष्ट रूप से विदित नहीं हुआ। कई कोस चौड़ा समुद्र उन्होंने बड़े कष्ट और आफत से पार किया था। उन्होंने रास्ते में विश्राम करने के लिए मैनाक पर्वत का एक रम्य शिखर सामने खड़ा हुआ देखा किन्तु प्रभु के कार्य किये बिना उनकी विश्राम करने की इच्छा नहीं थी उन्होंने कहा था—

"यथा राघवनिर्म्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः।
गच्छेत् तद्वत् गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम् ॥"

"स्वाभाविक ही वे रामचन्द्र के बाण के समान लङ्का की ओर चले। रामचन्द्र की इच्छा की जीवन्त मूर्ति के समान आशुगति हनूमान लङ्कापुरी में जा उपस्थित हुए।"

लङ्का में पहुंच कर हनूमान सरल, खजूर और कर्णिकार के वृक्षों से युक्त समुद्रतट के पास ही लाल दीवारों के ऊपर सतमंज़िले महलों के शिखर देख सकते थे। पर्वत के शिखर पर स्थित दुर्गम लङ्कापुरी के अतुल वैभव और किले के मोरचों को देख कर हनूमान डर गये। जिस उत्साह से वे लङ्का में आये थे वह उत्साह सहसा मानो चला गया और सुरक्षित लङ्का का प्रभाव देख कर वे चिन्तित हो गये। उनके मुख से सहसा भय की यह बात निकली कि—

"न हि युद्धेन वै लङ्का शक्या जेतुं सुरैरपि।
इमान्स्तु विषमां लङ्कां दुर्गां रावणपालितां।
प्राप्यापि सुमहाबाहुः किं करिष्यति राघवः॥"

"इस लङ्का को देवता भी युद्ध में नहीं जीत सकते। रावण द्वारा रक्षित इस दुर्गम, भीषण लङ्कापुरी में रामचन्द्र उपस्थित हो कर ही क्या करेंगे!" जिनका यह दृढ़ विश्वास था कि—

"न हि रामसमः कश्चिद् विद्यते त्रिदशेष्वपि।"

अर्थात् "देवताओं में भी कोई राम के बराबर नहीं था" यह उनके अटल विश्वास की जड़ में मानो आघात पहुंचा। लङ्का के बाहर सुगन्धित नीम, प्रियंगु और करवीर के पेड़ जिस जगह श्रेणीबद्ध हो कर शोभित थे, हनूमान उस ओर देख कर एक बार लम्बी सांस छोड़ने लगे। रात्रि में रावण के शयनगृह में जिस समय उसको निद्रित अवस्था में उन्होंने चोर की तरह बड़ी होशियारी से देखा था उस समय भी उनके निर्भीक चित्त में भय का सञ्चार हो गया था। हाथी

शनैः शनैः रात्रि ने आकर लङ्का के विलास-भवनों में मनोहर दीपावली जलवा दी, हनूमान ने रावण की विशाल पुरी में रमणियों के विचित्र आमोद-प्रमोद देखे। पानशाला में शर्करासव, फलासव, पुष्पासव प्रभृति विविध प्रकार की सुराएं बड़े बड़े सोने के पात्रों में सजी हुई थीं। रावण और उसकी स्त्रियां मुर्गे का मांस और दधिसिक्त सूअर का मांस कुछ २ खाकर फेंक देती थीं, अम्ल और लवणपात्र और अनेक तरह के अर्द्धभक्षित फल चारों तरह पड़े हुए थे। नाचने और गाने से थकी हुई रमणियों के अलसाये हुए शरीरों से दुपट्टे गिरे पड़ते थे। अनेक स्थानों से आई हुई रमणियां आपस में एक दूसरे से गलबाँही डाले हुए विचित्र पुष्पों की माला की तरह दिखाई पड़ती थीं। ज़रा दूर पर लङ्कापुरी की अधीश्वरी और परम सुन्दरी सोती हुई मन्दोदरी की स्वर्णप्रतिमा की सी कान्ति देखकर उन्होंने समझा कि यह सीता है। यह समझ कर कि उनका परिश्रम सफल हुआ मारे आह्लाद के उनके नेत्रों में जल भर आया।

किन्तु क्षण भर में ही उन्होंने समझ लिया कि राम के विरह में सीता इस तरह नहीं सो सकती; इस प्रकार भूषण और वस्त्र और ऐसा सौम्य और शान्त भाव पतिपरायण सीता में होना असम्भव है। तब हनूमान अनमने होकर उसे खोजने लगे। पर वह कहीं न मिली। हाय, क्या सीता रावण से हरे जाने पर स्वर्ग से गिरे हुए मुक्ताहार के समान समुद्र में गिर पड़ी अथवा पिंजड़े में बन्द कोकिल की तरह उसने अनशन से प्राण त्याग दिया? कदाचित रावण के सताने से उसने अपनी आत्महत्या कर ली हो! जो रामचन्द्र उसके शोक में अशोक के फूलों के गुच्छों को आलिंगन करने दौड़ते

थे, रात दिन जिनकी आंखों में निद्रा नहीं थी, स्वप्न में भी जिनके मुख से 'सीता' यह मधुर शब्द निकलता था, उन्हीं विरह से व्याकुल प्रभु के निकट हनूमान क्या मुंह लेकर उपस्थित होंगे ? उर्मिमय क्रीड़ोन्मत्त महासमुद्र के किनारे जो विशाल बन्दरों की वाहिनी उनके मुख से सीता का समाचार सुनन ने के लिए उत्कण्ठित होकर आकाश की ओर टकटकी लगाये देख रही है उसके पास जाकर वे क्या कहेंगे ? सीता को ढूँढ़ते ढूँढ़ते परिश्रान्त हनूमान के मन के ऊपर निराशा का एक घना परदा पड़ गया किन्तु कुछ समय बाद आशा ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया; कार्य का समाप्त न कर इस प्रकार निराशा का अवलम्बन करना कापुरुषों का लक्षण है, हम और तलाश करेंगे चाहे हमारे देखने का अच्छा फल हो या न हो। हनूमान लङ्का के विचित्र महलों और विचित्र वनों में पुनः घूम घूम कर ढूँढ़ने लगे, आशा के मृदु मन्त्र से उनमें फिर से जान आगई, राक्षसों के महलों के सब स्थानों को उन्होंने ज़रा ज़रा कर के सब देख डाला किन्तु सीता को नहीं पाया। राक्षसों की पुरी का विशालता उन्हें बिलकुल सूनी मालूम पड़ती थी। कहीं भी सीता नहीं है, सीता जीवित नहीं है, हनूमान भारी निराशा में मग्न होकर थके हुए पैरों से कहां जायँगे यह निश्चय नहीं कर सके। "दोनों राजकुमार और बन्दरों की सेना हमारी प्रतीक्षा कर रही है हम उनकी लगी हुई आशा रूपी मञ्जरी को छिन्न नहीं कर सकेंगे। रामचन्द्र निराश होकर प्राण त्याग देंगे, लक्ष्मण अपने अग्नितुल्य बाण से स्वयं भस्मीभूत हो जायँगे और सुग्रीव की मैत्री विफल होगी। हमारे लौटने पर यह सब ठाला होना अवश्यम्भावी है।" यह सोच कर हनूमान व्याकुल हो

गये । वे कभी तो रावण का बध करने के लिए उन्मत्त हो जाते और कभी निश्चय करते कि—

"चितां कृत्वा प्रवेक्ष्यामि"

"जलती हुई चिता में प्राण दे देंगे ।"

"किंवा समुद्र के तीर पर अनशन रह कर देह त्याग देंगे"—

"शरीरं भक्षयिष्यन्ति वायसा श्वापदानि च ।"

"हमारे शरीर को कौवे और हिंसक जीव खा जायँगे ।" कभी सोचते कि "हम वानप्रस्थ ग्रहण कर और वन वन में घूम कर अपना जीवन बितायेंगे ।"

प्रभु के कार्य अथवा कर्तव्यानुष्ठान की जो व्यग्रता हनूमान के चरित्र में देखी जाती है वह और कहीं नहीं मिलती । रामचन्द्र ने कहा था कि—

"यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्तृकर्मणि दुष्करे ।
कुर्यात् तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥"

"जो प्रभु के लिए दुष्कर कार्य में नियुक्त होकर अनुराग से उसे पूरा करता है वह ही पुरुषोत्तम है ।" हनूमान ने प्राणप्रण और अनुराग से रामचन्द्र का कार्य किया था । स्वामी की सेवा का यह उन्नत आदर्श धर्मभाव में परिणत हो गया है । जब हनूमान ने देखा कि इतना अधिक शारीरिक परिश्रम बेकाम हुआ तो वे अध्यात्म-शक्ति के जागृत करने की चेष्टा करने लगे ।

"हमारे निराश होने पर बहुत से व्यक्तियों की आशा विफल होगी । बहुत से व्यक्तियों का सुख और शान्ति हमारी सफलता पर निर्भर है, अतएव चिता पर चढ़ना अथवा वानप्रस्थ ग्रहण करना हमारे लिए उचित नहीं है ।" इस लिये:—

"इहैव नियताहारो वत्स्यामि नियतेन्द्रियः।"

"इसी जगह हम इन्द्रियों को बस में कर के नियताहारी होकर प्रतीक्षा करेंगे।" तब हाथ जोड़ कर हनूमान ध्यानस्थ हुए, उनके कुछ कुछ कम्पित मुख से यह श्लोक उच्चारित हुआ कि—

"नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजाय।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्राग्निमरुद्गणेभ्यः॥"

"राम, लक्ष्मण, सीता, रुद्र, यम, इन्द्र प्रभृति को उन्होंने नमस्कार किया और "नमस्कृत्य सुग्रीवाय च" 'सुग्रीव को नमस्कार करके' वे ध्यानी के समान स्थिर हुए। जिस समय उनकी निर्मल कर्तव्यबुद्धि और कष्टसहिष्णु प्रकृति में इस प्रकार धर्म के प्रति निर्भयता का भाव सम्पूर्ण रूप से जागृत हो उठा उस समय सहसा अशोक वन की वृक्षावली की श्यामल दृश्यावली पर उनके नेत्र पड़े।

यहाँ पर हनूमान साधारण भृत्य अथवा साधारण सचिव नहीं थे किन्तु इस जगह वे प्रभुभक्ति के सिद्ध तपस्वी थे और उनमें तप का प्रभाव पूर्ण रूप से विद्यमान था। रावण के अन्तःपुर में जिस समय उन्होंने देखा कि गिरे हुए हार वाली कोई रमणी अपने कुछ नंगे शरीर से एक दूसरी सुन्दरी को आलिङ्गन किये हुए है, किसी सुलक्षणा रमणी के शरीर से अञ्चल का वस्त्र उड़ गया है और निद्रित अवस्था में किसी के सांस लेते समय चारुवृत्त पयोधरों पर मोतियों का हार कुछ कुछ लटक रहा है और उसकी कुछ कुछ

कम्पित देहलता मन्द वायु से हिलते हुए एक चित्र के समान दिखाई पड़ती हैं और कोई रमणी भुजाओं के नीचे दबी हुई वीणा को अच्छी तरह परिरम्भण करके खुले हुए केशों से सोई हुई है, उस समय—

"जगाम महतीं शङ्कां धर्मसाध्वसशंकितः ।
परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम् ॥"

"अन्तःपुर में सोती हुई परस्त्रियों के देखने से धर्म लुप्त हो गया, इसी चिन्ता में हनूमान व्याकुल हो गये ।"

"इदं खलु ममात्यर्थः धर्मलोपं करिष्यति ।"

"आज निश्चय ही हमारा धर्म लोप हो गया"—इसी आशङ्का से हनूमान बिकल हुए किन्तु उन्होंने अपने हृदय को ज़रा ज़रा करके सब देख डाला पर उसमें कहीं कलंक की रेखा नहीं मिली ।

"न तु मे मनसा किञ्चित् वैकृत्यमुपपद्यते ।
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने ।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥"

"हमारे चित्त में विकार का लेश भी नहीं है; मन ही इन्द्रियों को पाप-पुण्य में लगाता है किन्तु हमारा मन शुभ संकल्प में दृढ़ है ।"—"और वैदेही को ढूढ़ना पड़ेगा और रमणियों ही के बीच में ढूंढ़ना पड़ेगा, इसके लिए और उपाय ही नहीं है ।"

इस तापसचरित्र ने रामचन्द्र के कार्य में अपने को उत्सर्ग कर दिया था, यही कार्य में सिद्धि प्राप्त होने की सब से पहली बात है । हनूमान ने अशोकवन में सीता की म्लान, उपवास-शीर्ण, छिन्न एवं कषाय-वस्त्र-धारिणी मूर्ति देख कर

ही जान लिया कि चाहे रावण में सहस्र गुनी शक्ति भी क्यों न हो पर उसकी रक्षा नहीं हो सकती क्योंकि सीता लङ्का के लिए कालरात्रि के समान है। राम का अमोघ बाण यदि शक्तिशून्य हो जाय तो इस साध्वी की तपस्या का प्रभाव उसमें तीक्ष्णता प्रदान करेगा। सीता अपनी रक्षा आप करने में समर्थ है और उसके लिए अन्य सहायता उपलक्ष मात्र है। सीता—"रक्षिता स्वेन शीलेन।" अपने शील से रक्षित है। धर्मनिष्ठ हनूमान यह जानते थे कि धर्मबल क्या है, इसीलिए सीता को देख कर उनकी सारी आशङ्का दूर हो गई और आत्मीय बल पर उनकी विशेष आस्था उत्पन्न हुई।

इस नैतिक पवित्रता की हम किष्किन्ध्या से आशा नहीं करते। जिस स्थान में बालि के समान महिमान्वित राजा अपने छोटे भाई की बधू को हरण करे और स्त्री के कहने से कलह में लिप्त होकर मायावी की हत्या करे, जिस जगह राम के सखा महाप्राज्ञ सुग्रीव बड़े भाई के जीवित काल में ही उसकी पत्नी को अपनी प्रमोद-शैया पर आकर्षण करें, जिस जगह पातिव्रत्य का अपूर्व अभिनय करके अधिक सुरापान करने से निर्लज्ज तारा सुग्रीव की अङ्कशायिनी होने में कुछ भी द्विधा न करे, उसी किष्किन्ध्यापुरी में उग्रतपा, तीक्ष्ण नैतिक बुद्धि सम्पन्न कर्तव्य कार्य में सदा जागृतचक्षु, कलुषहीन, विलास-चेष्टा-वर्जित और विपद् में अकुण्ठित दास्य भाव के अवतार हनूमान के होने की हम आशा नहीं करते।

ऊपर कहा जा चुका है कि जब अनेक प्रकार से सीता की खोज कर हनूमान निराश हुए उस समय वे अध्यात्म शक्ति के विकाश करने की चेष्टा करने लगे। सब शारीरिक परिश्रम निष्फल हो चुका था। उस समय उत्तम कर्तव्यबुद्धि

से प्रणोदित होकर उन्होंने तपस्या की वृत्ति अवलम्बन की, इस वृत्ति के विकाश करने के लिए पवित्र जीवन और उपयुक्त साधना उनमें विद्यमान थी।

वे इस समय प्रफुल्लित थे, उनका परिश्रम इस बार सार्थक होगा, उन्हें पहले ही मन में सफलता होने का विश्वास हो गया था। अशोकवन में जाकर उन्होंने शिशिपा वृक्ष से सीता को पहिले ही पहिल देखा कि वह सुखार्हा होने पर भी दुःखसन्तप्ता, मण्डनार्हा होने पर भी अमण्डिता और उपवासकृशा और पङ्कदिग्धा कमलिनी के समान "विभाति न विभाति च" प्रकाश पाकर भी प्रकाश नहीं पाती थी। उनके दोनों नेत्र अश्रुपूर्ण और वस्त्र फटे पुराने गेरुवे थे। उनके चारों ओर बुरे स्वप्न के समान एकाक्षी, शंकुकर्णा, लम्बितस्तनी, ध्वस्तकेशी आदि बिकट राक्षसी मूर्तियाँ मानों नारकीय परिवार के समान किसी स्वर्गीय सुखमा को घेरे हुए थीं किन्तु उस दीन तापसी मूर्ति में अपूर्व धैर्य सूचित होता था—

"नात्यर्थं क्षुभ्यते देवी गङ्गेव जलदागमे।"
"वह वर्षा के समय गंगा के समान क्षोभ रहित थी।"

जब राक्षसियाँ आकर कोई शूल से उनका प्लीहा निकालना चाहतीं थीं—हरिजटा, बिकटा, विनता प्रभृति विरूपा राक्षसियों में से जब कोई उसे "मुष्टिमुद्यम्य तर्जति" मुट्ठी बाँध कर डराती थी, कोई "भ्रामयति महत् शूलं" बड़ा भारी शूल फिराती थी और जब कोई कोई मांसलोलुप श्येनपक्षी के समान उसके सामने मुंह करके ताण्डव लीला करने लगती थी, उस समय एक बार सीता के उस अति गम्भीर

धैर्य का बाँध टूट गया था। वह "धैर्य्यमुत्सृज्य रोदिति"—धीरज छोड़ कर रोने लगी। और जिस समय रावण अनेक प्रकार से लोभ दिखाकर भी उन्हें वशीभूत करने में असमर्थ होकर मुष्टि प्रहार करने में अग्रसर हुआ और जब धान्य-मालिनी आकर रावण को लौटा ले जाना चाहती थी उस समय भी सीता का धैर्य जाता रहा और राक्षस के हाथ से अपमानित होकर वह धूल पर लोट कर रोने लगी। किन्तु इन भारी संकटों में भी वह पवित्र यज्ञाग्नि के समान अपनी पुण्यप्रभा से दीप्त थी और उसके अश्रुसिक्त मुख पर स्वर्गीय तेज प्रकाशित हो रहा था। हनूमान इस विपद्ग्रस्त साध्वी की ओर पूजक के समान भक्तिपूर्ण चक्षुओं से देखने लगे। उनके दोनों नेत्र अश्रुओं से भीग गये। हनूमान शिंशपा वृक्ष पर बैठे हुए थे, किस उपाय से सीता से बातें करेंगे प्रथम इसका विचार कर वे निश्चय नहीं कर सके। अकस्मात् उपस्थित होने से उन्हें देख कर सीता डरेगी, राक्षस लोग उन्हें पकड़ लेंगे और सीता के संग उनका साक्षात्कार होने के पहिले ही बड़ा भारी गुलगपाड़ा मचेगा! जब राक्षसियाँ त्रिजटा के स्वप्न का वृत्तान्त सुनने के लिए सीता को छोड़ कर कुछ दूर चली गई और आधी रात में उनींदी सीता अशोक वृक्ष की शाखा का सहारा ले खड़ी हुई थी और उस सुकेशी के वक्र केशगुच्छ उसके कानों के नीचे लटक रहे थे, उस समय हनूमान शिंशपा वृक्ष से मृदुस्वर में रामचन्द्र के गुण कीर्तन करने लगे; सहसा अनिर्दिष्ट स्थान से जिसकी आशा न हो ऐसी रामचन्द्र की प्यारी बातें सुन कर सीता के कपोलों पर अविरल अश्रुधारा गिरने लगी। उसने अपने सुन्दर मुखमण्डल को कुछ ऊंचा कर अश्रुपूर्ण नेत्रों

से शिंशपा वृक्ष पर दृष्टि डाली। उसके काले और रूक्ष केशों ने उसके मुखपद्म को अच्छी तरह ढक रक्खा था। उस समय कौन इस ऊसर मरुभूमि में शीतल मन्द सुगन्ध वायु चलने के समान रामचन्द्र का संवाद लेकर उनके निकट खड़ा हुआ था? कौन वह नतजानु, कृताञ्जलि और अभिवादनशील हो कर उनसे अमृत तुल्य वचनों से कह रहा था कि—

"का नु पद्मपलाशाक्षि क्लिष्ट कौशेयवासिनि।
द्रुमस्य शाखामालम्ब्य तिष्ठसि त्वमनिन्दिते॥
किमर्थं तव नेत्राभ्यां वारि स्रवति शोकजम्।
पुण्डरीकपलाशाभ्यां विप्रकीर्णमिवोदकम्॥"

"हे पद्मपलाशाक्षि, क्लिष्ट कौशेयवासिनि, अनिन्दिते, आप कौन हैं जो अशोक की शाखा का सहारा ले कर खड़ी हैं? कमल के पत्तों पर से जलबिन्दु गिरने के समान आपके दोनों सुन्दर चक्षुओं से अश्रु क्यों गिरते हैं?"

हनूमान के आने से सीता की घोर विपत्ति का अन्त होगा इसी आशा की सूचना हुई—अंधेरे अशोकवन में रक्खे हुए चित्र को मानों एक सूर्य की किरण ने पहुँच कर उजला कर दिया। किन्तु हनूमान को निकट आया देखकर रावण के धोखे से सीता पहले भयभीत हुई; इस आशङ्का के कारण उनकी कुन्द के समान सफेद उंगलियों ने अशोक की शाखा छोड़ दी; वे खड़ी हुई थीं सो भय के मारे गिर पड़ीं। पर उस भय में भी उन्हें एक प्रकार का आनन्द मिला। एक बार ही मन में सोचने लगीं कि इसे देखकर हमारा चित्त क्यों हर्षित हो रहा है?

हनूमान ने उस समय उनकी प्रतीति के लिए रामचन्द्र का सारा इतिहास कह सुनाया, उन्होंने जब श्यामवर्ण रामचन्द्र और "सुवर्णछवि लक्ष्मण" के शरीर की सुन्दरता का पूरा वर्णन किया तब सीता को विश्वास हो गया कि हनूमान राम के दूत हैं। विपद् रूपी समुद्र में डूबी हुई सीता को पिछली रात में मानों किनारा मिल गया और आशा रूपी नक्षत्र ने कालरात्रि को भेद कर किरण दान किया। रोते रोते सीता ने हनूमान से सैकड़ों ही प्रश्न किये। राम के कार्यकलाप, उनके अभिप्राय, सब को जानकर सीता पुलकाश्रु बरसाने लगी। हनूमान के पास राम की नामाङ्कित अंगूठी थी, उसे ये पहिचान के लिए लाये थे; किन्तु अभी तक उसे उन्होंने नहीं दिया, साधारण दूत उस अंगूठी के द्वारा ही बातचीत आरम्भ करता किन्तु हनूमान ने इस बाहरी चिन्ह का विशेष मूल्य नहीं समझा। अपने ऊपर सीता को पूरी तरह विश्वास उत्पन्न करा कर पीछे उन्होंने अंगूठी दी।

सीता के पास से चिन्ह स्वरूप चूड़ामणि ले कर वे विदा हुए किन्तु रावण की सेना के बल, सभा और मन्त्रणा आदि के सम्बन्ध में विशेष रूप से सब हाल मालूम हुए बिना उन्होंने लौटना उचित नहीं समझा। इस विषय में सुग्रीव तथा रामचन्द्र ने भी उन्हें कोई उपदेश नहीं दिया था तथापि उन्होंने अपना दूतकर्म सम्पूर्ण रूप से सफल करने के लिए रावण से परिचय करना आवश्यक समझा। यदि वे चोर की तरह फिर आते तो वह जगद्विजयी और महाप्रतापी प्रभु रामचन्द्र के भृत्य के योग्य कार्य न होता, यह सोच कर वे अशोकवन के पेड़ों और लताओं को उखाड़ कर

लङ्कावासियों की दृष्टि आकर्षित करने लगे। उन्होंने जाकर रावण को खबर दी कि, "कोई बड़ा पराक्रमी वीर अशोक-वाटिका को उजाड़ कर राक्षसों को भय दिखाता है, उसने बहुत कालतक सीता से बातचीत की है।" रावण ने क्रोध कर उन्हें पकड़ने का हुक्म दिया और बहुत सी राक्षसों की सेना को मारकर हनूमान ने अपने को पकड़वा दिया। रावण की सभा में लाकर उनसे प्रश्न किया गया कि वे विष्णु, इन्द्र अथवा कुबेर इनमें से किसके दूत हैं ?

हनूमान ने कहा—

"धनदेन न मे सख्यं विष्णुना नास्मि चोदितः।
केनचिद्रामकार्येण आगतोऽस्मि तवान्तिकम् ॥"

"कुबेर के साथ हमारी मित्रता नहीं, विष्णु ने हमको नहीं भेजा, हम रामचन्द्र के किसी काम से यहाँ आये हैं।"

इस सभा में रावण का अतुल ऐश्वर्य और विपुल प्रताप देखकर हनूमान विस्मित हुए किन्तु जैसे निर्भीक भाव से उन्होंने रावण को उपदेश किया था उस उपदेश को न मानने से लङ्का का भावी विनाश अवश्यम्भावी था, यह स्पष्ट रूप से निर्देशकर के रावण के दिये हुए मृत्युदण्ड के लिए ऐसे अविचलित साहस से खड़े हुए थे कि उससे हम कर्तव्यकठोर और अटल संकल्पारूढ़ मूर्ति का आभास पाकर चमत्कृत होते हैं। उन्होंने त्रिलोकविजयी सम्राट् के सम्मुख धर्म की बातें धर्मोपदेशक के समान कह डाली थीं, परिणामदर्शी विज्ञ के समान भविष्यत् का चित्र खींच कर दिखा दिया था और फलाफल को तुच्छ समझ कर कर्तव्यनिष्ठा की दृढ़ नींव पर वीर के समान खड़े हुए थे। क्रुद्ध रावण ने जिस

समय उन्हें मृत्युदण्ड का आदेश दिया उस समय भी उनका उज्ज्वल और उदग्र रूप अविचलित था और उनके प्रशस्त ललाट में भय से जरा भी बल नहीं पड़ा। विभीषण के उपदेश से उन्हें दूसरे प्रकार के दण्ड की व्यवस्था की गई।

हनूमान जिस समय समुद्र पार कर अपनी प्रतीक्षा में बैठे बन्दरों की मंडली में सीता का समाचार लेकर पहुंचे, उस समय निराशा से भरे हुए बन्दर बड़े आनन्द में कलरव करते हुए जाग उठे और नाच गाकर उन्होंने उनकी अभ्यर्थना की।

हनूमान ने बहुत कष्ट सहकर अपना कर्तव्य पालन किया था। आज एक दिन के लिए बन्धुबान्धवों के साथ वे आमोद-प्रमोद में सम्मिलित हुए। उसी आनन्दोछ्वास में वे समुद्र के किनारे पर मौज की छानने लगे। सुग्रीव की आज्ञा से रक्षित मधुवन में वे घुस पड़े, मधुवन में पहरा देनेवाले दधिमुख बानर ने उनको रोका तो उन्होंने उसे पीटा और वह उनकी मार से घायल हो कर भाग गया।

उस समय हनूमान एक दिन के लिए भाई बन्धुओं के संग मधुवन में मधुफल आस्वादन कर प्रमत्त हो गये। उन सब लोगों ने मिल कर उत्सव का दिन किस प्रकार मनाया था, वाल्मीकि ने उसका विस्तृत रूप से वर्णन किया है—

"गायन्ति केचित् प्रहसन्ति केचित्।
नृत्यन्ति केचित् प्रणमन्ति केचित्॥"

"कोई गाते थे, कोई हँसते थे, कोई नाचते थे और कोई प्रणाम करते थे।"

कर्तव्य की कठोर शान्ति के बाद यह प्रमादचित्र कैसा सुन्दर लगता है!

हनूमान लङ्का में केवल सीता को देखकर नहीं आये किन्तु लङ्का के सम्बन्ध में उन्होंने राम से जो सब बातें कहीं उनसे उनकी सूक्ष्म दृष्टि का पता लगता है। हनूमान ने लङ्का के सम्बन्ध में राम के पूछने पर कहा था :—

"लङ्कापुरी हाथी, घोड़े और रथों से भरी है, इसके किवाड़ बड़े मज़बूत और उनमें लोहे की छड़ें जड़ी हुई हैं। उसके चारों ओर बहुत बड़े २ चार द्वार हैं। इन द्वारों पर जाने का मार्ग बड़ा भयंकर है और वे बाण आदि शस्त्रों से सुसज्जित है और उनमें यन्त्र लगे हुए हैं। शत्रु की सेना आते ही उनके द्वारा हटाई जा सकती है। इन द्वारों पर सजी हुई सैकड़ों लोहे की तोपें रक्खी हुई हैं। लङ्का के चारों ओर सोने की चहारदिवारी है, उसमें रत्न जड़े हुए हैं और उसका लाँघना बड़ा ही कठिन है। उसके चारों ओर एक भयंकर खाई है। वह अथाह है और उसमें मगर और कछुए रहते है। हरेक दरवाज़े पर एक एक बड़ा पुल दिखाई पड़ता है। वह यन्त्र से लगा हुआ है, शत्रुओं की सेना आने पर भी यन्त्र के द्वारा उस पुल की रक्षा होती है और शत्रु की सेना उसी के द्वारा खाई में गिर सकती है। लङ्का में नदी-दुर्ग, पर्वत-दुर्ग और चतुर्विध कृत्रिम दुर्ग हैं। यह पुरी उस दूर प्रसारित समुद्र के पार है। समुद्र में नौका का मार्ग नहीं है, वह चारों ओर से अगम्य है।"

हनूमान गुणी का सन्मान करना जानते थे। रावण को देखकर हनूमान के मन में गाढ़ी श्रद्धा का उद्रेक हुआ। उसकी धर्मशून्यता दिखाने में उन्हें दुःख हुआ किन्तु सचल हिमालय पर्वत के समान भीमकाय समुन्नतदेह राक्षसराज का प्रताप देखकर हनूमान बोल उठे कि—

"अहो रूपमहो धैर्य्यमहो सत्वमहो द्युतिः।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता॥
यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता॥"

"इसका कैसा अपूर्व रूप है, कैसा धैर्य है, कैसी शक्ति है, कैसी कान्ति और सर्वांग में कैसे सुन्दर लक्षण हैं! यदि यह अधर्मशील न होता तो सब देवता यहाँ तक कि इन्द्र भी उसके आश्रय में आकर रहता।" रामचन्द्र से हनूमान ने कहा—

'रावण युद्ध के लिए सन्नद्ध है किन्तु धीर स्वभाव और सावधान है वह स्वयं ही सदा सेना की देख भाल करता है।"

रामायण में सर्वत्र हनूमान आशा और शान्ति का संदेसा लेकर आये हैं। अशोकवन में सीता जब राक्षसियों से पीड़ित होकर दुःख की चरमसीमा पर पहुंच गई और जब लङ्कापुरी ने कालरात्रि के समान ग्रास कर उसे बिलकुल बेचैन कर दिया था, तब अँगूठी का मङ्गल चिन्ह लेकर हनूमान ने उसे निराशा के समुद्र से निकाल कर आशा की नौका पर चढ़ाया। राम जब विरह से व्याकुल होकर मरुभूमि की जलती हुई वायु से पीड़ित पथिक के समान सीता के समाचार के लिए उन्मुख हो रहे थे, जब बन्दरों की सेना सुग्रीव के आदेश किये हुए प्राणदण्ड के भय से कम्पित और निराश होकर समुद्र के ऊपर होकर उड़ कर आने वाले पक्षियों की गति से किसी शुभ संवाद की आशा लगाये हुए आशङ्का-पीड़ित हो रही थी,—उस समय हनूमान ने अमृत रूपी औषधि के समान शुभ संवाद लाकर निराशा के राज्य को आशा के प्रखर कलरव से गुंजा दिया और जिस

दिन चौदह वर्ष के बीतने पर फल-मूलाहारी और अनशन से कृश राजर्षि भरत नन्दिग्राम के आश्रम में भ्रातृपादुका से विभूषित मस्तक से रामचन्द्र के लौटने की प्रतीक्षा में व्याकुल हो रहे थे और चौदह वर्ष बीतने पर रामचन्द्र के न लौटने पर "प्रवेक्ष्यामि हुताशनं" अग्नि में प्राण विसर्जन करने का संकल्प कर रहे थे, उसी समय आदर्श भ्राता और राजर्षि को उनके घोर आशा और आशङ्का के दिन उनसे सादर सम्भाषण कर वृद्ध ब्राह्मण-वेश-धारी हनूमान ने कहा था कि—

"वसन्तं दण्डकारण्ये यं त्वं चीरजटाधरम् ।
अनुशोचसि काकुत्स्थं स त्वां कुशलमब्रवीत् ॥

"हे राजन्, आप दण्डकारण्यवासी और जटा-चीर-धारी जिन ज्येष्ठ भ्राता के लिए चिन्ता कर रहे हैं उन्होंने आप की कुशल पूछी है ।" अतएव जिसी समय हम हनूमान को देखते हैं उसी समय वे हमारे प्रियदर्शन हैं । बड़ी भारी विपत्ति में उन्होंने आशा का सँदेसा प्रचारित किया था और विपत्ति के नाश होने में सब से पहले उन्हीं का हाथ होता था किन्तु दूसरे की विपत्ति दूर करने के लिए उन्होंने अपने को कितनी विपत्ति में फंसा दिया था यह जान कर त्याग की महिमा से उनका चित्र और भी समुज्ज्वल दिखाई देता है ।

रामचन्द्र ने अयोध्या आकर सुग्रीव और अङ्गद को मणियों के हार और अन्यान्य अलङ्कार प्रदान किये । सीता देवी ने अपने गले में पड़ा उज्ज्वल मोतियों का हार खोल कर रामचन्द्र की ओर दृष्टिपात किया, तब राम बोले, "तुम जिससे

प्रसन्न हों उसी को यह हार दे दो।" उस अमूल्य हार का उपहार पाकर हनूमान ने अपने को कृतार्थ माना।

हनूमान के इन कितने ही गुणों की बात वाल्मीकि लिख गए हैं यथा धैर्यमिश्रित तेज, नीतियुक्त सरलता, सामर्थ्य और विनय, यश, पौरुष और बुद्धि; अनेक परस्पर-विरोधी गुण उनके चरित्र में सम्मिलित हुए थे और वे सभी गुणों को कर्तव्यानुष्ठान में यथोचित रूप से नियुक्त कर सकते थे।

भरत, लक्ष्मण, कौशल्या, दशरथ प्रभृति सब का ही राम पर जो प्रेम था उसकी सहज ही में कल्पना की जा सकती है, ये रामचन्द्र के आत्मीय ही थे; किन्तु किसी एक 'बर्बर-देश की ऊजड़ भूमि में यह भक्तिकुसुम बिना किसी यत्न के उत्पन्न हुआ उसे हम आशा से अधिक पा कर विस्मय पूर्वक दर्शन करते हैं। विभीषण और सुग्रीव की मित्रता हनूमान की प्रभुभक्ति के तुल्य गम्भीर नहीं है और उनके सौहार्द में आदान-प्रदान और स्वार्थ का भाव लगा हुआ है किन्तु हनूमान की भक्ति सम्पूर्ण रूप से अहेतुकी है। पीछे के हिन्दुओं ने उनके इस भक्तिभाव की ओर ही विशेष रूप से अपना लक्ष्य स्थापन किया है; किन्तु हमें बोध होता है कि भक्ति की अपेक्षा भी उन्नत कर्तव्य की प्रेरणा ही ने उन्हें अधिकतर कार्य में प्रवृत्त किया था।

वे जिस कार्य का भार लेते उसे वे प्राणपण से पूरा करते थे, किस प्रकार वे उस काम को उत्कृष्ट रूप से कर सकेंगे, मन मन में वे सदा यही विचार करते थे। इसी कारण हम उन्हें हरघड़ी बड़े विचार और तर्क पूर्वक कार्य में अग्रसर होते देखते हैं। कहीं कर्तव्यसाधन में कोई छिद्र तो नहीं रह गया और उन्हें कौन सा पथ अवलम्बन करना चाहिये

इत्यादि बातों का वे दार्शनिक के समान मन ही मन में विचार कर स्थिर करते और अन्त में अपने संकल्प पर आरूढ़ होकर वीर के समान खड़े रहते थे । साथ ही साथ और एक विशेष बात यह है कि कर्तव्य सम्पादन के समय अपने सुख-दुःख या कर्म के फलाफल को वे आदि में विचार नहीं करते थे । गीता में जो निष्काम कर्म का आदर्श स्थापित हुआ है, हनूमान उसके जीवन्त उदाहरण थे। यह निष्काम कर्तव्यबुद्धि ही प्रकृत रूप से भगवत् को उपासना का भाव है, इसलिए वैष्णवों ने उन्हें अपना लिया है। उनकी सेवा सम्पूर्ण रूप से अहेतुकी थी, इस सेवावृत्ति में अनुराग का वाह्य उच्छ्वास या भक्ति का आडम्बर दृष्टिगोचर नहीं होता । जो प्रेम अथवा भक्ति की उमंग में काम करते हैं उनका कार्य प्राणपण से निर्वाहित होता है किन्तु उस जोश में किये गये काम के बीच बीच में भ्रमात्मक होने की आशङ्का रहती है। हनूमान के कार्यों में वैसा उत्साह नहीं था, उनका उत्साह सूक्ष्म आत्मानुसन्धान और कठोर विचार से उत्पन्न होता था। उन्होंने आत्मान्वेशी संन्यासी के समान स्वयं निर्लिप्त होकर अत्यन्त कठोर कर्तव्य पथ पर विचरण किया था। उस कर्तव्य के सम्पादन में वे सुग्रीव के सम्बन्ध में जिस प्रकार दृढ़हस्त थे, रामचन्द्र की आज्ञा पालन करने में भी वे वैसे ही दृढ़ थे। वाल्मीकि-अंकित हनूमान के चित्र के उज्ज्वल कपोलों पर प्रज्ञा की ज्योति दमक रही है और उनका हाथ बड़ी दृढ़ता से कर्तव्य की ढाल पकड़े हुए है। उनका चित्त कामनाशून्य, उनकी दृष्टि विलासहीन और वे बड़े भारी दूरदर्शी थे। वे ऋषियों के समान अपने चरित्र के कठोर विचारक, त्यागी और स्थिर-

[illegible] इन सब गुणों की पूजा के लिए किष्किन्ध्या के अनार्य वीरवर के नाम पर आर्यावर्त में सैकड़ों मंदिर बन गये हैं और इसी लिये भवभूति ने लक्ष्मण के मुख से हनूमान को "आर्य हनूमान" यह सम्बोधन कराने में सङ्कोच नहीं किया ।

॥ इति ॥

विद्वानों की सम्मतियां।

सरस्वती के भूतपूर्व सम्पादक **पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी** लिखते हैं:—

आपने बड़ी अच्छी पुस्तक भेजी। धन्यवाद. मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूं। बंगला में इस पुस्तक को मैंने कई दफे पढ़ा है। इसके दो एक निबन्ध सरस्वती में भी निकाले हैं।

हिन्दी के मर्मज्ञ और प्रसिद्ध लेखक स्वर्गवासी **पं० श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी बी० ए०** लिखते हैं:—

अनेक धन्यवाद, दीनेश बाबू की रामायणी कथा मैंने श्रीयुत जैन वैद्य के रहते हुए पढ़ी थी और उस समय ही मुझे यह भाव हुआ था कि इसका अनुवाद हमारी भाषा में हो, आपने कई वर्षों के परिश्रम से, कई बातों को सह-कर इसका अनुवाद कर डाला बड़ा अच्छा किया।

संस्कृत श्लोकों की छापे की भूलें बड़ी वाहियात हैं, एक जगह दीनेशबाबू की भूमिका का अनुवाद करते समय आपसे भी एक भद्दी भूल रह गयी है, आपने "गोरेसिडर संस्करन" बंगला से ज्यों का त्यों रहने दिया है, चाहिए था 'गोरेसिओ का संस्करण'।

अनुवाद बड़ा अच्छा हुआ है, स्वतन्त्र निबन्ध जान पड़ता है, यही अनुवाद की सुन्दरता है, पढ़ता चला गया, बड़ा ही आनन्द आया, दीनेश बाबू की समीक्षा और विवेचना ऐसी अच्छी है कि कुछ कहा नहीं जाता, आप अपनी भूमिका की प्रतिज्ञा को निबाह कर तुलसीदास जी के चरित्रों पर ऐसी आलोचना लिखें तब ठीक हो, तुलसीदासजी के रामायण और वाल्मीकि के रामायण में बड़ा अन्तर है, वाल्मीकि के बाद जितनी शताब्दियां तुलसीदास तक बीती हैं उतनी शताब्दियों के हिन्दू धर्म और समाज और भाव के तह में होकर तुलसीदास जी ने राम को देखा है, वाल्मीकि भक्त नहीं थे और तुलसीदास ऐतहासिक नहीं थे वाल्मीकि के राजा राम और गोसांई जी के आराध्य राम का विवेचन करने में इसे नहीं भूलना चाहिए, वाल्मीकि के राम के लिए आदर और भय होता है, तुलसीदास के राम के लिए प्रेम और भक्ति, वाल्मीकि और तुलसीदास का ईक्षाणकोण angle of vision एक नहीं है, यह बात न केवल 'रामललानहछू' और 'राम कलेवा' में दीखती है प्रत्युत सारे इतिहासहीं में दीखती है, इसका विवेचन बहुत लम्बा हो जायगा।

हां, आपका यह परिश्रम बहुत अच्छा हुआ आपको इस के लिए बधाई है।

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक **पं० श्यामविहारी मिश्र एम० ए०** लिखते हैं:—

"मैंने पुस्तक को आद्योपांत बड़े चाव के साथ पढ़ा। यह बड़ी उत्तम और उपयोगी पोथी है। ऐसे ग्रंथों की हिंदी

में बड़ी आवश्यकता है और आपने इसका बँगला से हिन्दी में अनुवाद कराकर हम लोगों का बड़ा उपकार किया है।

मैं देखता हूं कि इसमें आठ चरित्रों पर मीमांसा की गई है अर्थात् (१) श्री रामचन्द्र ८२ पृष्ठ। (२) सीताजी २८ पृष्ठ। (३) हनूमान २८ पृष्ठ। (४) लक्ष्मण २६ पृष्ठ। (५) दशरथ २५ पृष्ठ। (६) कौशल्या १८ पृष्ठ। (७) कैकेयी १८ पृष्ठ और (८) भरत १७ पृष्ठ।

इसमें पहली बात तो यह है कि सीता जी और विशेषतया भरत जी के विषय में जितना कुछ लिखा जाना चाहिए था सो नहीं किया गया है। दूसरे यह कि कई अन्य पात्रों को बिलकुल छोड़ देना (यथा, रावण, सुग्रीव, विभीषण, शत्रुघ्न इत्यादि) ठीक नहीं प्रतीत होता। कम से कम रावण तो छोड़ा जा ही नहीं सकता। एक तीसरी त्रुटि यह रह गई है कि पुस्तक में कथा का भाग विशेष है और आलोचना का थोड़ा ही क्यों वरन बहुत थोड़ा। पात्रों के चरित्रों को कारणों सहित स्पष्ट रूप से दर्शाना और उनके अंग-प्रत्यंगों को खोल कर दिखाना ऐसे ग्रंथों का मुख्य कर्तव्य होना चाहिए पर इस ग्रंथ में समुचित रूप से ऐसा नहीं किया गया है। पात्रों के शील गुणों की अधिक विस्तार के साथ विवेचना होनी चाहिए थी। सूची पत्र अवश्य देना चाहिए था।

इतना लिखने के पीछे मैं फिर कहूंगा कि इस ग्रंथ-रत्न के जोड़ के बहुत ग्रंथ हिन्दी में अभी नहीं हैं और इसे प्रकाशित करने के उपलक्ष में आप हिन्दी रसिकों के धन्यवाद पात्र हैं।

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और "श्री वेङ्कटेश्वर समाचार" के भूतपूर्व सम्पादक **पं० लज्जाराम मेहता** लिखते हैं:—

जिस महासागर को पार करने में आदिकवि वाल्मीकि और भक्त-शिरोभूषण तुलसीदास जी जैसे विद्वान् कठिनता से समर्थ हो सके थे उसमें आप क्योंकर कृतकार्य हो सकेंगे ? मन में यही भाव उत्पन्न हुआ था किन्तु ज्यों ज्यों मैं इसे पढ़ता गया त्यों ही त्यों इसकी उपादेयिता मन-मन्दिर में दृढ़ होती गई। अनुवाद में बंगलापन का लेश नहीं। यदि टाइटेल और भूमिका में अनुवाद शब्द का प्रयोग न किया जाता तो कोई भी ऐसा कहने का साहस न कर सकता कि यह किसी ग्रंथ का भाषान्तर है। मसाला वास्तव में महर्षि वाल्मीकि का ही है किन्तु बिखरी हुई सामग्री को इकट्ठी करके प्रत्येक पात्र के चरित्र-चित्रण में दीनेश बाबू ने कमाल किया है। मेरे सुहृद्वर स्वर्गीय पंडित माधवप्रसाद मिश्र और उनके कनिष्ठबंधु लिखित इस प्रकार के दो चार निबंध कई वर्षों पहले देखने में आये थे किन्तु आज पुस्तकाकार में ऐसे निबंध-रत्नों को देखने का यह पहला ही अवसर है। अवश्य ही प्रत्येक निबंध में उसके पात्र के चरित्र की समालोचना की गई है किन्तु यह समालोचना बड़ी मधुर है, उसके गुण-समूहों को मन की पट्टी पर अंकित कर देने का अच्छा साधन है। दीनेश बाबू सचमुच राम-भक्त जान पड़ते हैं। यदि उनके अंतःकरण में हार्दिक भक्ति न होती तो शत्रुघ्न के निरर्थक चरित्र पर आदि कवि को दो चार बातें सुनाये बिना न रहते। अस्तु ! इसमें दो एक बातें मेरे अंतःकरण को कुछ खटकी भी। एक बालि-वध का समाधान जितना करना चाहिये था उतना नहीं किया

गया। यह कार्य भी कठिन था। दूसरे कहीं २ महात्मा तुलसीदास जी पर कुछ २ आक्षेपों की सी झलकें हैं। यदि दीनेश बाबू उनके विषय में कुछ भी न लिखते तो अच्छा होता क्योंकि वह बंगाली हैं, "रामायण मानस" के मर्मों को यदि अच्छी तरह न समझ सकें तो उनका दोष नहीं है। किन्तु हां! इतना इस जगह अवश्य कहना पड़ेगा कि गोस्वामी जी के काव्य में रामभक्ति की' चरित्र-चित्रण की और वर्णनशैली की पराकाष्ठा है। उन्होंने रामचन्द्र की पल्लव-स्निग्ध मूर्ति की रक्षा करने में उनके वीरत्व और वैराग्य की महिमा को घटाया नहीं है किन्तु तुलसीकृत रामायण में भगवान रामचंद्र का जो चित्र अंकित किया गया है वह "कुलिशहु चाह कठोरता कोमल कुसुमहु चाह" का देदीप्यमान चित्र है। वह धनुषयज्ञ में "जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी" का उल्लेख कर भगवान् व्यास से भी "सब कत" ले गये हैं।